आध्यात्मिक शंका-समाधान

लेखक : प.पू. सूरिगच्छाचार्य
श्री 108 विराग सागर जी महाराज

समर्पण

१. उनके लिये जो स्वाध्याय शील है।

२. उनके लिये जो हठाग्रह मुक्त है।

३. उनके लिये जो तत्त्व जिज्ञासु है।

४. उनके लिये जो आगम व आचार्यों के वचनों को प्रामाणिक मानते हैं।

५. उनके लिये जो "पै कछु कहूँ कही मुनि यथा" को सच्चरितार्थ करते हैं।

६. उनके लिये जो अन्यथा प्ररुपणा से भवभीरू है।

७. उनके लिये जो शास्त्रों का निष्पक्षता पूर्ण सम्यक् अर्थ करते हैं।

८. उनके लिये जो प्रकरण तथा पात्रानुसार आचार्यों की विवक्षा का यथोचित् मनन के बाद ही कथन करते है।

९. उनके लिये जो पारस्परिक तत्त्व चर्चा को सुनने व समझने का प्रयास करते है।

१०. उनके लिये जो जिनेन्द्र तत्त्व मनीषा को समझने और समझाने में यथोचित् सम्मान, वात्सल्य व करुणार्द्र है।

११. उनके लिये जो अपने आप को लघु/तत्त्वाभ्यासी मानते है।

१२. उनके लिये जो जिज्ञासाओं की सविनय पृच्छना का समाधान करते है।

१३. उनके लिये जो मन के संतुष्ट न होने पर भी राग-द्वेष नहीं करते है।

१४. उनके लिये जो भाषा, लेखन और प्रकाशन में त्रययोगों को सम्हालते है।

१५. उनके लिये जो रत्नत्रय व रत्नत्रय धारियों विषयक एक पक्षीय बातों को सुन-पढ़कर अविनय, आलोचन व दुष्प्रचार नहीं करते है।

२१वीं सदी के ज्योति पुञ्ज-गणाचार्य विराग सागरजी

डॉ. के. एल. जैन, प्राचार्य

शासकीय कन्या महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

अपरिमित प्रज्ञा के धनी - 'संत' वह है जिसकी सरलता का कोई अंत न हो । जो संसार से विरक्त होकर स्व पर कल्याण की भावना में निरत हो, जिसके अन्तः करण में वात्सल्य और स्नेह का निर्झर सतत प्रवाहमान हो । जिसकी वाणी से जन जन की कल्याण कामना के भाव निःसृत हो, जिन्होंने ज्ञान की अतुल गहराईयों में उतरकर सृजन के मौलिक स्वरूप को गढ़ा हो। ऐसे अनेक विशेषणों से विभूषित प्रज्ञा के धनी आचार्य विराग सागर जी का इस धरती पर अवतरण इस सदी की एक अन्यतम घटना ही मानी जायेगी।

असाधारण व्यक्तित्व के धारक - एक ऐसा व्यक्तित्व जिसमें जादुई तिलस्म का आकर्षण हो, यह आकर्षण है उनके त्याग का, साधना का, तप का, चर्या का और उस असाधारण ज्ञान का जिसके कारण श्रावक दीवानगी की हदों को भी पार कर जाता है । आपकी सौम्य मुद्रा के दर्शन मात्र से ही दर्शनार्थियों के कालुष्य का विरेचन हो जाता है । आपके सान्निध्य का सुफल और आशीष का हस्तकमल जीवन को निर्जर और निरामद बना देता है । यही वजह है कि आचार्य विराग सागरजी जहाँ से निकल पड़ते हैं वहाँ के लोग उनके हमेशा - हमेशा के लिए बन जाते हैं।

अनोखे बचपन का विरल सम्मोहन - दमोह (म.प्र.) जिले के पथरिया ग्राम में पाषाणों के बीच इस हीरे का अवतरण २ मई १९६३ (वैशाख शुक्ल ९ वि.सं. २०२०) को रात्रि ९ बजे हुआ । पुण्यात्मा ब्र. श्रीमान कपूरचंद जी एवं जननी श्रीमती श्यामादेवी (आपसे ही दीक्षित एवं समाधिस्थ आर्यिका पूज्य श्री विशान्तश्री माताजी) की कोख से एक ऐसा कमल (अरविन्द) खिला जिसने अपनी अनुपम सुगन्धी से सारे बुन्देलखण्ड को महका दिया । कभी-

कभी आगत की आश्चर्य चकित करने वाली घटनाएँ वर्तमान में ही अपना संकेत देने लगती हैं । कुछ ऐसा ही हुआ बालक अरविन्द के साथ, जब वे बचपन में नग्न अवस्था में खड़े होकर हाथ में झाडू लेकर (पिच्छी का प्रतीक) माँ से बोले–मुनिराज का पड़गाहन करो । क्योंकि कुछ दिन पूर्व उन्होंने इस तरह के दृश्य को देखा था। उक्त दृश्य का आत्म पटल पर अंकन आज आचार्य विराग सागरजी के रूप में परिलक्षित हो रहा है । यह इस धरित्री का पुण्य उदय ही माना जाएगा ।

बालक अरविन्द की बाल्य अवस्था की क्रियाएँ सम्मोहन की सीमाएँ लाँघने में समर्थ थीं, सेवा कार्य में हद दर्जे की दीवानगी उनमें कूट–कूट कर भरी हुई थी । इसी भावना के कारण बालक अरविन्द सभी को सम्मोहित कर लेते थे । संवेदनशीलता की भावना ने उन्हें प्राणी मात्र की कल्याण कामना से आपूरित कर दिया था । यही कारण है कि आचार्य श्री विराग सागरजी अहर्निश साधना की असीम ऊँचाईयों की ओर अत्यन्त तीव्रता के साथ अग्रसर हो रहे हैं।

अर्जन और सर्जना के विविध सोपान – बालक अरविन्द की प्रारंभिक शिक्षा पथरिया और इसके उपरांत श्री शांति निकेतन दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय कटनी में हुई । निष्णात गुरु पं. जगन्मोहनलालजी के सान्निध्य ने प्रज्ञा की अन्तर्ज्योति को जागृत कर दिया । ज्ञानाराधना की ललक और वैराग्य भावना की व्यग्रता ने मनोयोग पूर्वक अर्जन की प्रवृत्ति को परवान चढ़ने का काम किया, परिणाम स्वरूप १६–१७ वर्ष की अवस्था में दि. २० फरवरी १९८० (फाल्गुन शुक्ल ५ वि.सं. २०३६) बुढ़ार जिला शहडोल (म.प्र.) में परम पूज्य तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागरजी से आपने क्षुल्लक दीक्षा ली तब आपका नाम पू. १०५ क्षुल्लक पूर्णसागर जी रखा गया, २०–२१ वर्ष की अल्पायु में दि. ९ दिसम्बर १९८३ (मगशिर शुक्ल ५ वि.सं. २०४०) को औरंगाबाद जिला (महाराष्ट्र) में वात्सल्य रत्नाकर परम पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज से मुनि दीक्षा ग्रहण की, तब आपका नाम मुनिश्री विराग सागर जी रखा गया । दीक्षा ने शिक्षा के विकास क्रम को गंगा की धारा के समान प्रवाहमान रखने में एक ऊर्जयन्त – ऊर्जा से संचरित रखा, जिससे अल्प समय में आप न्याय, व्याकरण, दर्शन, साहित्य व आध्यात्म के महान चितेरे बन गए ।

महाव्रती की महती प्रभावना - आज का वातावरण विसंगतियों और विद्रूपताओं की कालिमा से कलंकित है । ऐसे वातावरण में मनुष्य का नैतिक विकास हो पाना काफी दुष्कर जान पड़ता है। सर्वत्र हिंसा, अनैतिकता, बेईमानी और झूंठ का बोलबाला है, स्वार्थ की संकीर्णताओं ने व्यक्ति को संवेदन शून्य और हृदयहीन बना दिया है, प्रेम और भाईचारे के सद्व्यवहार की अपेक्षाएँ दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है - ऐसे वातावरण में महाव्रती का संदेश जीवन में ऐसी ऊर्जा का संचार करता है । जिससे की जीवन की धारा ही बदल जाती है । आचार्य विराग सागरजी ने भ्रमित युवा पीढ़ी को आचरण और नैतिक मूल्यों की दृष्टि से जो दिशा - दृष्टि प्रदान की है वह इस सदी की श्रेष्ठतम घटनाओं में इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरित की जायेगी ।

कुशल संघ संचालक - मोक्ष के आकांक्षी, वीतरागी पथ के पथिक, पदों से अलिप्त मुनि श्री विराग सागरजी महाराज की उत्तरोत्तर साधना, अनुशासन एवं आगमिक प्रणाली से प्रभावित होकर अनेक आत्म हितैषी उनके साथ आत्म-साधना करने के लिए तत्पर हो गये, साथ ही लगभग १० आचार्य परमेष्ठी उनके मनोज्ञ व्यक्तित्व को देखकर उन्हें अपना आचार्य पद देकर संघ का भार सौंपना चाहते थे तथा कितनी ही बार तो अनेक आचार्यों ने उनके आचार्य पद की घोषणाएँ की लेकिन मुनि विराग सागर जी ने 'में अभी इस योग्य नहीं हूँ', या 'मेरे गुरु अभी विराजमान हैं,' ऐसा कहकर उसे स्वीकार न किया फिर भी समय बड़ा बलवान होता है और ऐसा योग आया कि परम पूज्य आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज की आज्ञा एवं आशीर्वाद तथा आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज एवं आचार्य श्री सुमति सागर जी आदि अनेक आचार्यों के आशीर्वाद से आचार्यत्व के गुणों से परिपूर्ण होने के कारण चतुर्विध संघ, द्रोणगिरि की समाज, पं. दरबारीलाल जी कोटिया (बीना) आदि अनेक विद्वानों एवं श्रेष्ठियों ने द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर दि. ८-११-१९९२ (कार्तिक शुक्ला १३, वि.सं. २०४९ को) उन्हें आचार्य पद से विभूषित कर अपने भाग्य को सजाया था । इस प्रकार साधना-पथ पर उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर विराग सागरजी ने अपने ज्ञान, ऊर्जा और साधना के द्वारा आत्म कल्याण और लोक कल्याण के जिन शीर्ष प्रतिमाओं को स्थापित किया यह असाधारण ही माना जायेगा ।

वर्षायोग के अविस्मरणीय क्षण - संयम काल के दौरान आपने संपूर्ण भारत वर्ष में भ्रमण कर प्रभावना करते हुए धर्म की ध्वजा को फहराया तथा इस दौरान जहाँ - जहाँ भी आपका चातुमार्सिक प्रवास रहा, वहाँ आपके सम्मोहक व्यक्तित्व से जैन जैनेतरो पर ऐसी गहरी छाप पड़ी की नास्तिक भी आस्तिक हो गये । प. पू. गुरुवर के वृहद प्रभावना के साथ दुर्ग (म.प्र. १९८०), नागपुर महा. (१९८१), कारंजा (लाड़) (महा. १९८२ व ८३), भावनगर (गुज. १९८४), पांचवा (राज. १९८५), निमाज (राज. १९८६), जयपुर (राज. १९८७), भिंड (म.प्र. १९८८ व ८९), टीकमगढ़ (म.प्र. १९९०), श्रेयांसगिरि (म.प्र. १९९१), द्रोणगिरि (म.प्र. १९९२), श्रेयांसगिरि (म.प्र. १९९३), बीना (म.प्र. १९९४), ललितपुर (उ.प्र. १९९५), जबलपुर (म.प्र. १९९६), भिंड (म.प्र. १९९७, ९८ व ९९), सम्मेदशिखरजी (झारखंड २०००), गया (बिहार २००१), श्रेयांसगिरि (म.प्र. २००२), भिलाई (छ.गढ़ २००३), कारंजा लाड़ (महा. २००४) मूड़बिद्री (कर्णाटक २००५), मेलचित्तामूर (तमिलनाडू, २००६), उदगाँव (महा. २००७), बोरीवली (मुंबई-महा. २००८), गांधीनगर (गुजरात-२००९) लोहारिया (राज. २०१०) अजमेर (राज. २०११) में चातुर्मास सम्पन्न हुए।

सयंमी सृजक गुरुदेव - पूज्य गुरुओं के प्रति विनय भाव तथा शिष्यों के प्रति वात्सल्य एवं करूणा भाव तथा समाज के सही मार्गदर्शक एवं देव-शास्त्र-गुरु के प्रति परमागाढ़ श्रद्धा को देख अनेक भक्तों ने आपको अपना गुरु चयन कर आपका शिष्यत्व धारण कर अपने जीवन को मोक्षमार्ग के प्रति समर्पित किया व आपके साथ चलने को तैयार हो गए, आपने संयम काल के ३२ वर्षो में भारत के १० प्रांतों की लगभग ४०,००० कि.मी. पैदल यात्रा कर अनेकों सिद्धक्षेत्रों, अतिशय क्षेत्रों एवं नगरों में आध्यात्मिक साधना कर अनेकों भव्यों के दीक्षाएँ दी हैं जिसमें अतिशय क्षेत्र बरासों (भिण्ड) की १३ मुनि दीक्षाएँ, ललितपुर की २१ दीक्षाएँ श्रवणबेलगोला की २५ दीक्षाएँ तथा उदयपुर की २६ दीक्षाओं, ने जनमानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है जिससे जैन - जैनेत्तरों में महत्ती प्रभावना हुई । यही कारण है कि आप एक विशाल एवं श्रेष्ठ वटवृक्ष की तरह है जिसकी छत्रछाया में ८ आचार्य, १ उपाध्याय, ५३ मुनि, ४७ आर्यिका, ५ ऐलक, २७ क्षुल्लक, २० क्षुल्लिकाएँ एवं अभी

आपके निर्देशन में लगभग १६२ से भी अधिक ऐसे भी विनय साधक है जो अंतेवासिन के रूप में अपनी साधना में संलग्न हैं तथा आपके कुशल निर्यापकत्व में लगभग २१ साधुओं एवं साध्वियों एवं लगभग १४ व्रती श्रावकों ने समाधि कर अपने जीवन को सार्थक किया है।

अनुपम अनुशासन एवं चारित्र साधक - चारित्र संवर्धक अनुशासन के पथानुगामी गुरुदेव आप मात्र शिष्यों को दीक्षा ही नहीं देते किन्तु उन्हें शिक्षा दे अनुशासन में भी रहना सिखाते हैं । जो शिष्य अनुशासनवान होते है उन्हें सतत संस्कारित कर ऊँचा उठाते हैं । अपने शिष्यों में आध्यात्मिक संत युवा आचार्य श्री विशुद्ध सागरजी, क्षमामूर्ति आचार्य श्री विशद् सागर जी नवचेतना के दूत आचार्य श्री विभवसागरजी, ज्ञानमनीषी आचार्य श्री विमर्श सागरजी, आचार्य श्री विनिश्चय सागरजी, आचार्यश्री विहर्ष सागर जी तथा प्रवचन पटु आचार्य श्री विमद सागर जी आदि को तो आपने २००५ कुंथुगिरि से ही आचार्य पद की घोषणाओं कर दी थी, किन्तु धन्य है ऐसे शिष्यों को, कि उन्होंने पद की होड़ नहीं की । अपितु उक्त महाराजों में से अभी ३ मुनिराजों को गुरुदेव ने ही अपने हाथों से उन्हें आचार्य पद के योग्य शिक्षा एवं प्रायश्चित ग्रंथ पढ़ाने के पश्वात औरंगाबाद में ३१ मार्च २००७ को तथा मुनि श्री विमर्श सागर जी एवं मुनि श्री विनम्रसागर जी को बांसवाड़ा (राज.) में १२.१२.२०१० को आचार्य पद से विभूषित कर अपने हृदय की उदारता का साकार दर्शन दिया।

अनुशासक वही हो सकता है जो प्रथम स्वयं ही अनुशासन के सांचे में ढ़ला हो, वे अनुशासन में मात्र ढ़ले ही नहीं, किन्तु समग्र शिष्यों को भी अनुशासन में ढ़ाला है यद्यपि अनुशासन विहीन ईर्ष्यालु कुछ शिष्यों ने अपना ग्रुप बना दैविक झूठे चमत्कारों की ख्याति अर्जन हेतु अनुचित प्रयत्न किये किन्तु आचार्यश्री ने उन्हें प्रथम समझाया जब वे नहीं माने तो उन्हें संघ से बहिष्कृत कर दिया जिससे उन लोगों ने समय-समय पर आप पर छींटा कशी भी की, किन्तु आप जरा भी विचलित नहीं हुए । सूर्य की भाँति प्रकाशमान ही होते रहे हैं तथा आपने अनुशासन में किंचित् भी ढ़ील नहीं दी और न किसी परिस्थिति के सन्मुख घुटने टेके हैं। यही कारण है उनमें से कतिपय लोगों ने क्षमायाचना कर प्रायश्चित लिया ।

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी - वैराग्य को दृढ़ करने एवं साधना को निर्दोष बनाने तथा आगमानुकूल चर्या बनाने के लिए, समय का सदुपयोग, धर्म ध्यान की वृद्धि एवं केवलज्ञान की उत्पत्ति में कारणभूत अहर्निश आचार्य प्रणीत शास्त्रों के स्वाध्याय में आप निमग्न रहते हैं तथा अपने साधु समूह को भी निरंतर स्वाध्याय के महत्त्व को बताकर उन्हें अध्ययन के लिए प्रोत्साहित एवं प्रेरित करते रहते हैं, यही कारण है कि आपने श्री षट्खण्डागम जी धवला की ५ वर्षों में १६ वाचनायें बुंदेलखण्ड में मूर्धन्य विद्वानों की उपस्थिति में निर्विघ्न पूर्ण की तथा गुजरात के अहमदाबाद नगर के उस्मानपुरा (गुज.) में कषाय पाहुड जय धवल टीका भाग-1, भाग-2 की वाचना विद्यासागर तपोवन सिद्ध क्षेत्र तारंगाजी (गुज.) में, भाग-3 की वाचना केशरियाजी (राज.) एवं लोहारिया में तथा भाग-4 की वाचना खांदू कॉलोनी बांसवाड़ा एवं केकड़ी में निर्विघ्न पूर्ण हुई । साथ में अनेक स्थानों में सम्यग्ज्ञान शिक्षण शिविर व विद्वत गोष्ठि का सफल आयोजन किया तथा आपने अपने शिष्यों को महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, अष्टसहस्त्री, त्रिलोकसार, तिलोयपण्णति, गोम्मटसार, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, मूलाचार, आचारसार, लब्धिसार प्रमेयरत्नमाला, परीक्षामुखसूत्र, आप्तमीमांसा, प्रमाणप्रमेयकलिका, न्यायादीपिका लघीयस्त्रय जैसे महान ग्रंथों का अध्ययन कराया, जिससे स्पष्ट है कि आप चारों अनुयोगों के प्रकाण्ड विद्वान हैं । यही देख स्वस्ति श्री भट्टारक चारूकीर्ति जी श्रवणबेलगोला के मुख से शब्द प्रस्फुरित हुए कि "आचार्य विराग सागरजी एवं उनका संघ चलती-फिलती युनिवर्सिटी है।"

श्रुतसेवा - ज्ञान के प्रति अभिरूचि होने से आप निरंतर श्रुत सेवा में तल्लीन रहते हैं और आगम के चिंतन एवं मनन के द्वारा तत्त्व की गहराई में उतरकर उसके गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन कर आगम की पुष्टि करते हुए लोगों की भ्रांति को दूर कर उनके सम्यग्दर्शन को निर्मल करते हैं । इस प्रकार आपने आगम के आधार से अपने साधना काल में अनेक कृतियों का सृजन कर माँ जिनवाणी के भण्डार को समृद्ध कर एवं पर के मिथ्यांधकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश किया है, जिसमें मुख्य कृतियाँ सम्यग्दर्शन, व्यसन विचार, जिनेन्द्र दर्शन पूजन, शुद्धोपयोग, तीर्थंकर दिव्य दर्शन, सल्लेखना से समाधि, आगम चक्खू साहू, परम दिगम्बर जैन मुनि, सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म आदि

है । जिसमें शुद्धोपयोग कृति, जिस पर लगभग १५० विद्वानों ने समीक्षा कर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है क्योंकि यह कृति अनेक मिथ्या विकल्पों का निसर्ग करती है । साहित्य सृजन की इस श्रृंखला में प.पू. कुंदकुंदाचार्य स्वामी द्वारा रचित वारसाणुपेक्खा नामक ग्रंथ पर आपके द्वारा लिखी गई **"संस्कृत सर्वोदय टीका"**, तथा रयणसार ग्रंथ पर संस्कृत **"रत्नत्रय वर्धिनी टीका"**, जिन आगम के लिए एक ऐतिहासिक उपलब्धि है क्योंकि प. पू. आचार्य कुंदकुंदस्वामी के इस ग्रंथ पर संस्कृत टीका अभी तक अनुपलब्ध थी, श्रुत सेवा में आपका यह महान अवदान युगांत तक सदैव स्मरण किया जायेगा। इस तरह सर्जना के क्षेत्र में लगभग ५० पुस्तकों के द्वारा सरस्वती के भण्डार को भरने का आपने जो भगीरथ कार्य किया है वह अनुपम है इनमें भारतीय साहित्य, धर्म, दर्शन, ज्ञान और चारित्र के ऐसे बहुविध रूप देखने को मिलते हैं जिन्हें देखकर आचार्यश्री की बहुमुखी प्रतिभा का सहज ही आकलन किया जा सकता है।

आपकी सत् प्रेरणा से श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ, भिण्ड अनेकों धार्मिक एवं लौकिक (शिशु, प्राईमरी, मिडिल एवं हाईस्कुलीय) शिक्षायें प्रदान कर रही हैं । इसी प्रकार पन्ना में श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन स्कूल, ब्रजपुर में श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन विद्यालय भी अपनी मिडिल तक की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं । बीना में आचार्य विराग सागरजी बी.एड. कॉलेज ने अल्प समय में बहुत बड़ी सफलता हासिल की है ।

धर्म प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में विराग वाणी मासिक पत्रिका निरन्तर हर स्तर के आलेखों से भरपूर रहती हुई जन मानस को आकर्षित करती है ।

बहुआयामी विशेषताओं से समन्वित पूज्य आचार्यश्री के दर्शन इस रूप में भी करें :-

1. जो T.V., मोबाईल तथा लेफ्टोफ का तथा पंखा, कूलर एंव A.C. का उपयोग नहीं करते हैं।
2. जो बाथरुम में लघुशंका एवं शौचालय में दीर्घशंका (शोच) नहीं जाते हैं।
3. जो करीब २५ वर्षों से नाखून अपने हाथ से निकालते है (ब्लेड, नेलकटर या कैंची से नहीं निकालते हैं)

4. जिन्हें कभी थूकते हुए नहीं देखा गया हैं।
5. जो आहार में द्विदल नहीं लेते हैं।
6. दही तेल का जिनका आजीवन त्याग हैं।
7. सभी प्रकार की हरी पत्तियाँ एवं मटर के अलावा सभी हरी फलियों का जिनका आजीवन त्याग हैं।
8. जो प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी को नीरस करते हैं।
9. जो किसी भी महिला से एकान्त में अकेले चर्चा नहीं करते हैं।
10. जिनका कोई प्रोजेक्ट नहीं है तथा चंदा चिट्ठा से दूर रहते हैं।
11. जिनके संघ में मोटर, कार, जीप तथा अनावश्यक परिग्रह नहीं हैं।
12. जिनके संघ में कोई संघ संचालिका नहीं हैं।
13. जो तंत्र, मंत्र नहीं करते तथा किसी की कुण्डली एवं हाथ आदि नहीं देखते हैं।
14. जो औषध (दवाईयाँ) को न रखते है न बताते हैं।
15. जिनमें पंथ-परंपरा का कोई दुराग्रह नहीं हैं।
16. जो गरीब और अमीर को समान रूप से देखते हैं।
17. जो सदैव ज्ञान-ध्यान और तप में लीन रहते हैं।
18. जो किसी की बुराई/निंदा न सुनते हैं और न करते हैं।
19. बड़े-बड़े कष्टों में जिनकी सहिष्णुता देखी गई हैं।
20. बड़े-बड़े उपसर्गों में भी जिनकी बड़ी धैर्य व समता के दर्शन हुए।
21. जिन्होंने अभी तक विभिन्न मंत्रों की लगभग तीस लाख से भी अधिक जाप की हैं।
22. जो विहार आदि के समय में भी प्राय: जाप करते रहते हैं।
23. जो श्वासोच्छ्वास में कार्योत्सर्ग करते हैं।
24. जो मुनिचर्या के 28 कृतिकर्म प्रतिदिन करते हैं।
25. जो अपने संघस्थ साधुओं को आगम, अध्यात्म, सिद्धांत, व्याकरण, न्याय आदि की शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा भी देते हैं।
26. जो संघस्थ आबाल-वृद्धों का पूरा ध्यान रखते हैं।
27. जिन्होंने अभी तक कर्मदहन, णमोकार पैंतीसी, सर्वदोष परिहार, प्रत्याख्यान,

पंचविंशतिका, वचनगुप्ति, नीतिसागर, षड्रसी, भक्तामर, समवशरण व्रत कर लिये हैं तथा चारित्र शुद्धि व्रत कर रहे हैं।

28. जो प्रत्येक अष्टमी, चतुर्दशी को प्राय: २२ घंटे का मौन रखते हैं । तथा प्रतिदिन जो आवश्यकों के अलावा भी एक घंटे का मौन रखते हैं।

29. विशाल संघ के संचालन की जिनकी अपूर्व ही क्षमता हैं।

30. जिनका 10 अन्न एवं 15 हरी का आजीवन नियम हैं।

प्रतिभा सम्पन्न गणाचार्य – १६-१७ अगस्त २००३ जब उपसर्ग के बादल आप पर मंडराये, तब आपकी एक आसन से ३६ घंटे की लगातार निराहार योग ध्यान साधना, अथाह समता, मेरुवत् संकल्प शक्ति से प्रभावित होकर छत्तीसगढ़ (दुर्ग, वैशाली, भिलाई आदि अनेक स्थानों) की समाज ने आपको '**उपसर्ग विजेता**' की उपाधि से अलंकृत कर अपने जीवन को कृतार्थ किया । २००४ के चातुर्मास काल में आपकी निर्मल साधना से प्रभावित होकर कारंजा समाज ने आपको '**चारित्र शिरोमणि**' की उपाधि से सम्मानित कर अपने आपको गौरवान्वित किया।

आपने अपनी कुशलता के द्वारा अल्पायु में शताधिक पथिकों को मोक्ष की राह दिखाकर उनका मोक्षमार्ग प्रशस्त किया है इसलिए परम पूज्य गणाधिपति गणधराचार्य श्री कुंथुसागरजी महाराज ने २००५ में १५ आचार्यों एवं २०० साधुओं की उपस्थिति में जनसमूह के समक्ष आपको '**श्रमण रत्नाकर**' की उपाधि से सुशोभित किया था । आपने जो धवला ग्रंथ की १६ पुस्तकों की वाचना लगभग १५० विद्वानों की उपस्थिति में ५ वर्षों में पूर्ण की है इससे प्रभावित होकर २००५ में मूडबिद्री के भट्टारक श्री चारुकीर्ति जी एवं वहाँ की समाज ने आपको '**सिद्धांतरत्न**' की उपाधि प्रदान कर अपना अहोभाग्य समझा था । आपने अपने संयमी जीवन में अनेक आध्यात्मिक ग्रंथों का रसास्वादन किया है, कराया है इसलिए आप उपसर्गों से गुजरकर भी काँटों में गुलाब की तरह विकसित हुए अत: आपकी अध्यात्म साधना से प्रभावित होकर धर्माधिकारी डॉ. वीरेन्द्रकुमार हेगड़े जी ने २००५ धर्मस्थल में '**अध्यात्म योगी**' की उपाधि से विभूषित कर अपना गौरव बढ़ाया है । २००६ मेलचित्तामूर में स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेन भट्टारकजीने '**समता मूर्ति**' की उपाधि से, २००७ औरंगाबाद में त्रय आचार्य पद प्रतिष्ठा के अवसर पर परम पूज्य

आचार्य श्री विशुद्ध सागरजी महाराज, परम पूज्य आचार्य श्री विभव सागर जी महाराज, परम पूज्य आचार्य श्री विमद सागरजी एवं वहाँ की समाज ने लगभग २५ संघो के नायक होने से आपको **'गणाचार्य'** तथा २००७ शिरडशाहपुर में हुए श्री मल्लिनाथ श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक महोत्सव के पावन सुअवसर पर परम पूज्य आचार्य विभव सागरजी एवं सकल दिगम्बर जैन समाज ने **'वात्सल्य रत्नाकर'** की उपाधि से विभूषित कर अपने जीवन में गुरु महिमा के प्रकटीकरण पर अपने जीवन को सौभाग्यशाली बनाया। आपने अपने विगत २७ वर्षों के साधनाकाल में राष्ट्र के लगभग संपूर्ण प्रांतों में भ्रमण कर अहिंसा व शाकाहार का संदेश जन जन तक पहुँचाया है अत: सन् २००७ में आपके मुनि दीक्षा के २५ वें वर्ष में प्रवेश करने पर कुंजवन उदगाँव में राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव के अवसर पर कुंजवन ट्रस्ट समिति उदगाँव, राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव समिति, राष्ट्रीय विराग युवा व महिला मंच भिंड तथा सांगली एवं विधायक कपूरचंद जी धुवारा ने आपको **'राष्ट्रसंत'** की उपाधि प्रदान की। इसी अवसर पर प. पू. निमित्तज्ञानी आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज की कीर्ति को देश-प्रदेशों में प्रचार करने से प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागर जी महाराज ने आपको **'विमल कीर्ति'** की उपाधि दे असीम वात्सल्य का अद्वितीय उपहार दिया, आपकी निर्मल छवि को देख सकल दिगम्बर जैन समाज व विमर्श सेवा समिति शिवपुरी ने **'आचार्य गौरव'** तथा सिद्धांत शास्त्रों के अभीक्ष्ण ज्ञान से ओत प्रोत होने से पं. धनपाल हबले सहित उपस्थित विद्वानों ने आपको **'सिद्धांत चक्रवर्ती'** की उपाधि से विभूषित किया। वर्तमान में न्याय एवं दर्शन की क्षीण होती विद्या का आपने स्वयं अध्ययन किया एवं विशाल शिष्य समूह को कराया इसलिए **'राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा वर्ष समापन समारोह २००८'** की भव्य आयोजना के अवसर पर श्री १००८ पार्श्वनाथ स्वामी देहरासर ट्रस्ट, गुलालवाड़ी, मुंबई सहित भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी जी कोल्हापुर, भट्टारक लक्ष्मीसेन स्वामी जी मेलचित्तामूर, प्रतिष्ठाचार्य प्रदीप जैन, प्रतिष्ठाचार्य कमलशास्त्री कोलकाता तथा पंडित भरत काला आदि ने प.पू. गुरुदेव को **'न्याय भास्कर'** की उपाधि प्रदान की। तथा इसी अवसर पर मुनि श्री विवर्जन सागर जी महाराज की भावना के अनुरूप सकल दिगम्बर जैन समाज आदम्पाकम (चेन्नई) तथा पं. सिहचंद्र जी शास्त्री ने आपको **'श्रमण सूरि'** की उपाधि से विभूषित किया।

इसी श्रृंखला में २००९ में १००८ श्री नेमीनाथ भगवान एवं ७२ करोड़ ७०० मुनिराजों की निर्वाणस्थली श्री गिरनार जी सिद्धक्षेत्र पर आयोजित सप्त मुनि दीक्षा के पावन अवसर पर गिरनार गौरव प.पू. आचार्य श्री निर्मल सागर जी महाराज ने '**आचार्यरत्न**' की उपाधि प्रदान कर असीम वात्सल्य का परिचय दिया । तथा २००९ में तलोद नगर में हुई पद्मनंदी पचविंशति: ग्रंथ की वाचना के पावन प्रसंग पर तलोद (गुज.) समाज द्वारा '**विद्या वारिधि**' की उपाधि दे अपने भाग्य को प्रशंसनीय किया तथा वैज्ञानिकाचार्य श्री कनकनंदीजी महाराज ने २०१० डूंगरपुर (राज.) में **प्रशांतमूर्ति** की उपाधि से अपने वात्सल्य का नीर उड़ेल दिया। साथ ही २०१० में लोहारिया (राज.) की सम्पूर्ण समाज ने आपकी आगमिक एवं आदर्शमयी चर्या को देखकर '**चर्या चूड़ामणि**' की उपाधि दे अपने जीवन को कृतार्थ किया तथा २०१० द्वय आचार्य पद प्रतिष्ठा के अवसर पर मुनि विमर्शसागरजी एवं मुनि विनम्रसागरजी ने बांसवाड़ा (राज.) में **सूरिगच्छाचार्य** की उपाधि दे सुयोग्य शिष्यत्व का परिचय दिया।

२०११ अजमेर चातुर्मास के तहत समग्र जिले में विश्वहित की भावना से चलाये गये व्यसनमुक्ति अहिंसा शाकाहार अभियान का सफल नेतृत्व देखकर आपक   ो समग्र अजमेर समाज ने ''विश्वहितैषी'' तथा असीम वात्सल्य को पा महासभा के पदाधिकारियों सहित अजमेर समाज ने आपको ''वात्सल्य पुञ्ज'' की उपाधि से अलंकृत कर स्वयं को गौरवान्वित किया।

इसी प्रकार आपके लिए समय-समय पर विभिन्न स्थानों पर विद्वानों ने उपाधियाँ दी, यथा सन् १९८८ बरासों में समाज ने '**क्रांतिकारी संत,**' १९९४ बीना की समाज ने '**बुंदेलखण्ड के प्रथमाचार्य,**' १९९५ जबलपुर में साहित्य मनीषी श्री सुरेश 'सरल' जी ने '**निस्पृही संत,**' १९९९ भिण्ड में पण्डित सुमतिचंद्र जी शास्त्री ने '**अध्यात्म सिद्धांत वारिधि,**' २००१ गया में श्री पण्डित लक्ष्मण प्रसाद जी ने '**न्याय मार्तण्ड,**' २००२ श्रेयांसगिरि में '**तीर्थ उद्धारक एवं संत शिरोमणि,**' २००४ राजिम में पण्डित श्री ऋषभकुमार जी ने '**समाधि सम्राट**' २००५ शमनेवाड़ी में परम पूज्य आचार्य गुणधरनंदी जी ने '**ज्ञान दिवाकर**' की उपाधि से विभूषित कर अपने आप को गौरवान्वित किया।

कृतित्व एवं व्यक्तित्व की गौरव गाथा - आपके ऊर्जा पूर्ण महामानवीय जीवन पर साहित्य मनीषी श्री सुरेश 'सरल' जी ने '**निस्पृही संत**' कृति तथा प्राकृत मनीषी प्रो. उदयचंदजी उदयपुर ने साहित्य विद्या से परिपूर्ण प्राकृत भाषा में '**विराग सेतु**' महाकाव्य भाग- 1-2 कृति लिख जन मानस को आचार्य श्री के असीम व्यक्तित्व से परिचय कराया है एवं डॉ. लोकेश खरे ने आपके असीम कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर पी.एच.डी. कर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है तथा आपके राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा के अवसर पर विरागाभिवंदन अभिनंदन कृति का सृजन किया गया था।

अहिंसा और मानव धर्म के संदेश वाहक - आज सर्वत्र हिंसा का साम्राज्य है । यह हिंसा किसी जीव की नहीं वरन् उन मूल्यों की है जो हमारी संस्कृति के प्रबल आधार है । सांस्कृतिक मूल्यों का आज जिस तरह से ह्रास हो रहा है वह अत्यन्त दुःखदायी है । मानवीय सम्बन्धों में जिस तीव्रता के साथ बेचारगी का बोलबाला बढ़ रहा है उससे आत्मीयता धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है । संवेदनशून्य मानव आज जिस मुकाम पर खड़ा है वह एकदम हताश, निराश और विवश है, ऐसे नैराश्य के वातावरण में आचार्य श्री की वाणी के द्वारा जिन अमृत वचनों की वर्षा जगह-जगह पर हो रही है वह संतप्त मानवों के लिए संजीवनी की तरह जीवनदायिनी का काम कर रही है । जीवन का अर्थ क्या है ? इसे अर्थवान बनाने के लिए किन-किन चीजों की आवश्यकता होती है? इतिहास के द्वारा स्मरण पाना कैसे संभव है ? आदि; जीवन के उन शाश्वत सूत्रों का संदेश हमें आचार्य श्री के साहित्य में देखने को मिलता है । व्यक्ति को आज इस बात का बोध होना चाहिए कि सबसे बड़ा मानव धर्म है । इसकी रक्षा के लिए व्यक्ति को सतत सचेत रहना चाहिए। आचार्य श्री ने मानव धर्म और महावीर के प्रमुख सिद्धांत अहिंसा का जन-जन तक पहुँचाने का जो स्तुत्य कार्य किया है उसे इतिहास कभी विस्मृत नहीं कर पायेगा ।

卐 卐 卐

अर्हंत, आगम व आचार्यों की बात.....

प्राय: लोग "अन्तर्मन की तो बात करते है किन्तु" आगम की नहीं करते। सुनी-सुनाई बात करते है किन्तु स्वयं पढ़ने का प्रयत्न नहीं करते है। जितना और जैसा पढ़ा दिया है उतना और वैसा तो कह देते है किन्तु इसके आगे स्वयं पढ़ने का प्रयत्न नहीं करते । पढ़ाई-सुनाई गई बातों पर ही निर्णय ले बैठते है किन्तु स्वयं आगम का मंथन नहीं करते अथवा शब्दों को तो पकड़ लेते है किन्तु आगम की अपेक्षाओं तथा प्रकरणों के सही अर्थ तक नहीं पहुँच पाते है इसलिये येन केन प्रकारेण अपनी मान्यता की सिद्धि तो की जाती है किन्तु सत्य की सिद्धि नहीं की जाती है। ध्यान रखिये, अंतर्मन मिथ्यादृष्टि का भी होता है, उसका भी हृदय होता है किन्तु वह (अंतर्मन की बात) प्रामाणित नहीं की जा सकती है। इसी प्रकार अंतरात्मा कोई केवल ज्ञानी नहीं, किन्तु वह भी छद्मस्थ है क्षायोपशमिक ज्ञानी है वह भी सर्वज्ञ वचन को अथवा तदानुसार आचार्यों के, शास्त्रों के वचन को ही प्रमाण मानता है । मात्र अन्तर्मन या अन्तरात्मा के वचन को नहीं। एक शब्द के दो अर्थ ही नहीं, किन्तु अनेक अर्थ लगाये जा सकते है क्योंकि कहा भी है कि "**शब्दानामनेकार्थः**" अर्थात् शब्दों के अनेक अर्थ होते है अत: हमें प्रकरण के अनुसार जहाँ जो अर्थ आचार्यों ने किया है वहाँ वैसा ही अर्थ लगाना चाहिए। तो कभी भी अनेकार्थ होने पर भी, सम्यक् अपेक्षा कृत होने पर भी कोई अंतर नहीं आयेगा। हाँ, जहाँ जो अर्थ आचार्यों या आगम से निकलता ही न हो उसे हम निकालने का बलात् प्रयत्न करे तो जरुर अंतर आ जायेगा। फासला हो जायेगा, मत भेद और फिर मन भेद आ जायेगा, स्वतंत्र संप्रदाय बन जायेगा। संप्रदाय जन्म ही तब लेता है जब कि सत्य आगम की बात को नहीं, किन्तु अंतर्मन की बात को प्रामाणिकता दे देता है तब एक ही शब्द के दो अर्थ तो हो सकते है किन्तु एक ही भाव / प्रयोजन / उद्देश्य अपेक्षा के दो अर्थ नहीं हो सकते है फिर भी एक ही भाव के दो अर्थ निकालकर उसमें कोई विशेष फर्क नहीं मानना, सबसे बड़ी भूल है अंतर की बात को पकड़ने के स्तर की अपेक्षा, अर्हंत की बात को पकड़ने का स्तर बनाना चाहिए।

अंतर्मन की बात गलत भी हो सकती है क्योंकि छद्मस्थ की बात है किन्तु अर्हंत की बात कभी गलत नहीं हो सकती। वर्तमान में कोई केवली, मनः पर्यय ज्ञानी नहीं है जो किसी के अंतर की बात को जान सके। काश, चतुर्थ काल भी होता और केवली या मनः पर्यय ज्ञानी भी होते तो वे आगमानुसार आपके अंतरमन की बात को जानकर प्रामाणिकता दे देते किन्तु आगम विरुद्ध अंतरर्मन की बात को

जानकर प्रमाणिकता नहीं देते। अतः हम अपनी सूक्ष्म गहरी बात (भाव) को पकड़ने में ज्ञान का उघाड़पन (क्षयोपशम) की अपेक्षा आगम की सूक्ष्म गहरी बात (भाव) की योग्यता तथा क्षमता को जगायें तो कभी भी कोई भी अंतर नहीं पड़ेगा अनंत ज्ञानी का भी एक ही मत होगा किन्तु जब अपने अपने अन्तरमन की बात कही जाएगी तो "**मेनी मेन मेनी माईंडस**" अथवा **कुण्डे कुण्डे पयः, तुण्डे तुण्डे सरस्वती अर्थात्** जितने गड्ढे होंगे, उतने प्रकार का पानी होगा। उसी प्रकार जितने प्रकार के मनुष्य होंगे, उतने प्रकार का सभी का अपना अपना सोच होगा। इसलिये बल देना ही उचित होगा "निश्चय सम्यग्दर्शन जो गृहस्थावस्था में तीर्थंकर आदि के होता है वह वस्तुतः सराग तथा व्यवहार ही है उसे वीतराग या निश्चय मानना नितांत भूल है" कहा भी है **शुभरागयोगात् सराग सम्यग्दृष्टियो भवन्ति। या पुनस्तेषां (निश्चय सम्यत्वं गृहस्थावस्थाया तीर्थंकर परमदेव भरत सगर राम पाण्डवादीनां विद्यते न च तेषां वीतराग चारित्रम्) सम्यक्त्वस्य निश्चय सम्यक्त्व संज्ञा वीतराग चारित्र विना भूतस्य निश्चय सम्यक्त्वस्य निश्चय सम्यक्त्वस्य परंपरया साधकत्वादिति। वस्तुवृत्त्या तु तत्सम्यक्त्वं सराग सम्यक्त्वाख्यं व्यवहार सम्यक्त्वमेवेति भावार्थः।**

अर्थ : शुभराग के योग से सराग सम्यदृष्टि होते है जो पुनः उनके (निश्चय सम्यक्त्व गृहस्थावस्था में तीर्थंकर परमदेव, भरत, सगर, राम, पाण्डव आदि को होता है किन्तु उनके वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है) सम्यक्त्व को निश्चय सम्यक्त्व संज्ञा है वह वीतराग चारित्र के अविनाभाव भूत निश्चय सम्यक्त्व के परम्परा से साधक होने के कारण है वास्तव में तो वह सम्यक्त्व सराग सम्यक्त्व के द्वारा कहा जाने वाला व्यवहार सम्यक्त्व ही है ऐसा भावार्थ हुआ।

इस प्रकार गृहस्थावस्था में तीर्थंकरादि को सराग सम्यग्दर्शन ही आगम से सिद्ध है अब उसे कोई वीतराग सिद्ध करना चाहे तो उसके अंतर्मन की तो बात हो सकती है किन्तु आगम की नहीं।

व्यवहार संयम, सराग संयम, अपहृत संयम, निश्चय संयम, वीतराग संयम, परमोपेक्षा संयम के साधक होने से व्यवहार ही है उसे निश्चय साध्य मान लेना या साधक ही नहीं मानना, नितान्त भूल ही है।

और ये बात भी सिद्ध ही है कि अविरत सम्यग्दृष्टि को या देश संयमी (संयमासंयमी) को निश्चय सम्यक्त्व या वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान / स्वानुभूति या सामायिकादि काल में शुद्धोपयोग तो पाया ही नहीं जाता है तो फिर भी उसे सिद्ध करने का प्रयास आगम के अर्थों को तोड़ना-मरोड़ना ही कहलायेगा।

"**श्रावकाणामपि सामायिकादि काले शुद्ध भावना दृश्यते**"

इस वाक्य में कहा है कि श्रावकों को भी सामायिक आदि के काल में शुद्ध भावना देखी जाती है। ध्यान दें उपर्युक्त वाक्य में शुद्ध भावना शब्द आया है न कि शुद्धोपयोग। यहाँ भावना और उपयोग दोनों को एक अर्थ में ग्रहण नहीं करना चाहिए।

भावना का अर्थ है "**पुनश्पुनश्चिंतनं भावना**" (पं. का. ता. वृ. ४३) अर्थात् बार-बार चिंतन करना भावना है अथवा "**अनंतज्ञानोऽहमनन्त-सुखोऽहमित्यादि भावना**" (वृ.द.सं. टी. ४८/२०१/२०४) अथवा अविरत सम्यग्दृष्टि, देशव्रत, प्रमत्त संयत गुणस्थान तारतम्येन क्रमशः शुभोपयोग-भवति। अप्रमत्त गुणस्थानमादि कृत्वा क्षीणकषायपर्यन्ते गुणस्थान षट् पर्यन्तं क्रमेण उत्तममध्यमजघन्य भेदेन क्रमशः शुद्धोपयोग विद्यते।

कुछ लोग अंदर की बात को निश्चय तथा बाह्य अभिव्यक्ति को व्यवहार कहते है। जबकि आगम (**निश्चनयोऽभेद विषयो। आ.प. १०**) अभेद को विषय करने वाला निश्चय नय है अथवा (**आत्माश्रितो निश्चयनयः। स.सा.आ. २७२**) निश्चय नय आत्मा के आश्रय से होता है। इसमें अंदर की कोई बात ही नहीं है।

इसी प्रकार व्यवहार नय (**पराश्रित व्यवहारः, स.सार आ. ख्या. २७२**) अथवा (**व्यवहार नयो भेद विषयः**) कहा, यहाँ भी बाहर की कोई बात नहीं है। यदि निश्चय-व्यवहार को अंदर-बाहर की बात कहे सो भी गलत है क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव जो-जो भी पुण्य क्रिया करता है वह अंदर से करता है तभी स्वर्गादि के कारण बनती शुभलेश्या रुप परिणाम बनते है। यदि मात्र बाह्य ही रहे तो भावशून्य क्रिया तो स्वर्ग का भी कारण नहीं बन सकेगी, इसी तरह मिथ्यादृष्टि का अंतरभाव निश्चय मिथ्यादृष्टि तथा बाह्य क्रियाओं को व्यवहार मिथ्यादृष्टि कहना पड़ेगा, किन्तु ऐसा किसी शास्त्र में पढ़ने में नहीं आया।

अतः अध्यात्म दृष्टि से अंतर को निश्चय और बाह्य को व्यवहार नहीं कहना चाहिए। अंतरंग-बहिरंग शब्द आगम भाषा में किये जाते है जबकि निश्चय-व्यवहार शब्द का प्रयोग मुख्य रुप से अध्यात्म भाषा में होता है।

प्रायः साधुजनों में स्वाध्याय के साथ आगम के शोधात्मक / खोजात्मक वृत्तियाँ कम पाई जाती है प्रायः वे स्वाध्याय तो करते है किन्तु जनमानस में उलझे हुए विषयों के शोध कम करते है वे प्रायः पूजा, विधान, प्रवचन, प्रकाशन, सम्मेलन या निर्माण आदि बाह्य प्रभावना में ही संलग्न देखे जाते है। तथा विद्वत जगत् तो प्रायः लुप्त सा ही होता जा रहा है। जो है सो सर्विस प्रधान है जो दूसरों के आलेखों को पढ़कर अपना आलेख तो बना लेते है गोष्ठी या पत्रिका में प्रकाशित

भी कर देते है पर आलेख लेखन में जो मेहनत होना चाहिए वह नहीं होती, उसका मुख्य कारण है उनके पास न तो उतना समय रहता है और न ही उतनी रुचि तथा परिश्रम, अत: कोई ठोस नये काम नहीं हो पाते है।

संपादकों की कलम समालोचना के लिए जितनी जल्दी उठ जाती है उतनी समीक्षात्मक नहीं उठ पाती है।

कोई किसी भी पक्ष का विद्वान क्यों न हो किन्तु उसे तथा उसके परिश्रम को प्रोत्साहन मिलना चाहिए कि उसने आगम के किसी पहलु की गहराई में उतरने की पहल तो की, यदि आज गलत भी हो, तो कल और खोज होने पर वह सम्यक् तत्त्व तक पहुँच सकता है। उसकी अपशब्दों द्वारा भर्त्सना नहीं, किन्तु सम्मानीय शब्दों द्वारा दिशा निर्देश देना चाहिए, समालोचना में किसी के नाम के उजागर की अपेक्षा "कुछ लोगों की मान्यता ऐसी है" ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए ताकि उसके सम्मान में, सामाजिक प्रतिष्ठा में तथा धर्म रुचि में, चिंतन, मंथन, शोध में कोई गलत प्रभाव न पड़े आपसी कटुता न बड़े अपितु परस्पर में एक दूसरे के अभिप्राय समझने के तथा समझाने में वात्सल्य भाव बना रहे, समय – समय पर एक दूसरे के साथ बैठकर गोष्ठियों में विचार विमर्श होता रहे। तभी आगम की सच्ची भक्ति तथा धर्म की सच्ची प्रभावना होती रहेगी। और उलझे विषयअवश्य ही सुलझेंगे। नई पीढ़ी में भी ज्ञान चेतना जाग्रत हो सकेगी। और इतर धर्म वालों पर भी सम्यक् प्रभाव पड़ेगा, कटुता से अलगाव और अलगाव से विद्वेष भाव जगते है जो विसंवाद, विवाद तथा विच्छेद के कारण बन जाते है जिससे तत्त्व शोध नहीं, किन्तु अहंकार बढ़ता है और प्रतिशोध जगते है। विद्वतजन अवश्य ही उक्त बातों पर ध्यान दें।

मैंने प्रस्तुत आध्यात्मिक शंका–समाधान को आगम के परिपेक्ष्य में लिखने का एक लघु प्रयास किया है। इसमें किसी भी प्रकार का पक्षव्यामोह या दुराग्रह नहीं; जो भी है लगभग सभी आगम के समाधान है। फिर भी यदि किसी को इस विषय में और भी अन्य प्रकार से भी प्रमाण मिले, वे सभी आमंत्रित है। अगले प्रकाशन में उन्हें भी जोड़ा जायेगा। मुख्य लक्ष्य मात्र इतना ही है कि सामान्य जन आगम और अध्यात्म के इन वाक्यों द्वारा अपना भ्रम निवारण करें, जो सही सूझ उत्पन्न करते है तथा आप अपने सम्यक्त्व का यथार्थ परिचय दें।

इत्यलं विस्तरेण

गणाचार्य विराग सागर

अनुक्रमणिका

१. नय

१. तत्त्व का ज्ञान किसके द्वारा होता है? पृ. ०१

२. नय किसे कहते है? पृ. ०१

३. नय के मुख्य कितने भेद है? पृ. ०४

२. निश्चय नय

४. आगम ग्रन्थों में निश्चय नय का स्वरूप किस प्रकार कहा गया है? पृ. ०५

५. अध्यात्म ग्रन्थों में निश्चय नय का स्वरूप किस प्रकार कहा गया है? पृ. ०५

६. निश्चय नय के कितने व कौन से भेद है? पृ. ०५

७. शुद्ध निश्चय नय को सविस्तार समझाइए? पृ. ०५

८. क्या शुद्धाशुद्ध निश्चय नय द्रव्यार्थिक नय है? पृ. ०६

९. क्या अशुद्ध निश्चय नय व्यवहार नय है? पृ. ०७

१०. उपर्युक्त वाक्य को किसी दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कीजिये? पृ. ०७

११. अशुद्ध नय को शुद्ध या निश्चय नय कह सकते है? पृ. ०७

१२. क्या एक देश शुद्ध निश्चय नय भी होता है इसे सोदाहरण समझाने की कृपा करें? पृ. ०७

१३. क्या शुद्ध निश्चय नय का विषय वचनातीत है? पृ. ०९

१४. क्या निश्चय सम्यग्दृष्टि शुद्ध नय का ही आश्रय लेते है? पृ. ०९

१५. शुद्ध नयावलम्बन से ही क्या आत्मलाभ होता है? पृ. ०९

१६. कौन सा नय आराधनीय है? पृ. १०

१७. क्या अशुद्ध नय से अशुद्धात्मा का ही लाभ होता है? पृ. १०

१८. क्या शुद्ध नय के आश्रय से शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है? पृ. १०

१९. कुछ लोग अंतरंग सम्यग्दर्शन को निश्चय तथा उसके बाह्य प्रशमादि को व्यवहार कहते है ये बात क्या सही है? पृ. १०

२०. तो क्या प्रशमादि भाव अंतरंग में होते है बहिरंग में नहीं? पृ. ११

२१. तो क्या प्रशमादि भाव मिथ्यादृष्टि को नहीं हो सकते है? पृ. ११

२२. तो क्या वे मात्र बाह्य में ही होते है, अंतरमन से आत्मा या हृदय में नहीं होते और यदि नहीं होते तो फिर मिथ्यादृष्टि नौ ग्रैवेयक तक कैसे जाता है? घानी में पेले जाने पर भी उनमे बाह्य उपशमादि भाव दिखता है? पृ. ११

२३. अब समझ में आया कि उसके प्रशमादि भाव सम्यक्त्व से रहित होने के कारण मोक्ष के कारण नहीं होते। किंतु अंतरंग और बहिरंग में उसे हो सकते है किन्तु यदि सम्यक्त्व के साथ है तो वे मोक्ष के कारण हैं इसे एक बार फिर से समझा दीजिए? पृ. ११

२४. अंतरंग सम्यग्दर्शन के साथ अंतरंग-बहिरंग प्रशमादि भाव होते ही है क्या? पृ. १२

२५. तो फिर सात प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम नियम से निश्चय सम्यग्दर्शन है? पृ. १२

३. व्यवहार नय

२६. व्यवहार नय किसे कहते है? पृ. १३

२७. व्यवहार नय क्या अपरमार्थ है? पृ. १३

२८. व्यवहार नय का आश्रय किसे नहीं लेना चाहिए? पृ. १३

२९. व्यवहार नय को ही कोई परमार्थ मान ले तो? पृ. १३

३०. तो क्या व्यवहार नय सर्वथा असत्य है? पृ. १४

३१. तो क्या व्यवहार, व्यवहार नय से सत्य है? पृ. १४

३२. तो क्या निश्चय नय ही प्रयोजनवान् है व्यवहार नहीं? पृ. १५

३३. अपरम भाव में स्थित प्राथमिक जन कौन है? पृ. १५

३४. क्या व्यवहार बिना केवल निश्चय से ही कार्य सिद्धि नहीं होती? पृ. १५

३५. व्यवहार नय क्या किसी को किसी भी काल में प्रयोजनवान नहीं है? पृ. १६

३६. तब तो परमार्थ का ही उपदेश देना चाहिए फिर व्यवहार का क्यों? पृ. १६

३७. क्या व्यवहार नय के आश्रय के बिना शुद्ध स्वरूप का आश्रय संभव है? पृ. १७

३८. व्यवहार नय से परद्रव्य को अपना कहने से अज्ञानी कैसे कहा जा सकता है? पृ. १८

३९. व्यवहार नय क्या पराश्रित है? पृ. १९

४०. व्यवहार नय क्या पर्यायार्थिक भी है? पृ. १९

४१. व्यवहार नय को स्पष्ट समझाते हुए उसके भेद भी समझाइए? पृ. १९

४. उपनय

४२. उपनय किसे कहते है तथा उसके कितने भेद है? पृ. २०

४३. सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते है दृष्टांत द्वारा समझाइए? पृ. २०

४४. सद्भूत व्यवहार नय के कितने व कौन – २ से भेद है? पृ. २०

४५. उपचरित सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते है? – समझाइए पृ. २०

४६. क्या उपचरित सद्भूत व्यवहार नय के भी भेद है? उदाहरण सहित समझाइए? पृ. २१

४७. अनुपचरित सद्भूत तथा शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय एक ही है? पृ. २१

४८. अनुपचरित सद्भूत व्यवहार किसे कहते है? पृ. २१

४९. क्या असद्भूत व्यवहार नय तथा अशुद्ध नय एक ही है? पृ. २२

५०. असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते है? पृ. २२

५१. असद्भूत व्यवहार नय को किसी दृष्टांत द्वारा स्पष्ट कीजिए? पृ. २२

५२. असद्भूत व्यवहार नय के कितने भेद है? पृ. २३

५३. अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते है? पृ. २३

५४. किसी दृष्टांत द्वारा स्पष्ट समझाइए? पृ. २३

५५. उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते है? पृ. २४

५६. क्या उपचरित असद्भूत व्यवहार नय को उपचार असद्भूत व्यवहार नय कह सकते है? पृ. २५

५७. किसी दृष्टांत के द्वारा इसे समझाए? पृ. २५

५. द्रव्यार्थिक नय

५८. द्रव्यार्थिक नय किसे कहते है? पृ. २६

५९. इसे ओर भी स्पष्ट कीजिए? पृ. २६

६०. द्रव्यार्थिक नय के कितने भेद है? पृ. २६

६१. शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते है? पृ. २७

६२. शुद्ध तत्त्व क्या वचन के अगोचर है? पृ. २७

६३. शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विषय को स्पष्ट कीजिए? पृ. २७

६४. अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते है? पृ. २८

६५. क्या व्यवहार नय अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है? पृ. २८

६६. उपर्युक्त वाक्य को स्पष्ट कीजिये? पृ. २८

६७. अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय भी क्या वचनों के अगोचर है? पृ. २८

६८. क्या द्रव्यार्थिक नय के और भी भेद है? पृ. २९

६९. द्रव्यार्थिक नय के दस भेद कौन-कौन से है उदाहरण सहित समझाइये? पृ. २९

६. पर्यायार्थिक नय

७०. पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं? पृ. ३३

७१. पर्यायार्थिक नय को स्पष्ट कीजिये? पृ. ३३

७२. पर्याय के पर्यायवाची नाम कौन – कौन है? पृ. ३३

७३. क्या पर्यायार्थिक नय के भी दो भेद है? पृ. ३३

७४. शुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते है? पृ. ३४

७५. अशुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते है? पृ. ३४

७६. क्या पर्यायार्थिक नय के और भी भेद है, यदि है तो स्पष्ट कीजिये? पृ. ३४

७. सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति

७७. सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति कितने प्रकार से होती है? पृ. ३७

७८. क्या कार्योत्पत्ति में निमित्त और उपादान युगपत् पाये जाते है? पृ. ३७

७९. क्या इन्हें बाह्य और अंतरंग कारण कहते हैं? पृ. ३७

८०. क्या इसे ही व्यवहार और निश्चय कहते है? पृ. ३७

८१. परद्रव्य सापेक्षी भाव क्या निश्चय नहीं हो सकता है? पृ. ३७

८२. ऐसा क्यों? पृ. ३७

८३. क्या निमित्त, उपादान को क्रमशः बहिरंग तथा अंतरंग निमित्त कह सकते है? पृ. ३७

८४. क्या अंतरंग और बहिरंग कारण और प्रकार से भी है? पृ. ३८

८५. क्या करण लब्धि निज हेतु है उसके होने पर ही दर्शनमोह का क्षय, उपशम या क्षयोपशम होता है? पृ. ३८

८६. क्या सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि भी हेतु है? पृ. ३८

८७. "आदि" शब्द से और किन-किन बाह्य हेतुओं को ग्रहण करना चाहिये? पृ. ३९

८८. काल लब्धि ही सम्यग्दर्शन का मुख्य कारण माने तो क्या दोष आयेगा? पृ. ३९

८९. जातिस्मरण आदि बाह्य कारण कौन – कौन से है? पृ. ३९

९०. किस गति में कौन – कौन से कारण पाये जाते है? पृ. ३९

९१. जाति स्मरण और जिनबिम्ब दर्शन क्या निसर्गज सम्यग्दर्शन है? पृ. ४०

९२. देवर्द्धि दर्शन का, जातिस्मरण में समावेश क्यों नहीं होता? पृ. ४०

९३. जिन बिम्ब दर्शन, प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण किस प्रकार से है? पृ. ४१

९४. लद्धि सवण्ण रिसि दंसणं पि पढम सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं होदि तमेत्थ पुध किण्ण भण्णदे? पृ. ४२

९५. नरकों में यदि जाति स्मरण को सम्यक्त्व का कारण माना जाये तो फिर सभी नारकियों को सम्यक्त्व होना चाहिए,क्यों कि वे सभी अपने विभंगावधि ज्ञान से १, २, ३ आदि भवों को स्मरण करते हैं? पृ. ४२

९६. वेदनानुभव भी सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वेदना अनुभव तो सब नारकियों के साधारण होता है। यदि वह अनुभव सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण हो तो सब नारकी जीव सम्यदृष्टि होंगे, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता है? पृ. ४३

९७. नारकी जीवों के धर्म श्रवण किस प्रकार संभव है, क्योंकि वहाँ तो ऋषियों के गमन का अभाव हैं? पृ. ४३

९८. वहाँ ही विद्यमान सम्यदृष्टियों के धर्म श्रवण के द्वारा प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति क्यों नहीं होती? पृ. ४३

९९. जिन महिमा को देखकर भी कितने ही मनुष्य प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करते है इसलिए तीन के स्थान पर चार कारणों से मनुष्य, प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करते है ऐसा कहना चाहिए? पृ. ४३

१००. जिनबिम्ब दर्शन को प्रथम सम्यक्त्व के कारण रुप से क्यों नहीं कहा? पृ. ४४

१०१. स्वर्गावतरण, जिनाभिषेक और परिनिष्क्रमण रुप जिन महिमाएँ जिनबिम्ब के बिना ही की गयी देखी जाती है, इस लिए जिन महिमा दर्शन में जिनबिम्ब दर्शन का अविनाभावीपना क्यों नहीं है? पृ. ४४

१०२. यहाँ पर (आनतादि चार स्वर्गों में) देव ऋद्धि दर्शन सहित चार कारण क्यों नहीं कहे? पृ. ४४

१०३. नव ग्रैवेयकों में महर्द्धि दर्शन नहीं है, क्यों कि यहाँ ऊपर के देवों के आगमन का अभाव है? यहाँ जिन महिमा दर्शन भी नहीं है क्यों कि ग्रैवेयक विमानवासी देव नन्दीश्वर आदि के महोत्सव देखने नहीं आते? अथवा ग्रैवेयक देव अपने विमान में रहते हुए ही अवधिज्ञान से जिन महिमाओं को देखते तो है, अतएव जिन महिमा का दर्शन भी उनके सम्यक्त्व की उत्पत्ति में निमित्त होता है, ऐसा क्यों नहीं कहते? पृ. ४५

१०४. ग्रैवेयक विमानवासी देवों में धर्म श्रवण किस प्रकार संभव होता है? पृ. ४५

८. व्यवहार सराग सम्यग्दर्शन

१०५. सम्यग्दर्शन के कितने भेद है? पृ. ४६

१०६. व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते है? पृ. ४६

१०७. उपर्युक्त लक्षणों को स्पष्ट कीजिये? पृ. ४६

१०८. प्रवचनसार तात्पर्य वृत्ति गाथा ८० के उत्थानिका वाक्य में कहा है कि...

अथ चत्तापावारंभं....... इत्यादि सूत्रेण यदुक्तं शुद्धोपयोग। भावे मोहादि विनाशो न भवति, मोहादि विनाशा भावे, शुद्धात्म लाभो न भवति तदर्थ मेवेदानी मुपायं समालोचयति। पृ. ४९

१०९. क्या अध्यात्म भाषा में कथित "निज शुद्धात्म भावनाभिमुख रुप सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञान तथा आगम भाषा में कथित अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रुप परिणाम एक है?" पृ. ५०

११०. यह कैसे? पृ. ५१

१११. दर्शन मोह की क्षपणा विधि विषयक करण परिणाम तथा चारित्र मोह की क्षपणा विधि विषयक परिणाम क्या एक ही है? पृ. ५१

११२. दर्शन मोह की क्षपणा कौन करता है? मिथ्यादृष्टि या उपशम सम्यग्दृष्टि? पृ. ५१

११३. दर्शन मोह की क्षपणा किन-किन गुणस्थानों में संभव है? पृ. ५१

११४. प्रवचनसार गाथा ८० की तात्पर्यवृत्ति में किस गुणस्थानवर्ती की मुख्यता से कथन है? पृ. ५१

११५. तो फिर यहाँ किस गुणस्थानवर्ती की प्रधानता है? पृ. ५२

११६. ऐसे कैसे? पृ. ५२

९. निश्चय सम्यग्दर्शन तथा स्वरुपाचरण चारित्र

११७. निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहते है? पृ. ५३

११८. वीतराग चारित्र के अविनाभावीभूत निश्चय सम्यग्दृष्टि साधु ही होते है, ऐसा कोई प्रमाण है? पृ. ५५

११९. प्रशमादि की प्रकटता को ही सम्यक्त्व क्यों नहीं कहते है? पृ. ५५

१२०. क्या निश्चय सम्यक्त्व का कथन भी दो प्रकार से है? पृ. ५६

१२१. यहाँ पर चतुर्थ, पंचम गुणस्थानवर्ती को तो निश्चय सम्यग्दर्शन माना है। स्पष्ट उल्लेख है कि - पृ. ५७

" निज शुद्धात्मैवोपादेय इति रुचि रुपम् निश्चय सम्यक्त्वं गृहस्थावस्थायां तीर्थंकर परमदेव भरत सगर राम पाण्डवीदिनां विद्यते" (प.प्र. २/१७/१३२)

अर्थ : निज शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी रुचि रुप निश्चय सम्यक्त्व गृहस्थावस्था में तीर्थंकर परमदेव, भरत, सगर, राम, पाण्डव आदि को होता है। तो फिर यह कैसे?

१२२. दोनों प्रकार के निश्चय सम्यक्त्व को पुनः स्पष्ट कीजिये? पृ. ५८
१२३. साधन रुप निश्चय सम्यक्त्व में क्या वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है, किन्तु हमने तो ऐसा सुना है कि उसे अनंतानुबंधी चार के अभाव में स्वरुपाचरण चारित्र पाया जाता है? पृ. ५८
१२४. स्वरुपाचरण चारित्र में तथा सम्यक्त्वाचरण चारित्र में क्या अंतर है? पृ. ५८
१२५. स्वरुपाचरण चारित्र किसे कहते है? पृ. ५९
१२६. स्वसमय में प्रवृत्ति, इसका क्या अर्थ है? स्व – समय किसे कहते है? पृ. ५९
१२७. उपर्युक्त प्रकार से आत्म स्वरुप में लीन कौन होता है? पृ. ५९
१२८. ऐसा आप कैसे कहते है कि उसे (गृहस्थ को) वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है? पृ. ६०
१२९. तो फिर सराग चारित्र किसे कहते है? पृ. ६०
१३०. सराग चारित्र के पर्यायवाची नाम कौन – कौन से है? पृ. ६०
१३१. अनतानुबंधी एवं अप्रत्याख्यान संबंधी राग के अभाव में पंचम गुणस्थानवर्ती को उतने अंश में तो वीतरागता आती ही है तो उसे वीतराग चारित्र में क्या बाधा है? पृ. ६१
१३२. वीतराग चारित्र के पर्यायवाची नाम क्या – क्या है? पृ. ६१

१०. निश्चय ज्ञान, स्वसंवेदन श्रुतज्ञान

१३३. निश्चय ज्ञान किसे कहते है? पृ. ६२
१३४. स्वसंवेदन ज्ञान किसे कहते है? कब और कैसा होता? पृ. ६२
१३५. स्वसंवेदन ज्ञान क्या सराग भी होता है? पृ. ६२
१३६. वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान में आत्मा किस प्रकार से प्रत्यक्ष होता है उदाहरण सहित समझाइये? पृ. ६२
१३७. स्वसंवेदन ज्ञान रुप से, आत्मग्राहक भाव श्रुत प्रत्यक्ष है या परोक्ष? पृ. ६३
१३८. "आद्ये परोक्ष" सूत्र के अनुसार भाव श्रुतज्ञान तो परोक्ष है उसे आप प्रत्यक्ष कैसे कहते है? पृ. ६३

१३९. क्या आगम भाषा में कहा गया परोक्ष भावश्रुतज्ञान ही न्याय / तर्क की भाषा में साम्व्यवहारिक प्रत्यक्ष है? तथा वही स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है? पृ. ६४
१४०. आगम भाषा तथा आध्यात्मिक भाषा में कथित स्वसंवेदन या भाव श्रुतज्ञान में क्या अंतर है? पृ. ६४
१४१. निश्चय भावश्रुतज्ञान क्या शुद्धात्माभिमुख परिणाम है? पृ. ६५
१४२. निश्चय भावश्रुतज्ञान क्या स्वसंवित्ति है? पृ. ६५
१४३. निश्चय भावश्रुतज्ञान क्या वीतराग निर्विकल्प समाधि का नाम है? पृ. ६५
१४४. अभेदनय यह कौन सा नय है? पृ. ६५
१४५. अभेदनय से क्या भावश्रुतज्ञान को आत्मा कह सकते है? पृ. ६५
१४६. तो क्या द्रव्यश्रुतज्ञान आत्मा नहीं है? पृ. ६५
१४७. द्रव्यश्रुतज्ञान तथा भावश्रुतज्ञान को एक बार पुनः समझाइये? पृ. ६५
१४८. तो फिर द्रव्यश्रुतज्ञान को श्रुतज्ञान क्यों कहा? पृ. ६६
१४९. तो द्रव्य रुप व्यवहार श्रुतज्ञान कितने प्रकार का है? पृ. ६६
१५०. व्यवहार रुप श्रुतज्ञान क्या विकल्प रुप होता है तथा उससे किस साध्य की सिद्धि होती है? पृ. ६६
१५१. भाव श्रुतज्ञान क्या अभेद रत्नत्रयात्मक होता है और आदेय है तो फिर व्यवहार श्रुतज्ञान क्या है? पृ. ६७
१५२. तो व्यवहार द्रव्य श्रुतज्ञान भी उपादेय है? पृ. ६७
१५३. व्यवहार रुप द्रव्य या बहिरंग श्रुतज्ञान कब तक आदेय है? पृ. ६७
१५४. इसी का नाम क्या तत्त्वोपलब्धि है? पृ. ६७
१५५. आपने यहाँ निश्चय सम्यक्त्व ऐसा अर्थ कैसे किया? पृ. ६७
१५६. ऐसे कैसे? पृ. ६८
१५७. यदि युगपत् माने तो? पृ. ६८
१५८. उपलब्धि किसे कहते है? पृ. ६८
१५९. उपलब्धि किस कर्म के क्षयोपशम से होती है? पृ. ६८
१६०. अंतरंग में श्रुतज्ञान के क्षयोपशम के बिना क्या द्रव्य श्रुतज्ञान हो सकता है? पृ. ६९

१६१. ऐसा क्यों कहते है? पृ. ६९
१६२. मिथ्यादृष्टि को श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम नहीं पाया जाता है उसे तो कुश्रुतज्ञानावरण कहना चाहिए ? पृ. ६९
१६३. "विपर्यश्च" यह सूत्र भी तो कहा है? पृ. ६९
१६४. यदि ज्ञान मिथ्या है तो फिर उसके आवारक कर्म भी मिथ्या होना चाहिए? पृ. ६९
१६५. हो जाने दो? पृ. ६९
१६६. तो फिर ज्ञान, आठ और ज्ञानावरण कर्म के पांच भेद क्यों कहे? पृ. ७०
१६७. ऐसे कैसे? पृ. ७०
१६८. जैसे आप ज्ञान में मिथ्यापना या सम्यक्पना कहते हो वैसा ज्ञानावरण में भी क्यों नहीं कहते है? पृ. ७०
१६९. क्या वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान मात्र मुनियों को ही होता है? पृ. ७०
१७०. वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान के पर्यायवाची नाम कौन-कौन से है? पृ. ७१
१७१. स्वसंवेदन रुप भावश्रुतज्ञान केवलज्ञान कैसे है? पृ. ७१
१७२. शब्दात्मक श्रुतज्ञान क्या परोक्ष ही है? पृ. ७२
१७३. मैं अनंतज्ञान स्वरुप आत्मा हूँ ऐसा विचार करना प्रत्यक्ष श्रुतज्ञान है या परोक्ष? पृ. ७२
१७४. तो फिर वीतराग चारित्र के अविनाभावी निश्चय भावश्रुतज्ञान / स्वसंवित्ति सविकल्प है या निर्विकल्प? प्रत्यक्ष है या परोक्ष? पृ. ७२
१७५. संवित्ति के आकार का क्या अर्थ है? पृ. ७३
१७६. तत्त्वार्थ सूत्र में श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है फिर वह प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? पृ. ७३
१७७. उत्सर्ग व्याख्यान किसे कहते हैं? पृ. ७३
१७८. श्रुतज्ञान उत्सर्ग व्याख्यान की अपेक्षा परोक्ष, तो अपवाद व्याख्यान की अपेक्षा प्रत्यक्ष कैसे है, स्पष्ट कीजिए? पृ. ७४
१७९. आध्यात्मिक दृष्टि से मति ज्ञान तथा श्रुतज्ञान किसे, कब उपादेय है? पृ. ७४

१८०. स्वसंवेदन के साथ आप 'वीतराग' विशेषण क्यों जोड़ते हो, क्या सरागियों को भी स्वसंवेदन होता है? पृ. ७५

१८१. वीतरागता किस गुणस्थान से प्रारंभ होती है? पृ. ७५

१८२. शुद्धनय स्वरुप पांच भाव के आश्रय से ही क्या निश्चय सम्यक्त्व होता है? पृ. ७६

१८३. परम पंचम भाव क्या वीतराग सम्यग्दृष्टि के ही गोचर होता है? पृ. ७६

१८४. क्या आत्मानुभूति शुद्ध नयाश्रित ही होती है? पृ. ७७

१८५. क्या शुद्धात्मा, योगियों को ही प्रत्यक्ष होती है इतर को नहीं? पृ. ७७

१८६. इतर को नहीं होती इसका क्या तात्पर्य है? पृ. ७७

१८७. क्या मुनियों को ही आत्मध्यान होता है गृहस्थों को नहीं होता? पृ. ७७

१८८. भावश्रुतज्ञान / स्वसंवेदनज्ञान शुद्धात्मा को जानता है तो क्या वह निश्चयश्रुतकेवली कहा जाता है? पृ. ७८

१८९. क्या इस काल में श्रुत केवली हो सकते है? पृ. ७८

११. आत्मा

१९०. प्रवचन सार गा. २३८ ता.वृ.टीका में किस आत्मा को मोक्ष का कारण माना है? पृ. ७९

१९१. तीनों आत्माओं को संक्षिप्त रूप में बताइये। पृ. ८०

१९२. अन्तरात्मा तो संसारी है वह शुद्धात्मा कैसे हो सकती है? पृ. ८०

१९३. तो क्या अन्तरात्मा एकदेश रूप से ही मोक्ष का कारण है? पृ. ८०

१९४. यहाँ ध्यान क्या है तथा ध्येय क्या है? इसे एक बार पुनः स्पष्ट रूप से समझा दीजिये। पृ. ८०

१९५. ऐसा क्यों, दोनों एक क्यों नहीं है? पृ. ८०

१९६. सिद्धों में ध्यान मान लेने में क्या हानि है? पृ. ८०

१९७. अच्छा, तो संसारी जीवों में शुद्ध पारिणामिक भाव तथा ध्यान अंतरात्मा दशा को एक अभिन्न मान लेने पर उसका (जीव का) अभाव कैसे ठहरेगा? पृ. ८१

१९८. तो फिर यहाँ पर अंतरात्मा ध्यान रूप से ही स्वीकार की गई है? पृ. ८१

१९९. तो क्या अध्यात्म भाषा में अंतरात्मा के तीन भेद नहीं होते? पृ. ८१
२००. तो क्या चरणानुयोग में कथित अंतरात्मा ध्यान रूप से नहीं ग्रहण की गई है? पृ. ८१
२०१. यदि चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग कथित अंतरात्मा को एक मान ले तो क्या दोष आयेगा? पृ. ८१
२०२. तो क्या यहाँ अंतरात्मा ध्यान लीन मुनि के ही साक्षात् मोक्ष का कारण माना गया है, शेष को नहीं? पृ. ८२
२०३. १. सम्यग्दृष्टि जीव ही क्या अंतरात्मा है? पृ. ८२
२. अंतरात्मा ही क्या ज्ञानी कहा जाता है?
३. क्या वही निश्चय रत्नत्रय लक्षण रुप शुद्धोपयोग को प्राप्त करता है?
४. क्या वही वीतराग चारित्र के अविनाभावी वीतराग सम्यग्दृष्टि है?
५. वही निर्विकल्प समाधि रुप परिणाम में परिणति करता है?
२०४. अंतरात्मा किसे कहते है? पृ. ८३
२०५. सभी अंतरात्मा क्या एक सदृश है या उनके भेद भी है? पृ. ८३
२०६. तीनों प्रकार की अंतरात्मा को स्पष्ट कीजिये। पृ. ८३
२०७. जघन्य अंतरात्मा के लक्षणों को समझाइये? पृ. ८३
२०८. मध्यम अंतरात्मा किसे कहते है? पृ. ८४
२०९. उत्तम अंतरात्मा कौन है? पृ. ८४
२१०. अध्यात्म ग्रंथों में क्या इसी उत्तम अंतरात्मा की प्रधानता है? पृ. ८४
२११. क्या परम समाधि में लीन ही उत्तम अंतरात्मा ग्राह्य है? पृ. ८४
२१२. क्या वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान अंतरात्मा को ही होता है? पृ. ८५
२१३. स्वसंवेदन तथा आत्मानुभव एक ही है? पृ. ८५
२१४. क्या स्वसंवेदन और शुद्धोपयोग एक ही है? पृ. ८५
२१५. आत्मानुभूति तथा ज्ञानानुभूति क्या एक है? पृ. ८५
२१६. आत्मा ग्राहक कौन सा दर्शन है? पृ. ८६
२१७. क्या इस विषय में कोई मत भेद है? पृ. ८६

२१८. आत्मा कौन है तथा वह कैसे प्राप्त किया जाता है? पृ. ८६
२१९. आत्मा को किस प्रकार कौन जानता है? पृ. ८७
२२०. उपर्युक्त कथन में जो परमात्मा के उपदेशक गुरु तथा शास्त्र के प्रथम आत्मा को जानना आवश्यक है क्या? पृ. ८८
२२१. परमात्मोपदेशक गुरु की क्या आवश्यकता है, आत्मा का ज्ञान तो मात्र शास्त्र स्वाध्याय से भी हो जाता है? पृ. ८८
२२२. इस प्रकार आगम या गुरुओं से आत्मा को जानना कौन सा ज्ञान है? पृ. ८८
२२३. तो भावश्रुतज्ञान से भी आत्मा को जाना जा सकता है? पृ. ८८
२२४. भावश्रुतज्ञान कितने प्रकार से होता है? पृ. ८८
२२५. प्रत्यक्ष भावश्रुतज्ञान के भी कोई भेद है क्या? पृ. ८८
२२६. वीतराग प्रत्यक्ष भावश्रुतज्ञान के भी क्या कोई भेद है? पृ. ८८
२२७. वीतराग निर्विकल्प प्रत्यक्ष भावश्रुतज्ञान को अध्यात्म भाषा में क्या कहते है? पृ. ८८
२२८. वीतराग निर्विकल्प प्रत्यक्ष भावश्रुतज्ञान या वीतराग निर्विकल्प स्वात्मानुभूति क्या योगियों, मुनियों को ही होती है? पृ. ८९
२२९. तो क्या यह गृहस्थों को भी संभव नहीं है? पृ. ८९
२३०. क्या कभी-कभी अल्प समय के लिये भी गृहस्थों को ये हो सकती है? पृ. ८९
२३१. तो क्या सराग स्वसंवेदन भी होता है और वह किसे होता है? पृ. ८९
२३२. सराग स्वसंवेदन के भी कोई भेद है? पृ. ८९
२३३. गृहस्थों का सविकल्प धर्मध्यान रूप स्वसंवेदन ज्ञान कैसे पाया जाता है? पृ. ८९
२३४. तो गृहस्थों को को आर्त्तरौद्र ध्यान रूप स्वसंवेदन ज्ञान कैसे पाया जाता है? पृ. ८९
२३५. तो वीतराग सविकल्प भावश्रुतज्ञान को अध्यात्म ग्रंथों में क्या कहते है? पृ. ९०

२३६. वीतराग सविकल्प भाव श्रुतज्ञान या अनुमान ज्ञान के द्वारा आत्मा किस प्रकार जानी जाती है? पृ. ९०
२३७. तो क्या यह गृहस्थों को संभव है? पृ. ९०
२३८. अनुमान ज्ञान से आत्मा कैसे जानी जाती है? पृ. ९०
२३९. क्या अनुमान ज्ञान प्रमाण नहीं है? पृ. ९०
२४०. तो क्या इस अनुमान ज्ञान से अविरत सम्यग्दृष्टि या देशव्रती भी अपनी आत्मा को जान सकता है? पृ. ९०
२४१. आत्मानुभव करने की क्रमिक विधि क्या है? पृ. ९०
२४२. समयसार क्या अनुभूति मात्र है? पृ. ९१
२४३. क्या वीतराग स्वसंवेदन, केवलज्ञानवत् होता है? पृ. ९२
२४४. साक्षात् केवली के ज्ञानवत् ही आत्मा प्रत्यक्ष दिखता है तो फिर श्रुतज्ञान को परोक्ष क्यों कहा? पृ. ९२

१२ चारित्र

२४५. साधुओं को वीतराग चारित्र ही उपादेय है? पृ. ९३
२४६. "चारित्तं खलु धम्मो" इस शब्द का खुलासा कीजिये। पृ. ९३
२४७. अविरत सम्यग्दृष्टि को वीतराग चारित्र क्यों नहीं पाया जाता है? पृ. ९४
२४८. तो क्या स्थिरता को ही निश्चय चारित्र कहते है? पृ. ९४
२४९. निश्चय या वीतराग चारित्र के पर्यायवाची नाम क्या है? पृ. ९४
२५०. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती को निश्चय सम्यक्त्व तो पाया ही जाता है (तो वह क्या उपचार से है)? पृ. ९५
२५१. तो क्या वीतरागी निर्ग्रथ साधु ही निश्चय सम्यग्दृष्टि है ऐसा कहीं स्पष्ट प्रमाण है? पृ. ९५
२५२. वीतराग निश्चय सम्यदृष्टि का उपभोग क्या बंध का कारण नहीं है? पृ. ९५
२५३. वीतराग सम्यग्दृष्टि तो ध्यान में लीन होता है उसे उपभोग कैसे? पृ. ९६
२५४. वीतराग सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को विषय भोग किस प्रकार संभव है? पृ. ९६
२५५. वीतराग निश्चय सम्यग्दृष्टि को प्रत्येक समय प्रत्येक कार्यों से निर्जरा होती है? पृ. ९७

२५६. यहाँ चेतन भोग से क्या अर्थ लेना? पृ. ९७
२५७. आप वीतराग सम्यग्दृष्टि ही क्यों कहते है मात्र सम्यग्दृष्टि ही क्यों नहीं कहते हो? पृ. ९७
२५८. तो क्या सराग सम्यग्दृष्टि को भी किसी अपेक्षा से कर्म निर्जरा संभव है? पृ. ९८
२५९. सम्यग्दृष्टि उदयागत सुख-दुख को कैसे अनुभव करता है? किस कारण वह निर्जरा को प्राप्त होता है? पृ. ९९
२६०. उपरोक्त बात को किसी उदाहरण द्वारा समझाइये? पृ. ९९
२६१. सम्यग्दृष्टि जीव को क्या सर्वथा आस्रव नहीं होता? पृ. १००
२६२. यथाख्यात चारित्र में अन्तर्मुहूर्त से अधिक समय तक रहना शक्य नहीं है फिर वीतरागी/ज्ञानी, निरास्रव कैसे होंगे? पृ. १००
२६३. ज्ञानी वीतराग निश्चिय सम्यग्दृष्टि किस कारण से अबंधक है और किस कारण बंधक है? पृ. १०१
२६४. बुद्धिपूर्वक राग के अभाव को ही क्या निरास्रव कहते है? पृ. १०२
२६५. बुद्धिपूर्वक राग और अबुद्धिपूर्वक राग का क्या तात्पर्य है? पृ. १०२
२६६. सम्यग्दृष्टि का राग मिथ्यादृष्टि की भांति तिर्यंच गति का कारण है? पृ. १०३
२६७. अविरत सम्यग्दृष्टि आत्मसुख को उपादेय मानता है या उस सुख से युक्त होता है? पृ. १०३
२६८. तो क्या स्वसंवेदन गम्य अतीन्द्रिय सुख योगियों को ही होता है? पृ. १०३
२६९. आध्यात्मिक सुख किसे कहते है? पृ. १०३
२७०. लौकिक सुख व वीतराग/आत्मीक सुख में क्या अंतर है? पृ. १०४
२७१. क्या देवों को स्वाभाविक सुख संभव है? पृ. १०४

१३. ध्यान

२७२. निश्चय धर्मध्यान किसे कहते है तथा वह किसे पाया जाता है? पृ. १०५
२७३. व्यवहार धर्मध्यान किन - किन गुणस्थानों में पाया जाता है? पृ. १०५
२७४. तो क्या चारों गुणस्थानों में एक ही जाति का धर्मध्यान पाया जाता है? पृ. १०५

२७५. ध्यान किसे कहते हैं? पृ. १०६
२७६. भावना किसे कहते हैं? पृ. १०६
२७७. गृहस्थों को भी क्या शुद्ध भावना पाई जा सकती है? पृ. १०६
२७८. तो क्या श्रावकों को शुद्धात्मा की भावना हो सकती है? पृ. १०६
२७९. शुद्धात्म भावना को अध्यात्म ग्रंथों में निश्चय धर्मध्यान कहते हैं या अंतरंग धर्मध्यान? पृ. १०७
२८०. आत्म भावना को क्या निश्चय धर्मध्यान कह सकते है? पृ. १०७
२८१. तो क्या गृहस्थावस्था में कभी भी किसी भी काल में निश्चय धर्मध्यान नहीं हो सकता है? पृ. १०७
२८२. तो फिर मुनिराजों व गृहस्थों को निश्चय नय से कौन सा ध्यान होता है? पृ. १०८
२८३. योगीजन देह सहित होते है, तो देह रहित का अनुभव कैसे करते हैं? पृ. १०८
२८४. अशुद्ध निश्चय में शुद्धोपयोग कैसे घटित होता है? पृ. १०९
२८५. छद्मस्थों का ज्ञान शुद्ध है या अशुद्ध? पृ. १०९
२८६. चतुर्थ गुणस्थान में अनंतानुबन्धी चतुष्क के अभाव में क्या उतने अंश रुप वीतराग चारित्र संभव है? पृ. ११०
२८७. यह कैसे? पृ. ११०
२८८. तो फिर वीतराग के साथ अन्यथा हेतु कहाँ किस गुणस्थान में है? पृ. ११०
२८९. क्या शुद्धात्म संवित्ति, सुखानुभूति, वीतराग चारित्र, वीतराग सम्यग्दर्शन, सप्तम गुणस्थान के नीचे नहीं पाये जाते हैं? पृ. १११
२९०. तो क्या वीतराग सम्यग्दर्शन सातवें गुणस्थान से प्रारंभ होता है? पृ. १११
२९१. एक देश शुद्ध पारिणामिक भाव ध्यान रुप है या ध्येय रुप? पृ. १११
२९२. पारिणामिक भाव ध्यान पर्याय रुप क्यों नहीं? पृ. १११
२९३. परम पारिणामिक भाव, शुद्ध भावना के समय ध्येय रुप होता है अथवा निश्चय ध्यान की अवस्था में ध्येय रुप होता है? पृ. १११
२९४. क्या गृहस्थों को योगियों की तरह शुद्धात्म भावना भी नहीं होती है? पृ. ११२

१४. उपयोग

२९५. शुद्धोपयोग किसे कहते हैं? पृ. ११३
२९६. शुद्धोपयोग के लक्षण को स्पष्ट कीजिये? पृ. ११३
२९७. शुद्धोपयोग के पर्यायवाची नाम कौन-कौन है? पृ. ११४
२९८. साम्य किसे कहते हैं? पृ. ११४
२९९. निर्मोह शुद्धात्म संवित्ति रुप लक्षण से जिसे अध्यात्म भाषा में शुद्धोपयोग कहते है उसे ही आगम भाषा में पृथक्त्ववितर्क वीचार नामक प्रथम शुक्ल ध्यान कहा जाता है ऐसा प्र.सा. ता.वृ. १५/१९/१६ में कहा है तो क्या शुक्ल ध्यान रुप ही शुद्धोपयोग होता है? पृ. ११४
३००. शुक्ल ध्यान गृहस्थों को नहीं पाया जाता है तो क्या वीतराग धर्म-ध्यान भी नहीं पाया जाता है? पृ. ११५
३०१. शुद्धोपयोग का पात्र या शुद्धोपयोगी कौन है? पृ. ११५
३०२. शुद्धोपयोग यह संज्ञा कैसे सिद्ध होती है? पृ. ११५
३०३. वारसाणुपेक्खा में कहा है कि शुद्धोपयोग से धर्म तथा शुक्ल ध्यान होता है यह बात समझ में नहीं आई है कृपया स्पष्ट कीजिये? पृ. ११५
३०४. क्या शुभोपयोगियों को शुद्धात्मानुराग पाया जाता है? पृ. ११६
३०५. शुभोपयोगी श्रमणों को क्या राग के संयोग से भी शुद्धात्मानुभव होता है? पृ. ११६
३०६. शुद्धात्मानुरागी क्या शुभोपयोगी ही है? पृ. ११६
३०७. क्या पृथक्त्ववितर्क विचार नामक शुक्ल ध्यान में भी पूर्णतः वीतरागता या निर्विकल्पता नहीं पाई जाती है? पृ. ११७
३०८. शुद्धोपयोग, अध्यात्म ग्रंथों में किस-किस गुणस्थानों में माना है? पृ. ११७
३०९. शुभोपयोग क्या शुद्धोपयोग का साधक है? पृ. ११७
३१०. अपहृत संयम क्या सराग चारित्र है? पृ. ११७
३११. एक देश परित्याग, देशसंयम का नाम है या अपहृत नामक सकल संयम का? पृ. ११८
३१२. निश्चय रत्नत्रय तथा व्यवहार रत्नत्रय में कौन साध्य है और कौन साधक? पृ. ११८

३१३. क्या शुद्धात्मानुभूति के सद्भाव में शुद्धोपयोग होता है? पृ. ११८
३१४. क्या वीतराग चारित्र, व्रत, समिति, गुप्ति आदि रुप बहिरंग चारित्र के होने पर ही होता है? पृ. ११८
३१५. कालादि लब्धि के वश से ही जीव अपनी आत्मा के प्रति सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान तथा चारित्र पर्याय से परिणमन करते है। क्या वह ही परिणाम आगम भाषा में औपशमिक, क्षायिक या क्षयोपशमिक कहा जाता है? क्या उसे ही शुद्धात्माभिमुख परिणाम रुप शुद्धोपयोग कहते है? पृ. ११९
३१६. शुद्धात्माभिमुख से क्या अर्थ निकला? पृ. ११९
३१७. क्या जिस प्रकार शुद्धात्मा, योगियों को प्रत्यक्ष होता है वैसा गृहस्थों को नहीं होता है? पृ. ११९
३१८. गृहस्थों को शुद्धात्मा परोक्ष रुप से कैसे प्रकट होता है? पृ. १२०
३१९. गृहस्थों को अनुमान प्रत्यक्ष से किस प्रकार से शुद्धात्मा जानी जाती है? पृ. १२०
३२०. योगी जन जिस प्रकार अग्निवत् आत्मा को प्रत्यक्ष देखते हैं तो गृहस्थ वैसा क्या किंचित् भी नहीं देख सकते हैं? पृ. १२०
३२१. परिग्रहादि से भिन्न साधुजन ही अपनी आत्मा को सम्यक् प्रकार से जान सकते हैं गृहस्थ नहीं जान सकते हैं? पृ. १२०
३२२. श्रुतज्ञान तो परोक्ष है उसे प्रत्यक्ष आप कैसे कहते हो? पृ. १२१
३२३. जैसे योगी, मन के द्वारा अपनी आत्मा को प्रत्यक्ष जानते हैं। ऐसे गृहस्थ भी तो मन के द्वारा ही जानते हैं तो दोनों का जानना समान ही तो हुआ? पृ. १२१
३२४. अनंतानुबन्धी आदि के अभाव से तद्विषयक राग का अभाव होने पर भी क्या यहाँ उतने अंश रुप को मुख्य रुप से ग्रहण नहीं किया जाता है? पृ. १२१
३२५. जिनेन्द्र वचन को ही आप प्रमाणित क्यों मानते है? पृ. १२२
३२६. आत्मा में राग-द्वेष कैसे उत्पन्न होते है तथा वे नष्ट कैसे होंगे? पृ. १२२
३२७. स्वभाव आराधना किसे कहते है? पृ. १२२

३२८. क्या औदयिक भाव सर्वथा बंध का ही कारण है? पृ. १२२
३२९. बंध का मुख्य कारण क्या है? पृ. १२३
३३०. बंध नहीं होने का सैद्धान्तिक हेतु क्या है? पृ. १२४
३३१. अध्यात्म ग्रंथों में भाव बन्ध किसे कहते है? पृ. १२४
३३२. सिद्धांत ग्रंथों में आस्रव और संवर के कारण कौन-कौन से भाव कहे है? पृ. १२४
३३३. १ से १२ गुणस्थान तक अशुद्ध निश्चय नय होता है तो उसमें शुद्धोपयोग कैसे संभव है? पृ. १२५
३३४. शुद्धात्मा का आलम्बन, ध्येय और साधक, शुद्ध निश्चय नय है या अशुद्ध निश्चय नय? पृ. १२५
३३५. अशुद्ध निश्चय नय, शुद्धात्मा का आलम्बन, ध्येय तथा साधक कैसे है? पृ. १२६
३३६. तो शुद्धोपयोग, अशुद्ध निश्चय नय से पाया जाता है? पृ. १२६
३३७. ध्येय रूप शुद्धात्मा का आलम्बन कौन लेते है? पृ. १२६
३३८. ध्यान भले ही न पाया जाता हो किन्तु गृहस्थों को भी शुद्धात्मा ध्येय होती है? पृ. १२६
३३९. क्योंकि आप ही कह रहे हैं, कि गृहस्थों को शुद्धात्म भावना पाई जाती है? पृ. १२६
३४०. चतुर्थ, पंचम गुणस्थानवर्ती को भी तो धर्मध्यान होता है तो शुद्धात्म भावना को भी धर्मध्यान रूप मानने में क्या हानि है? पृ. १२७
३४१. तो सविकल्प रूप धर्मध्यान द्वारा भायी गई शुद्धात्म भावना को शुद्धोपयोग मान लीजिये? पृ. १२७
३४२. तो भावना को भी निर्विकल्प धर्मध्यान कह दो? पृ. १२७
३४३. किन्तु अनेक जगह आचार्यों ने शुद्धोपयोग के पर्यायवाची नामों में भावना शब्द का भी प्रयोग किया है? पृ. १२७
३४४. क्या अध्यात्म ग्रंथों में शुद्धोपयोग को ही मुक्ति का कारण माना गया है? पृ. १२७

३४५. शुद्धोपयोग तथा पारिणामिक भाव में क्या अंतर है? पृ. १२८

३४६. शुद्ध पारिणामिक भाव ध्येय रूप हैं या ध्यान अथवा भावना रूप है? पृ. १२८

३४७. क्या अशुद्धोपयोग छेद/दोष है? पृ. १२८

३४८. शुद्धोपयोगी तथा शुभोपयोगी श्रमणों में कौन से निरास्त्रव है तथा कौन से सास्रव है? पृ. १२८

३४९. क्या शुभोपयोग के कारण की विपरीतता से फल भी विपरीत होता है? पृ. १२९

३५०. क्या सम्यक्त्व पूर्वक शुभोपयोग से मुख्य रूप से पुण्यबंध तथा परम्परा से मोक्ष होता है? पृ. १३०

३५१. परम्परा से मोक्ष होने का तात्पर्य क्या है? पृ. १३०

३५२. क्या अशुभोपयोग रहित श्रमणजन भक्तों को तारते हैं? पृ. १३०

३५३. क्या आत्मज्ञान से रहित आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान, संयत की साधना, मोक्ष प्राप्ति में अकिंचित्कर है? पृ. १३१

३५४. तो फिर कौन से आत्मज्ञान से सहित उक्त तीनों मोक्ष के कारण है? पृ. १३१

३५५. असंयत तथा वस्त्र विहीन द्रव्यलिंगी साधु अवंदनीय है? पृ. १३१

३५६. निश्चय रत्नत्रय से क्या पुण्यास्रव होता है? पृ. १३२

३५७. क्या मात्र आत्मज्ञान ही निश्चय से मुक्ति कारण है या अभेद रत्नत्रय स्वरूप अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि का स्वसंवेदन ज्ञान मुक्ति का कारण है? पृ. १३२

३५८. अभेद रत्नत्रय रूप स्वसंवेदन अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती मुनियों को ही पाया जाता है गृहस्थों को नहीं – यह वाक्य आप किस आधार/प्रमाण से कहते है? पृ. १३३

☛ **संदर्भित ग्रंथ सूचि** पृ. १३६-१३७

☛ **महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का परिचय** पृ. १३८-१४०

☛ **साहित्य परिचय प्राप्तिस्थान** पृ. १३८-१४०

॥ णमोकार महामंत्र ॥

णमो अरिहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्व साहूणं।।

अर्थ : अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोकवर्ती सब साधुओं को नमस्कार हो।

॥ णमोकार मंत्र का माहात्म्य ॥

एसो पंच णमोकारो, सव्व पावप्पणासणो।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं॥

अर्थ : यह पंच नमस्कार मंत्र सभी पापों को नष्ट करने वाला है एवं सर्व मंगलों में पहला मंगल है।

॥ सरस्वती स्तुति ॥

नमामि भारती जैनीं सर्व सन्देह नाशिनीम्।

भानुभामिव भव्यानां मनः पद्मविकासिनीम्॥ सु.स.३ ॥

अर्थ : समस्त संदेहो को नष्ट करने वाली तथा सूर्य की प्रभा के समान भव्य जीवों के हृदय कमल को विकसित करने वाली जिनवाणी को मैं नमस्कार करता हूँ।

१. शंका : तत्त्व का ज्ञान किसके द्वारा होता है?

समाधान : प्रमाणनयैरधिगमः। (त.सू. १/६)

अर्थ : प्रमाण और नय के द्वारा तत्त्व या पदार्थों का ज्ञान होता है।

२. शंका – नय किसे कहते है?

समाधान : (ध. १/१, १, १/३, ४/१०) में कहा गया है –

उच्चारियमत्थपदं णिक्खेवं वा कयं तु दट्ठूण।
अत्थं णयंति पच्चंतमिदि तदो ते णया भणिया ॥३॥
णयदित्ति णयो भणिओ बहुहि गुण पज्जएहि जं दव्वं।
परिणामखेत्तकालं तरेसु अविणट्ठ सब्भावं ॥४॥

अर्थ : उच्चारण किये अर्थ, पद और उसमें किये गये निक्षेप को देखकर अर्थात् समझ कर पदार्थ को ठीक निर्णय तक पहुँचा देता है इसलिये वे नय कहलाते है।

(क.पा. १/१३-१४/२१०/गा. ११८/२५९) में कहा है- अनेक गुण और अनेक पर्यायों सहित अथवा उनके द्वारा, एक परिणाम से दूसरे परिणाम में, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में, एक काल से दूसरे काल में अविनाशी स्वभाव रुप से रहने वाले द्रव्य को जो ले जाता है अर्थात् उसका ज्ञान करा देता है उसे नय कहते है।

(आ.प./१८१) नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन्स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति वा नयः।

अर्थ : नाना स्वभावों से हटा कर वस्तु को एक स्वभाव में जो प्राप्त करायें उसे नय कहते है।

नय चार अर्थों में प्रयुक्त हैं

(१) वक्ता के अभिप्राय अर्थ में

णाणं होदि प्रमाणं णओ वि णादुस्स हिदियभावत्थो

(ति.प. /१/८३)

अर्थः सम्यग्ज्ञान को प्रमाण और ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं।

ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः। (आ.प. /१८१)

अर्थ : ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते है।

(ध. ९/४, १, ४५/६) में कहा गया है –

तथा प्रभाचन्द्र भट्टारकैरप्यभाणि – प्रमाणव्यपाश्रय परिणामविकल्प वशीकृतार्थ विशेषप्ररुपणप्रवण: प्रणिधिर्य: स नय इति। प्रमाणव्यपाश्रयस्तत परिणाम-विकल्पवशीकृतानां अर्थ विशेषाणां प्ररुपणे प्रवण: प्रणिधानं प्रणिधि: प्रयोगो व्यवहारात्मा प्रयोक्ता वा स नय:।

अर्थ : प्रभाचंद्र भट्टारक ने भी कहा है– प्रमाण के आश्रित परिणाम भेदों से वशीकृत पदार्थ विशेषों के प्ररुपण में समर्थ जो प्रयोग हो वह नय हैं। उसी को स्पष्ट करते है – जो प्रमाण के आश्रित है तथा उसके आश्रय से होने वाले ज्ञाता के भिन्न-भिन्न अभिप्रायों के अधीन हुए पदार्थ विशेषों के प्ररुपण में समर्थ है, ऐसे प्रणिधान अर्थात् प्रयोग अथवा व्यवहार स्वरुप प्रयोक्ता का नाम नय हैं।

(२) एक देश वस्तुग्राही अर्थ में

(स.सि. १/३३/१४०/७) में कहा है –

वस्तुन्यनेकान्तात्मन्य विरोधेन हेत्वर्पणात्साध्य विशेषस्य यथात्म्य-प्रापणप्रवण: प्रयोगो नय:।

अर्थ : अनेकान्तात्मक वस्तु में विरोध के बिना, हेतु की मुख्यता से साध्य विशेष की यथार्थता को प्राप्त कराने में समर्थ प्रयोग को नय कहते हैं।

(न.च.वृ. / १७३) में कहा है –

वत्थुअंससंगहणं। तं इह णयं... ।

अर्थ : वस्तु के अंश को ग्रहण करने वाला नय होता है।

(का. अ. / मू. / २६४) में कहा है –

णाणा धम्म जुदं पि य एयं धम्मं पि वुच्चदे अत्थं।
तस्सेय विवक्खादो णत्थि विवक्खा हु सेसाणं ॥

अर्थ : नाना धर्मों से युक्त भी पदार्थ के एक धर्म को ही नय कहता है, क्योंकि उस समय उस ही धर्म की विवक्षा है, शेष धर्म की विवक्षा नहीं हैं।

(पं. अ. / पू. / ५०४) में कहा है –

इत्युक्त लक्षणेऽस्मिन् विरुद्धधर्मद्वयात्मके तत्त्वे।

तत्राप्यन्यतरस्य स्यादिह धर्मस्य वाचकश्च नयः ॥

अर्थ : दो विरुद्ध धर्म वाले तत्त्व में किसी एक धर्म का वाचक नय होता है।

(३) प्रमाण द्वारा गृहीत वस्तु का एक अंश ग्रहण अर्थ में -

(आ. प./१८१) में कहा है -

प्रमाणेन वस्तु संगृहीतार्थैकांशो नयः।

अर्थ : प्रमाण के द्वारा संगृहीत वस्तु के अर्थ के एक अंश को नय कहते हैं।

(ध. १/१, १, १/८३/९) में कहा है -

प्रमाणपरिगृहीतार्थैकदेशे वस्त्वध्यवसायो नयः।

अर्थ : प्रमाण के द्वारा ग्रहण की गई वस्तु के एक अंश में वस्तु का निश्चय करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं।

(४) श्रुतज्ञान का विकल्प अर्थ में -

अर्थ : श्रुतविकल्पो वा (नयः) । (आ.पा./१८१)

अर्थ : श्रुतज्ञान के विकल्प को नय कहते हैं।

उपरोक्त लक्षणों का समीकरण :

को नयो नाम। ज्ञातुरभिप्रायो नयः। अभिप्राय इत्यस्य कोऽर्थः। प्रमाण परिग्रहीतार्थैकदेशवस्त्वध्यवसायः अभिप्रायः। युक्तितः प्रमाणात् अर्थ परिग्रहः द्रव्यपर्याययोरन्यतरस्य अर्थ इति परिग्रहो वा नयः। प्रमाणेन परिच्छिन्नस्य वस्तुनः द्रव्ये पर्याये वा वस्त्वध्यवसायो नय इति यावत् । (ध. ९/४, १,४५/१६२/७)

प्रश्न : नय किसे कहते है?

उत्तर : ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं।

प्रश्न : अभिप्राय इसका क्या अर्थ है?

उत्तर : प्रमाण से गृहीत वस्तु के एक देश में वस्तु का निश्चय ही अभिप्राय है। (स्पष्ट ज्ञान होने से पूर्व तो) युक्ति अर्थात् प्रमाण से अर्थ के ग्रहण

करने अथवा द्रव्य और पर्यायों में से किसी एक को ग्रहण करने का नाम नय है। (और स्पष्ट ज्ञान होने के पश्चात्) प्रमाण से जानी हुई वस्तु के द्रव्य और पर्याय में अर्थात् सामान्य या विशेष में वस्तु के निश्चय को नय कहते हैं, ऐसा अभिप्राय है।

३. शंका : नय के मुख्य कितने भेद है?

समाधान : (आ. प. गा. ४) में कहा है –

णिच्छय ववहारणया, मूलम भेया णयाण सव्वाणं।

णिच्छय साहण हेऊ, दव्वय पज्जत्थिया मुणह ॥

अर्थ : सर्व नयों के मूल निश्चय व व्यवहार ये दो नय हैं। द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक ये दोनों निश्चय नय के साधन या हेतु है।

यथा सिद्धरसः पुंसि निष्फलो भाग्यहीन के।

तथा चारित्र हीनस्य तत्त्वज्ञानं च निष्फलम् ॥ सु.स.४० ॥

अर्थ : जिस प्रकार भाग्यहीन मनुष्य के पास सिद्धरस का होना निष्फल है उसी प्रकार चारित्रहीन का तत्त्वज्ञान निष्फल है।

सत्यं तपो ज्ञानमहिंसता च. विद्वत्प्रणामं च सुशीलता च।

एतानि यो धारयते स विद्वान, न केवलं यः पठते स विद्वान ॥ सु.स.४१ ॥

अर्थ : सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वानों के प्रति नम्र भाव और सुशीलता को जो धारण करता है वह विद्वान है, न कि जो केवल पढ़ता है वह विद्वान है।

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाश्यन्ते महात्मन ॥ सु.स. ७१३ ॥

अर्थ : जिसकी देव में तथा देव के समान गुरु में परम भक्ति होती है उस महानुभाव के आगम में प्रतिपादित ये जीवाजीवादि पदार्थ निश्चय से प्रकट होते है।

भावार्थ : देव और गुरु की भक्ति करने वाले पुरुष को ही जीवाजीवादि नौ पदार्थ का श्रद्धान प्रकट होता है।

४. **शंका : आगम ग्रंथों में निश्चय नय का स्वरूप किस प्रकार कहा गया है?**

समाधान : निश्चयनय एवंभूतः (श्लो. वा. १/७/२८/५८५/१)

अर्थ : निश्चय नय एवंभूत नय है।

निश्चय नयोऽभेद विषयो (आ.प. २१६)

अर्थ : निश्चय नय का विषय अभेद द्रव्य है।

अभेदानुपचरितया वस्तु निश्चीयत इति निश्चयः (आ.प. २०४)

अर्थ : जो अभेद व अनुपचार से वस्तु का निश्चय करता है, वह निश्चय नय है।

५. **शंका : अध्यात्म ग्रंथों में निश्चय नय का स्वरूप किस प्रकार कहा गया है?**

समाधान : आत्माश्रितो निश्चयनयः (स.सा. आ. २७२)

अर्थ : निश्चय नय आत्मा के आश्रित है।

निश्चय नयस्तु द्रव्याश्रितः। (स.सा.आ. ५६)

अर्थ : निश्चय नय द्रव्याश्रित है।

६. **शंका : निश्चय नय के कितने व कौन से भेद हैं?**

समाधान : देखिये (आ. प. सू. २१७)

तत्र निश्चयो द्विविधः शुद्धनिश्चयोऽशुद्धनिश्चयश्च।

अर्थ : निश्चय नय दो प्रकार का हैं – शुद्ध निश्चय और अशुद्ध निश्चय।

७. **शंका : शुद्ध निश्चय नय को सविस्तार समझाइए?**

समाधान : देखिये (स.सा.गा. ५६)

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छय णयस्स।।

अर्थ : वर्ण को आदि लेकर गुणस्थान पर्यंत भाव कहे गये हैं। वे व्यवहार नय से ही जीव के होते हैं परंतु शुद्ध निश्चय नय से तो इनमें से कोई भी जीव के नहीं है।

अथवा

सुद्धो जीव सहावो जो रहिओ दव्व भाव कम्मेहिं।

सो सुद्ध णिच्छयादो समासिओ सुद्धणाणीहिं ॥ वृ.न.च. ११४॥

अर्थ : शुद्ध निश्चय नय से जीव स्वभाव, द्रव्य व भाव कर्मों से रहित कहा गया है।

अथवा

तत्र निरूपाधि गुणगुण्यभेद विषयकः शुद्ध निश्चयो यथा केवलज्ञानादयो जीव इति (आ.प. २१८)

अर्थ : निरूपाधिक गुण व गुणी में अभेद दर्शाने वाला शुद्ध निश्चय नय है जैसे केवलज्ञानादि ही जीव है।

अथवा

साक्षाच्छुद्ध निश्चयेन स्त्री पुरुष संयोग रहित पुत्रस्येव, सुधाहरिद्रा संयोगरहितरङ्ग विशेषस्येव तेषामुत्पत्तिरेव नास्ति कथमुत्तरं पृयच्छाम इति। (द्र.सं.टी. ४८/२०६/४)

अर्थ : साक्षात शुद्ध निश्चय नय से तो जैसे स्त्री पुरुष संयोग के बिना पुत्र की उत्पत्ति नहीं होती, चूना व हल्दी के संयोग बिना लाल रंग की उत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार राग-द्वेष की उत्पत्ति ही नहीं होती, फिर इस प्रश्न का उत्तर ही क्या?

८. **शंका : क्या शुद्धाशुद्ध निश्चय नय द्रव्यार्थिक नय है?**

समाधान : हाँ, देखें (आ. प. सू. - २०३)

शुद्धाशुद्ध निश्चयो द्रव्यार्थिकस्य भेदौ।

अर्थ : शुद्ध और अशुद्ध निश्चय नय द्रव्यार्थिक नय के भेद हैं।

९. शंका : क्या अशुद्ध निश्चय नय व्यवहार है?

समाधान : हाँ, देखें (स.सा./ता.वृ. ५७/९७/१३)

वस्तुतस्तु शुद्धनिश्चयनयापेक्षया पुनरशुद्ध निश्चयोऽपि व्यवहार एवेति भावार्थः।

अर्थ : वस्तुतः तो शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चय नय भी व्यवहार ही है।

१०. शंका : उपर्युक्त वाक्य को किसी दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कीजिये?

समाधान : देखिये (स.सा./ ता.वृ. ६८/१०८/११)

अशुद्ध निश्चयस्तु वस्तुतो यद्यपि द्रव्य कर्मापेक्षयाभ्यन्तर रागादयश्चेतना इति मत्वा निश्चय संज्ञा लभते तथापि शुद्ध निश्चयनयापेक्षया व्यवहार एव। इति व्याख्यानं निश्चय व्यवहार नय विचार काले सर्वत्र ज्ञातव्यं।

अर्थ : द्रव्य कर्मों की अपेक्षा रागादिक अभ्यन्तर है और इसलिये चेतनात्मक है, ऐसा मानकर भले उन्हें निश्चय संज्ञा दे दी गई हो, परंतु शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा तो वह व्यवहार ही है। निश्चय, व्यवहार नय का विचार करते समय सर्वत्र यह व्याख्यान जानना चाहिये।

११. शंका : अशुद्ध नय को शुद्ध या निश्चय नय कह सकते हैं?

समाधान : नहीं, देखिये (प्र.सा. त.प्र.टी.वृ. १८९/२५४/११)

परंपरया शुद्धात्मसाधकत्वादयमशुद्धनयोऽप्युपचारेण शुद्ध नयो भण्यते निश्चय नयो न।

अर्थ : परम्परा से शुद्धात्म का साधक होने के कारण यह अशुद्ध नय उपचार से शुद्ध नय कहा गया है परंतु निश्चय नय नहीं कहा गया है।

१२. शंका : क्या एकदेश शुद्ध निश्चय नय भी होता है इसे सोदाहरण समझाने की कृपा करें?

समाधान : (द्र. सं. टी. गा. ४८ पृ. २०५) पर इस प्रकार कहा है –

रागद्वेषादय: किं कर्म जनिता: किं जीव जनिता इति। तत्रोत्तरं-स्त्री पुरुष संयोगोत्पन्न पुत्र इव सुधाहरिद्रा संयोगोत्पन्न वर्ण विशेष इवोभय संयोग जनिता इति। पश्चान्नय विवक्षा वशेन विवक्षितैकदेशशुद्ध निश्चयेन कर्म जनिता भण्यन्ते।

अर्थ : प्रश्न :रागद्वेषादि भाव कर्म से उत्पन्न होते है या जीव से?

उत्तर : स्त्री-पुरुष इन दोनों के संयोग से उत्पन्न हुये पुत्र के समान और चूना तथा हल्दी इन दोनों के मेल से उत्पन्न हुये लाल रंग के समान ये रागद्वेषादि कषाय, जीव और कर्म इन दोंनो के संयोग से उत्पन्न होते हैं।

जब नय की विवक्षा होती है तो विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चय नय से ये कषाय कर्म से उत्पन्न हुये कहे जाते है। (अशुद्ध निश्चय नय से)जीव जनित कहे जाते है। कहा भी है -

अशुद्ध निश्चयनयेन सकल मोह रागद्वेषादि भाव कर्मणां कर्ता भोक्ता च (नि.सा./ता.वृ. / १८)

अर्थ : अशुद्ध निश्चय नय से सकल मोह, रागद्वेषादि रुप भाव कर्मों का कर्ता है तथा उनके फल स्वरुप उत्पन्न हर्ष-विषादादि रुप सुख-दुःख का भोक्ता है। और साक्षात शुद्ध निश्चय नय से ये है ही नहीं, तब किसके कहें?

अथवा (द्र. सं. टी. गा. ५५) में कहा गया है कि -

निश्चय शब्देन तु प्राथमिकापेक्षया व्यवहार रत्नत्रयानुकूल निश्चयो ग्राह्य:। निष्पन्न योग निश्चल पुरुषापेक्षया व्यवहार रत्नत्रयानुकूल निश्चयोग्राह्य:। निश्चय निष्पन्न योग पुरुषापेक्षया तु शुद्धोपयोग लक्षण विवक्षितैकदेश शुद्धनिश्चयो ग्राह्य: विशेष निश्चय: पुनरग्रे वक्ष्यमाणस्तिष्ठतीति सूत्रार्थ:।

अर्थ : निश्चय शब्द से - अभ्यास करने वाले प्राथमिक, जघन्य पुरुष की अपेक्षा तो व्यवहार रत्नत्रय के अनुकूल निश्चय ग्रहण करना चाहिये। निष्पन्न योग में निश्चल पुरुष की अपेक्षा अर्थात् मध्यम धर्मध्यान की अपेक्षा व्यवहार रत्नत्रय के अनुकूल निश्चय करना चाहिये। निष्पन्न योग अर्थात् उत्कृष्ट धर्मध्यानी पुरुष की अपेक्षा शुद्धोपयोग लक्षण रुप विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चय नय ग्रहण करना चाहिये। विशेष निश्चय अर्थात् शुद्ध निश्चय आगे कहते हैं - मन, वचन, काय से कुछ भी व्यापार मत करो, केवल आत्मा में ही रत हो जाओ।

१३. शंका : क्या शुद्ध निश्चय नय का विषय वचनातीत है?

समाधान : हाँ, देखो (प.पं.वि. अ. १ छंद १५७)

शुद्धं वागति वर्ति तत्त्व मितर द्वाच्यं च तद्वाचकं ।

अर्थ : शुद्ध तत्त्व वचन के अगोचर है, इसके विपरीत अशुद्ध तत्त्व वचनों के गोचर कहा गया है।

१४. शंका : क्या निश्चय सम्यग्दृष्टि शुद्ध नय का ही आश्रय लेते हैं?

समाधान : हाँ, देखें (स.सा./आ. ११, ४१४)

ये भूतार्थमाश्रयन्ति त एव सम्यक् पश्यंतः सम्यग्दृष्टयो भवन्ति न पुनरन्ये, कतक स्थानीयत्वात् शुद्धनयस्य।

अर्थ : यहाँ कतक फल के समान शुद्ध नय है जो पर संयोग को दूर करता है, इसलिये जो शुद्ध नय का आश्रय लेते हैं वे ही सम्यक् अवलोकन करने से सम्यग्दृष्टि हैं, अन्य नहीं। अथवा (प.पं.वि. अ. १ छंद ८०) में भी कहा है कि-

निरूप्य तत्त्वं स्थिरतामुपागता,मतिः सतां शुद्धनयावलम्बिनी।

अखण्डमेकं विशदं चिदात्मकं, निरंतरं पश्यति तत्परं महः ॥

अर्थ : शुद्ध नय का आश्रय लेने वाली साधुजनों की बुद्धि, तत्त्व का निरूपण करके स्थिरता को प्राप्त होती हुई निरंतर अखण्ड, एक निर्मल, एक चेतन स्वरूप उस उत्कृष्ट ज्योति का ही अवलोकन करती है।

१५. शंका : शुद्धनयावलंबन से ही क्या आत्मलाभ होता है?

समाधान : हाँ, (प्र.सा.त.प्र. १९१/२५६/१८) में कहा है कि शुद्धनयाच्छुद्धात्मलाभ एव -

अर्थ : शुद्धनय के आलंबन से शुद्ध आत्मलाभ अवश्य होता है।

भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो॥ (स.सा. ११)

अर्थ : जो जीव भूतार्थ का आश्रय लेता है वह निश्चय नय से सम्यग्दृष्टि होता है।

अत्रैवा विश्रान्तान्तर्दृष्टिर्भवत्यात्मा। (न.च.श्रु. ३२)

अर्थ : इस नय का सहारा लेने से ही आत्मा अन्तर्दृष्टि होता है।

१६. शंका : कौन सा नय आराधनीय है?

समाधान : तस्माद् द्वावपि नाराध्यावाराध्यः पारमार्थिकः।(न.च.श्रु. ६७)

अर्थ : इसलिये निश्चय व व्यवहार दोनों ही नय आराध्य नहीं हैं। एक केवल पारमार्थिक नय ही आराध्य है।

णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं। (स.सा. २७२)

अर्थ : निश्चय नय के आश्रित मुनि निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

१७. शंका : क्या अशुद्ध नय से अशुद्धात्मा का ही लाभ होता है?

समाधान : हाँ, देखो (प्र.सा. / त.प्र.टी. १९०) में कहा है कि –

अतो अवधार्यते अशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एव।

अर्थ : इससे जाना जाता है कि अशुद्ध नय से अशुद्धात्मा का लाभ होता है।

(इस विषय को शंका समाधान नं. ३३३ से ३३६ तक में देखें)

१८. शंका : क्या शुद्ध नय के आश्रय से ही शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है?

समाधान : हाँ, देखो (प्र.सा./त. प्र. १९१)

निश्चयनयापहस्तितमोह..... आत्मानमेवात्मत्वेनोपादाय परद्रव्य व्यावृत्तत्वादात्मन्येवैकस्मिन्नग्रे चिंतां निरूणद्धिस खलु... निरोध..... समये शुद्धात्मा स्यात्। अतोऽवधार्यते शुद्धनयादेव शुद्धात्म लाभः।

अर्थ : निश्चय नय के द्वारा जिसने मोह को दूर किया है वह पुरुष आत्मा को ही आत्मरूप से ग्रहण करता है और परद्रव्य से भिन्नत्व के कारण आत्मा रूप एक अग्र में ही चिंता को रोकता है (निर्विकल्प समाधि को प्राप्त होता है) उस एकाग्र चिन्ता निरोध के समय वास्तव में वह शुद्धात्मा होता है। इससे निश्चित होता है कि शुद्ध निश्चय नय से ही शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है।

१९. शंका : कुछ लोग अंतरंग सम्यग्दर्शन को निश्चय तथा उसके बाह्य प्रशमादि को व्यवहार कहते हैं ये बात क्या सही है?

समाधान : यह कथन आगमिक दृष्टि से ही माना जा सकता है। अध्यात्मिक दृष्टि से नहीं, क्योंकि अध्यात्म ग्रंथ इसे व्यवहार ही कहते है (देखिये पृ. १० शंका १८)

क्योंकि जिन प्रशमादि भावों को शास्त्रों में व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा गया है वह तभी जबकि अंतर आत्मा से हो / अंतर मन से हो / अंतर हृदय से हो, तभी वे व्यवहार हैं अन्यथा वे व्यवहाराभास हैं। व्यवहार भी नहीं है। तो फिर वे अंतरंग भाव से उत्पन्न प्रशमादि निश्चय सम्यग्दर्शन कैसे हो सकते हैं ?

२०. **शंका : तो क्या प्रशमादि भाव अंतरंग में होते हैं बहिरंग में नहीं?**

समाधान : अंतरंग से उत्पन्न हुए प्रशमादि भाव ही सच्चे प्रशमादि भाव हैं और वे ही व्यवहार सम्यग्दर्शन के गमक हैं।

२१. **शंका : तो क्या प्रशमादि भाव मिथ्यादृष्टि को नहीं हो सकते हैं?**

समाधान : हो सकते हैं किंतु वे मोक्षमार्ग हेतुक नहीं हो सकते, अतः मोक्षमार्ग में वे बाह्य हैं।

२२. **शंका : तो क्या वे मात्र बाह्य में ही होते हैं, अंतरमन से आत्मा या हृदय में नहीं होते और यदि नहीं होते तो फिर मिथ्यादृष्टि नौ ग्रैवेयक तक कैसे जाता है? घानी में पेले जाने पर भी उनमें बाह्य उपशमादि भाव दिखता है।**

समाधान : मिथ्यादृष्टि को भी प्रशमादि भाव संभव हैं और वे उसे नौ ग्रैवेयक तक पहुँचा सकते हैं किंतु उसके वे भाव सम्यक्त्व से रहित होते हैं अतः संसार के ही कारण है, मोक्ष के नहीं।

२३. **शंका : अब समझ में आया कि उसके प्रशमादि भाव सम्यक्त्व से रहित होने के कारण मोक्ष के कारण नहीं होते। परंतु अंतरंग और बहिरंग में उसे हो सकते हैं किंतु यदि सम्यक्त्व के साथ है तो वे मोक्ष के कारण हैं, इसे एक बार फिर से समझा दीजिए?**

समाधान : ध्यान दीजिए, अंतरंग सम्यग्दर्शन के साथ जो अंतरंग-बहिरंग प्रशमादि भाव हैं वे ही व्यवहार सम्यग्दर्शन हैं। प्रशमादि सहित सम्यग्दर्शन व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन से रहित प्रशमादि भाव तथा प्रशमादि भाव से रहित सम्यग्दर्शन व्यवहार सम्यग्दर्शन नहीं है।

अकेला अंतरंग सम्यदर्शन या अंतरंग प्रशमादि भाव सम्यग्दर्शन नहीं है। अपितु सम्यग्दर्शन व प्रशमादि की युगपत्ता ही व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

२४. शंका : अंतरंग सम्यग्दर्शन के साथ अंतरंग-बहिरंग प्रशमादि भाव होते ही हैं क्या?

समाधान : सम्यग्दृष्टि जीव को सराग अवस्था में नियम से अंतरंग में प्रशमादि भाव पाये ही जाते हैं, बहिरंग में भजनीय है। दिख भी सकते है और नहीं, क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि चतुर्थगुणस्थानवर्ती भरतादि युद्ध भी करते हैं तो भी उनमें उस क्षण में प्रशमादि भाव रहते ही हैं। तथा वीतराग दशा में मुनिराजों को तत्क्षण के प्रशमादि भाव नहीं दिखते हैं।

२५. शंका : तो फिर सात प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम नियम से निश्चय सम्यग्दर्शन हैं?

समाधान : यह भी गलत है क्योंकि सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय या क्षयोपशम से नियम से सम्यग्दर्शन होता है किंतु वह निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं है उसे निश्चय सम्यग्दर्शन कहना भी सबसे बड़ी भूल है क्योंकि यदि निश्चय सम्यग्दृष्टि मानोंगे तो फिर निश्चय सम्यग्दर्शन स्थाई मानना पड़ेगा और ऐसा माना तो फिर शुभाशुभ कार्य करते वक्त भी संकल्प-विकल्प में भी तथा सराग दशा में भी वह निश्चय सम्यग्दृष्टि ही रहेगा। और यदि ऐसा रहा तो, या तो निश्चय या वीतराग सम्यग्दर्शन का अभाव मानना पडेगा। अथवा उसकी व्यवहार तथा सराग क्रियाओं को भी वीतराग मानना पड़ेगा अथवा दोनों को युगपत् मानना पड़ेगा जिससे सिद्धान्त का लोप हो जायेगा अर्थात् न तो वह वीतराग ही रहेगा और न सराग ही, अपितु मिश्र रूप हो जायेगा। और आगम में जहाँ वीतराग-सराग ऐसे दो भेद कहे हैं वहाँ तीसरा मिश्र भेद तो कहीं कहा भी नहीं गया है फिर उसे मानना आगम विरुद्ध ठहरेगा और आगम विरुद्ध मान्यता मिथ्यात्व कहलायेगी।

विधानं दुर्गतेद्वारां निधानं सर्व संपदाम्।

विधानं मोक्ष सौख्यानां पुण्यै सम्यक्त्वमाथते ॥ सु.स. ७१४ ॥

अर्थ : जो दुर्गति के द्वारो को बंद करने वाला है, समस्त सम्पदाओं का भण्डार है और मोक्ष संबंधी सुखों को करने वाला है ऐसा सम्यग्दर्शन बहुत भारी पुण्य से प्राप्त होता है।

२६. शंका : व्यवहार नय किसे कहते हैं?

समाधान : देखिये – (न. च. वृ. गा. २६४) में कहा है कि-

जो सिये भेदुवयारं धम्माणं कुणइ एगवत्थुस्स।
सोववहारो भणियो विवरीओ णिच्छयो होइ ॥

अर्थ : एक अभेद वस्तु में जो धर्मों का अर्थात् गुण पर्यायों का भेद रूप उपचार करता है, वह व्यवहार नय कहलाता है।

अथवा (त. अनु. श्लो. २९) में कहा है कि –

व्यवहार नय भिन्न कर्तृकर्मादिगोचरः।

अर्थ : व्यवहार नय भिन्न कर्ता कर्मादि विषयक है।

२७. शंका : व्यवहार नय क्या अपरमार्थ है?

समाधान : हाँ, देखो (न. च. श्रु. गा. २९-३०) में कहा है कि –

योऽसौ भेदोपचार लक्षणोऽर्थः सोऽपरमार्थः। अभेदानुपचारस्यार्थस्या परमार्थत्वात् व्यवहारोऽपरमार्थ प्रतिपादकत्वाद भूतार्थः।

अर्थ : जो यह भेद और उपचार लक्षण वाला पदार्थ है सो अपरमार्थ है क्योंकि अभेद व अनुपचार रुप पदार्थ को ही परमार्थपना है। व्यवहार नय उस अपरमार्थ का प्रतिपादक होने से अभूतार्थ है।

२८. शंका : व्यवहार नय का आश्रय किसे नहीं लेना चाहिये?

समाधान : (स.सा.आ. ख्या. गा. ११) में कहा है कि –

प्रत्यगात्मदर्शिभि व्यवहार नयो नानुसर्तव्यः।

अर्थ : कर्मों से भिन्न शुद्धात्मा को देखने वालों को व्यवहार नय अनुसरण करने योग्य नहीं हैं।

२९. शंका : व्यवहार नय को ही कोई परमार्थ मान ले तो?

समाधान : देखो (स. सा. आ. ख्या. ४१४)

ये व्यवहारमेव परमार्थ बुद्धया चेतयन्ते ते समयसार मेव न चेतयन्ते।

अर्थ : जो व्यवहार को ही परमार्थ बुद्धि से अनुभव करते हैं। वे समयसार का ही अनुभव नहीं करते हैं।

३०. शंका : तो क्या व्यवहार नय सर्वथा असत्य है?

समाधान : इस प्रश्न का दृष्टान्तपूर्वक समाधान देते हुए (स.सा./ता.वृ. ३५६-३६५ / ४४७/१५) में कहा है कि -

ननु सौगतोऽपि ब्रूते व्यवहारेण सर्वज्ञः, तस्य किमिति दूषणं दीयते भवद्भिरिति। तत्र परिहारमाह सौगतादिमते यथा निश्चयापेक्षा व्यवहारो मृषा, तथा व्यवहाररुपेणापि व्यवहारो न सत्य इति, जैन मतेपुर्नव्यवहारनयो यद्यपि निश्चयापेक्षया मृषा तथापि व्यवहारेण सत्य इति। यदि पुनर्लोकव्यवहार रुपेणपि सत्यो न भवति तर्हि सर्वेऽपि लोक व्यवहारो मिथ्या भवति, तथा सत्यतिप्रसङ्गः एवमात्मा व्यवहारेण परद्रव्यं जानाति पश्यति निश्चयेन पुनः स्वद्रव्यमेवेति।

अर्थ : प्रश्न - सौगत (बौद्ध) मत वाले भी सर्वज्ञपना व्यवहार से मानते हैं तब आप उनको दूषण क्यों देते हो? (क्योंकि जैनमत में भी कहा कि केवली परपदार्थों को व्यवहार से जानते हैं।)

उत्तर : इसका परिहार करते हैं -

सौगत आदि मत में जिस प्रकार निश्चय की अपेक्षा व्यवहार झूठा है, उसी प्रकार व्यवहार रुप से भी वह सत्य नहीं है परंतु जैनमत में व्यवहार नय ये यद्यपि निश्चय की अपेक्षा मृषा (झूठा) है तथापि व्यवहार रुप से वह सत्य है। यदि लोकव्यवहार रुप से भी उसे सत्य न माना जाये तो सभी लोक व्यवहार मिथ्या हो जायेगा और ऐसा होने पर अतिप्रसंग दोष आयेगा। इसलिये केवली भगवान की आत्मा व्यवहार से परद्रव्य को जानता देखता है पर निश्चय नय से केवल स्वद्रव्य अर्थात् आत्म द्रव्य को ही जानता देखता है।

३१. शंका : तो क्या व्यवहार, व्यवहार नय से सत्य है?

समाधान : देखे (स. सा. ता. वृ. गा. ११)

व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थश्च देशितः कथितः न केवलं व्यवहारो देशितः शुद्ध निश्चय नयोऽपि।

अर्थ : व्यवहार नय अभूतार्थ है (असत्यार्थ है) तथा भूतार्थ (सत्यार्थ भी) है ऐसा कहा है और मात्र व्यवहार ही नहीं कहा, किंतु शुद्ध निश्चय नय भी भूतार्थ व अभूतार्थ ऐसा दो प्रकार से कहा हैं।

३२. शंका : क्या निश्चय नय ही प्रयोजनवान् है व्यवहार नहीं?

समाधान : ऐसा नहीं कहना चाहिये, देखिये (स.सा.ता.वृ.गा. १२) की प्रस्तावना में कहा है कि -

अत्र तु न केवलं भूतार्थो निश्चय नयो निर्विकल्प समाधिरतानां प्रयोजनवान भवति। किंतु निर्विकल्प समाधि रहितानां पुनः षोडश वर्णिका सुवर्ण लाभाभावे अधस्तन वर्णिका सुवर्ण लाभवत्केषाञ्चित प्राथमिकानां कदाचित सविकल्पावस्थायां मिथ्यात्व विषय कषाय दुर्ध्यान वञ्चानार्थंव्यवहार नयोऽपि प्रयोजनवान् भवतीति।

अर्थ : यहाँ केवल भूतार्थ अर्थात् निश्चय नय निर्विकल्प समाधि में लीन योगियों को ही प्रयोजनवान नहीं है किंतु निर्विकल्प समाधि से रहित सोलहवें ताव से रहित इससे कम ताव वाले स्वर्णलाभ के समान कुछ प्राथमिकों को कदाचित् सविकल्प अवस्था में मिथ्यात्व, विषय - कषाय, दुर्ध्यान से बचने के लिये व्यवहार नय भी प्रयोजनवान होता है।

३३. शंका : अपरम भाव में स्थित प्राथमिक जन कौन हैं?

समाधान : देखिये (स.सा. ता.वृ. १२/२६/६)

व्यवहार देशितो व्यहार नयः पुनः अधःस्तन वर्णिक सुवर्ण लाभ वत्प्रयोजनवान् भवति । केषां? ये पुरुषाः पुनः अशुद्धे असंयत सम्यग्दृष्टयपेक्षया श्रावकापेक्षया वा सराग सम्यग्दृष्टि लक्षणे शुभोपयोगे प्रमत्ताप्रमत्त संयतापेक्षया च भेदाभेद रत्नत्रय लक्षणे वा स्थिताः, कस्मिन् स्थिताः? जीव पदार्थे तेषामिति भावार्थः॥

अर्थ : व्यवहार के उपदेश से व्यवहार नय अधस्तन अर्थात् सोलह से पूर्ववर्ती ताव वाले स्वर्ण के समान होता है। किसका व्यवहार? जो पुरुष अशुद्ध अवस्था में स्थित असंयत सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा, (व्रती) श्रावकों की अपेक्षा तथा सराग सम्यग्दृष्टि लक्षण से युक्त शुभोपयोग में स्थित प्रमत्त और अप्रमत्त की अपेक्षा भेदरत्नत्रय लक्षण में स्थित है। किसमें? जीव पदार्थ में, उनको व्यवहार नय प्रयोजनवान् है।

३४. शंका : क्या व्यवहार बिना केवल निश्चय से ही कार्यसिद्धि नहीं होती?

समाधान : इस प्रश्न के समाधान को (अन. ध १/१००/१०७) देखें

व्यवहार पराचीनो निश्चयं यश्चिकीर्षति।

बीजादिना बिना मूढः स सस्यानि सिसृक्षति ॥

अर्थ : जो व्यवहार से पराङ्मुख होकर केवल निश्चय से ही कार्य सिद्ध करना चाहता है, वह मनुष्य बीज, खेत, जल, खाद आदि के बिना ही धान्य उत्पन्न करना चाहता है।

३५. शंका : व्यवहार नय क्या किसी को किसी भी काल में प्रयोजनवान नहीं?

समाधान : नहीं, ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि **(स.सा. आ. टी. गाथा १२)** में उक्त प्रश्न के समाधान में देते है –

अथ च केषांचित्कदाचित्सोऽपि प्रयोजनवान् ये खलु... परमं भावमनुभवन्ति तेषां... व्यवहार नयो... परिज्ञायमानस्तदात्वे प्रयोजनवान, तीर्थ तीर्थफलयोरित्थमेव व्यवस्थितत्वात्। उक्तं च –

जह जिणमयं पवज्जह ता मा व्यवहार णिच्छए मुयह।

एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं ॥

अर्थ : व्यवहार नय भी किसी – किसी को किसी काल में प्रयोजनवान होता है। जो पुरुष अपरम भाव में स्थित है अर्थात् ४ से ७ गुणस्थान तक के जीवों को जानने में आता हुआ उस समय प्रयोजनवान है, क्योंकि तीर्थ व तीर्थ के फल की ऐसी ही व्यवस्थिति है। अन्यत्र भी कहा है –

भव्य जीवों ! यदि तुम जिनमत को प्रवर्ताना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों नयों को मत छोड़ो, क्योंकि व्यवहार नय के बिना तो तीर्थ का नाश हो जायेगा और निश्चय नय के बिना तत्त्व का नाश हो जायेगा।

३६. शंका : तब तो परमार्थ का ही उपदेश देना चाहिए फिर व्यवहार का क्यों?

समाधान : तर्हि परमार्थ एवैको वक्तव्य इति चेत?

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्ज भासं विणा उ गाहेदुं।

तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसण मसक्कं ॥स.सा. ८॥

प्रश्न : तब तो एक परमार्थ का ही उपदेश देना चाहिए था। व्यवहार का उपदेश किस लिये दिया जाता है?

उत्तर : जैसे अनार्यजन को अनार्य भाषा के बिना किसी भी वस्तु का स्वरूप ग्रहण कराने के लिए कोई समर्थ नहीं है उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश देना अशक्य है।

अथवा

व्यवहारो हि व्यवहारिणां म्लेच्छ भाषेव म्लेच्छानां परमार्थ प्रतिपादकत्वा - दपरमार्थोऽपि तीर्थ प्रवृत्ति निमित्तं दर्शयितुं न्याय्य एव। तमन्तरेण तु शरीराज्जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनात् त्रसस्थावराणां भस्मन इव निःशङ्क मुपमर्दनेन हिंसाऽभावाद्भवत्येव बन्धस्याभावः। तथा रक्तोद्विष्टो विमूढो जीवो बध्यमानो मोचनीय इति रागद्वेष मोहेभ्यो जीवस्य परमार्थतो भेददर्शनेन मोक्षोपायपरिग्रहणाभावात् भवत्येव मोक्षस्याभावः। (स.सा.आ.४६)

अर्थ : जैसे म्लेच्छों को म्लेच्छ भाषा, वस्तु का स्वरूप बतलाती है, उसी प्रकार व्यवहार नय, व्यवहारी जीवों को परमार्थ का कहने वाला है। इसलिये अपरमार्थभूत होने पर भी, धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति करने के लिए वह (व्यवहार नय) बतलाना न्यायसंगत ही है। परन्तु यदि व्यवहार नय न बतलाया जाये तो, क्योंकि परमार्थ से जीव को शरीर से भिन्न बताया गया है इसलिये जैसे भस्म को मसल देने से हिंसा का अभाव है उसी प्रकार त्रस-स्थावर जीवों का निशंकतया मसल देने में भी हिंसा का अभाव ठहरेगा और इस कारण बंध का ही अभाव सिद्ध होगा। उसी प्रकार रागी-द्वेषी-मोही जीव कर्म से बंधता है वह छुड़ाने योग्य है ऐसा कहा गया है। परमार्थ से राग-द्वेष-मोह से जीव को भिन्न दिखलाने पर मोक्ष के उपाय का उपदेश व्यर्थ हो जायेगा, तब मोक्ष का भी अभाव ठहरेगा इसलिये व्यवहार नय कहा गया है।

३७. शंका : क्या व्यवहार नय के आश्रय के बिना शुद्ध स्वरुप का आश्रय संभव है ?

समाधान : देखो (प. पं. वि. गा. ११/११) में कहा है कि

मुख्योपचार विवृत्तिं व्यवहारोपायतो यतः सन्तः।
ज्ञात्वा श्रयन्ति शुद्धं तत्त्वमिति व्यवहृतिः पूज्या॥

अर्थ : चूँकि सज्जन पुरुष व्यवहार नय के आश्रय से ही मुख्य और उपचार भूत कथन को जानकर शुद्ध स्वरूप का आश्रय लेते हैं, अतएव व्यवहार नय पूज्य है।

३८. शंका : व्यवहार नय से परद्रव्य को अपना कहने से अज्ञानी कैसे कहा जा सकता है?

समाधान : देखें (**स.सा.ता. वृ. गा. ३२४ - ३३७/४१४**)

ज्ञानी भूत्वा व्यवहारेण परद्रव्य मात्मीयं वदन् सन् कथमज्ञानी भवति इति चेत्। व्यवहारो हि म्लेच्छानां म्लेच्छ भाषेव प्राथमिक जनसंबोधनार्थं काल एवानुसर्तत्य:। प्राथमिक जन प्रतिबोधन कालं विहाय कतक फल वदात्म शुद्धिकारकात् शुद्धनयाच्च्युतो भूत्वा यदि परद्रव्य मात्मीयं करोति तदा मिथ्यादृष्टि र्भवति।

अर्थ : प्रश्न - ज्ञानी होकर व्यवहार नय से परद्रव्य को अपना कहने से वह अज्ञानी कैसे हो जाता है?

उत्तर : म्लेच्छों को समझाने के लिये म्लेच्छ भाषा की भांति प्राथमिक जनों को समझाने के समय ही व्यवहार नय अनुशरण करने योग्य है प्राथमिक जनों के संबोधन काल को छोड़कर अन्य समयों में नहीं, अर्थात् कतक फल की भांति जो आत्मा की शुद्धि करने वाला है ऐसे शुद्ध नय से च्युत होकर यदि परद्रव्य को अपना कहता है तब मिथ्यादृष्टि हो जाता है। अथवा

(पु. सि. श्लो. ६-७) में कहा है कि -

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्य भूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवल मवैति यस्तस्य देशना नास्ति ॥
माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीत सिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा, निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य ॥

अर्थ : अज्ञानी को समझाने के लिये ही मुनि जन अभूतार्थ (व्यवहार) नय का उपदेश देते हैं। जो केवल व्यवहार को ही सत्य मानते हैं उनके लिये उपदेश नहीं है जो सच्चे को नहीं जानते हैं। उनको यदि विलाव जैसा सिद्ध होता है यह कहा जाये तो विलाव को ही सिंह मान बैठेंगे। इसी प्रकार जो निश्चय को नहीं जानते उनको यदि व्यवहार का उपदेश दिया जाये तो वे उसी को निश्चय मान लेंगे।

३९. शंका : व्यवहार नय क्या पराश्रित है?

समाधान : हाँ, देखो **(स.सा. आ.ख्या. गा. २७२)**

पराश्रित व्यवहार :

अर्थ : परपदार्थ के आश्रित कथन करने वाला होने से व्यवहार नय पराश्रित है।

४०. शंका : व्यवहार नय क्या पर्यायार्थिक भी है?

समाधान : हाँ, देखिये **(गो.जी. २७२/१०१६)**

ववहारोय वियप्पो भेदो तह पज्जओत्ति एयट्ठो।

अर्थ : व्यवहार, विकल्प, भेद व पर्याय ये एकार्थवाची शब्द हैं।

४१. शंका : व्यवहार नय को स्पष्ट समझाते हुए उसके भेद भी समझाइए?

समाधान : देखें **(पं. का. गाथा ४७)**

णाणं धणं च कुव्वदि, धणिणं जह णाणिं च दुविधेहिं।
भण्णंति तद पुधत्तं, एयत्तं चावि तच्चण्हू ॥

अर्थ : धन पुरुष को धनवान करता है, और ज्ञान आत्मा को ज्ञानी करता है इसी प्रकार तत्त्वज्ञ पुरुष उस व्यवहार को एकत्व और पृथकत्व के रूप से दो प्रकार का कहते हैं।

अथवा (न.च. श्रुत पृ. २५) पर कहा है कि -

व्यवहारो द्विविधः सद्भूत व्यवहारो असद्भूत व्यवहारश्च। तत्रैक वस्तु विषयः सद्भूत व्यवहारः। भिन्न वस्तु विषयोऽसद्भूत व्यवहारः।

अर्थ : व्यवहार दो प्रकार का हैं - सद्भूत व्यवहार और असद्भूत व्यवहार नय। जहाँ सद्भूत व्यवहार नय एक वस्तु विषयक होता है और असद्भूत व्यवहार भिन्न वस्तु विषयक होता है।

४२. शंका : उपनय किसे कहते हैं तथा उसके कितने भेद हैं?

समाधान : देखें (आ.प.सू. ४३-४४)

नयानां समीपः उपनयः। सद्भूत व्यवहारः असद्भूत व्यवहारः उपचरितासद्भूत व्यवहारश्चेत्युपनयस्त्रेधा।

अर्थ : जो नयों के समीप हो अर्थात् नयों की भांति ही ज्ञाता के अभिप्राय स्वरूप हों, उन्हें उपनय कहते हैं और वह तीन प्रकार का हैं - १. सद्भूत २. असद्भूत ३. उपचरित असद्भूत

४३. शंका : सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं? दृष्टांत द्वारा समझाइए।

समाधान : देखें (न. च. वृ. गा. २१९)

गुण गुणि पज्जय दव्वे कारक सब्भावदो य दव्वेसु।

तो णाउणं भेयं कुणयं सब्भूय सद्धियरो ॥

अर्थ : गुण व गुणी में अथवा पर्याय व द्रव्य में कर्ता, कर्म, करण व संबंध आदि कारकों का कथंचित् सद्भाव होता है उसे जानकर जो द्रव्यों में भेद करता है वह सद्भूत व्यवहार नय है।

४४. शंका : सद्भूत व्यवहार नय के कितने व कौन - कौन से भेद हैं?

समाधान : (आ.प. सू. २२३) में कहा है कि -

तत्र सद्भूत व्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरित भेदात्।

अर्थ : सद्भूत व्यवहार नय दो प्रकार का हैं १. उपचरित २. अनुपचरित।

४५. शंका : उपचरित सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं? समझाइए।

समाधान : देखें (आ.प. सू. २२४)

तत्र सोपाधिगुणगुणिनोर्भेद विषय : उपचरित सद्भूत व्यवहारो यथा - जीवस्य मतिज्ञानादयो गुणाः।

अर्थ : उपाधिसहित गुण व गुणी में भेद को विषय करने वाला उपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। जैसे - मतिज्ञानादि जीव के गुण हैं।

४६. शंका : क्या उपचरित सद्भूत व्यवहार नय के भी भेद हैं? उदाहरण सहित समझाइए।

समाधान : नहीं, उपचरित सद्भूत व्यवहार नय के भेद नहीं हैं अपितु इसे ही अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नाम से जानां जाता है। यथा – अशुद्ध उपचरित सद्भूत व्यवहार नय को देखें – (द्र. सं. टी. गा. ६/१८/६)

छद्मस्थज्ञानदर्शन परिपूर्णापेक्षया पुनरशुद्ध शब्द वाच्य उपचरिता सद्भूत व्यवहारः।

अर्थ : छद्मस्थ जीव के ज्ञान – दर्शन की अपेक्षा अशुद्ध सद्भूत शब्द से वाच्य उपचरित सद्भूत व्यवहार है।

अथवा देखें (नि.सा./ता. वृ. गा. ९)

अशुद्ध सद्भूत व्यवहारेण मतिज्ञानादि विभाव गुणानामाधारभूतत्वाद शुद्ध जीवः।

अर्थ : अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय से मतिज्ञानादि विभाव गुणों का आधार होने के कारण अशुद्ध जीव है।

अथवा (आ. प. सू. ८३) देखें –

अशुद्ध सद्भूत व्यवहारो यथाऽशुद्धगुणाऽशुद्धगुणिनोरशुद्धपर्याया शुद्धपर्यायिणोर्भेद कथनम्।

अर्थ : अशुद्ध गुण व अशुद्ध गुणी में अथवा अशुद्ध पर्याय व अशुद्ध पर्यायी में भेद का कथन करना अशुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है।

४७. शंका : अनुपचरित सद्भूत तथा शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय एक ही है?

समाधान : हाँ, ये एक ही है। शुद्ध कहो या अनुपचरित, दोनों का अर्थ एक ही है।

४८. शंका : अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

समाधान : देखें (आ.प.सू. २२५)

निरूपाधिगुणगुणिनोर्भेद विषयोऽनुपचरित सद्भूत व्यवहारो यथा – जीवस्य केवलज्ञानादयो गुणाः।

अर्थ : निरूपाधि गुण व गुणी में भेद को विषय करने वाला अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। जैसे – केवलज्ञानादि जीव के गुण हैं।

अथवा (आ.प.सू. ८२) देखें –

शुद्ध सद्भूत व्यवहारो यथा शुद्ध गुण गुणिनो शुद्ध पर्याय पर्यायिणो भेंद कथनम्।

अर्थ : शुद्ध गुण व शुद्ध गुणी में अथवा शुद्ध पर्याय व शुद्ध पर्यायी में भेद का कथन करना शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय है।

अथवा देखें – (नि. सा. / ता.वृ. गा. ९)

शुद्ध सद्भूत व्यवहारेण केवलज्ञानादि शुद्धगुणानामाधारभूतत्वात्कार्य शुद्ध जीवः।

अर्थ : शुद्ध सद्भूत व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्ध गुणों का आधार होने के कारण 'कार्य शुद्ध' जीव है।

अथवा देखें (द्र.सं.टी.गा. ६/१८/५)

केवलज्ञानदर्शनं प्रतिशुद्ध सद्भूत शब्द वाच्योऽनुपचरित सद्भूत व्यवहारः।

अर्थ : यहाँ जीव का लक्षण कहते समय केवलज्ञान व केवलदर्शन के प्रति शुद्ध सद्भूत से वाच्य अनुपचरित सद्भूत व्यवहार है।

४९. शंका : क्या असद्भूत व्यवहार नय तथा अशुद्ध नय एक ही है?

समाधान : हाँ, एक ही है।

५०. शंका : असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

समाधान : देखें (आ.प.सू. २२२)

भिन्न वस्तु विषयोऽसद्भूत व्यवहारः।

अर्थ : भिन्न वस्तु को विषय करने वाला असद्भूत व्यवहार नय है।

५१. शंका : असद्भूत व्यवहार नय को किसी दृष्टांत द्वारा स्पष्ट कीजिए?

समाधान : (न. च. वृ. गा. ११३, ३२०) में कहा है कि –

मण वयण काय इंदिय, आणप्पाणां उगं च जं जीवे।
तमसब्भूओ भणदि हु ववहारो लोय मज्झम्मि ॥
णेयं खलु जत्थ णाणं सद्धेयं जत्थ दंसणं भणियं।
चरियं खलु चारित्तं, णायव्वं त असब्भूवं ॥

अर्थ : मन, वचन, काय, इन्द्रिय, आन प्राण और आयु ये जो दश प्राण जीव के हैं, ऐसा असद्भूत व्यवहार नय कहता है । ज्ञेय को ज्ञान का कहना - जैसे घर ज्ञान, श्रद्धेय को दर्शन कहना जैसे - देव - शास्त्र - गुरु की श्रद्धा सम्यग्दर्शन है। आचरण करने योग्य को चारित्र कहते हैं। जैसे - हिंसा आदि का त्याग चारित्र है यह सब कथन असद्भूत व्यवहार नय है।

अथवा - (आ. प. सू. १६०, १६४, १७२, १७६)

असद्भूत व्यवहारेण कर्म नोकर्मणोरपि चेतन स्वभावः .. जीवस्याप्य-सद्भूत व्यवहारेण मूर्त स्वभावः... असद्भूत व्यवहारेणाप्युपचारेणा मूर्तत्वं... असद्भूत व्यवहारेण उपचरित स्वभावः।

अर्थ : असद्भूत व्यवहार से कर्म, नोकर्म चेतन स्वभावी हैं। जीव का भी मूर्त स्वभाव है और पुद्गल स्वभाव अमूर्तत्व उपचरित है।

५२. शंका : असद्भूत व्यवहार नय के कितने भेद हैं?

समाधान : देखें (आ. प. २२६)

असद्भूत व्यवहारो द्विविधः उपचरितानुपचरितभेदात्।

अर्थ : असद्भूत व्यवहार नय दो प्रकार का है -

उपचरित असद्भूत और अनुपचरित असद्भूत।

५३. शंका : अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

समाधान : संश्लेष-सहित-वस्तु सम्बन्ध-विषयोऽनुपचरितासद्भूत - व्यवहारो यथा जीवस्य शरीरमिति। (आ.प. २२८)

अर्थ : संश्लेष सहित वस्तुओं के संबंध को विषय करने वाला अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे - जीव का शरीर है, ऐसा कहना।

५४. शंका : किसी दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट समझाइए?

समाधान : (नि. सा. / ता. वृ. १८) में कहा है कि -

आसन्नगतानुपचरितासद्भूत व्यवहार नयाद् द्रव्य कर्मणां कर्ता तत्फलरूपाणां सुखदुखानां भोक्ता च... अनुपचरितासद्भूत व्यवहारेण नोकर्मणां कर्ता।

अर्थ : आत्मा निकटवर्ती अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से द्रव्य कर्मों का कर्ता और उसके फलस्वरूप सुख - दुःख का भोक्ता है तथा नोकर्म अर्थात् शरीर का भी कर्ता है।

अथवा

(१) **(पं. का. ता. वृ. २७/६०/१५)**

अनुपचरित असद्भूत व्यवहारेण द्रव्य प्राणैश्च यथा संभवं जीवति जीविष्यति जीवित पूर्वश्चेति जीवो।

अर्थ : अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से यथासंभव द्रव्य प्राणों के द्वारा जीता है, जीवेगा और पहले जीता था इसलिए आत्मा जीव कहलाता है।

(२) **अनुपचरितासद्भूत व्यवहारान्मूर्तो - (द्र. सं. टी. ७/२०/१)**

अर्थ : अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से जीव मूर्त है।

(३) **अनुपचरितासद्भूत व्यवहार संबंधः द्रव्यकर्म नोकर्म रहितम्। (प.प्र.टी. १/१/६/८)**

अर्थ : अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से जीव, द्रव्यकर्म व नोकर्म से रहित है।

५५. शंका : उपचरित असद्भूत व्यवहार नय किसे कहते हैं?

समाधान : देखें **(आ.प. २२७)**

संश्लेष रहित वस्तु सम्बंध विषयः उपचरितासद्भूत व्यवहारो यथा - देवदत्तस्य धनमिति।

अर्थ : संश्लेष रहित वस्तुओं के सम्बंध को विषय करने वाला उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे - देवदत्त का धन, ऐसा कहना।

५६. शंका : क्या उपचरित असद्भूत व्यवहार नय को उपचार असद्भूत व्यवहार नय कह सकते हैं?

समाधान : हाँ, देखो (आ. प. सू. २०८)

असद्भूत व्यवहारो एवोपचारः। उपचारादप्युपचारं यः करोति स उपचरितासद्भूत व्यवहारः।

अर्थ : असद्भूत व्यवहार ही उपचार है। उपचार का भी जो उपचार करता है वह उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है।

५७. शंका : किसी दृष्टान्त के द्वारा इसे समझाइए?

समाधान : (१) (नि.सा./ता.वृ.गा. १८) में इसे इस प्रकार से समझाया गया है कि –

उपचरितासद्भूत व्यवहारेण घट पट शकटादीनां कर्ता।

अर्थ : उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से आत्मा घट, पट, रथ आदि का कर्ता है।

(२) (द्र. सं. टी. गा. १९/५७/१०)

उपचरितासद्भूत व्यवहारेण मोक्षशिलायां तिष्ठन्तीति भण्यते।

अर्थ : उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से सिद्ध जीव सिद्ध शिला पर तिष्ठते हैं।

(३) (प्र.सा./त.प्र.गा. २७५)

उपचरितासद्भूत व्यवहार नयेन काष्ठासनाद्युपविष्ट देवदत्तवत समवशरण स्थित वीतराग सर्वज्ञवद्वा विवक्षितैक ग्रामग्रहादि स्थितम्।

अर्थ : उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से यह आत्मा काष्ठ आसन पर बैठे हुए देवदत्त की भांति, अथवा समवशरण में स्थित वीतराग सर्वज्ञ की भांति विवक्षित किसी एक ग्राम या घर आदि में स्थित है।

५८. शंका : द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

समाधान :

(१) देखो (स. सा. आ. गा. १३)

द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि द्रव्यं मुख्यतयानुभावयतीति द्रव्यार्थिकः।

अर्थ : द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु में जो द्रव्य को मुख्य रूप से अनुभव करावे सो द्रव्यार्थिक नय है।

(२) **पज्जय गउणं किच्चा दव्वंपि य जो हु गिह्णइ लोए-भणिओ सो दव्वत्थिय॥ न.च.वृ. १८९॥**

अर्थ : पर्याय को गौण करके जो इस लोक में द्रव्य को ग्रहण करता है, उसे द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

५९. शंका : इसे और भी स्पष्ट कीजिए?

समाधान : देखो (प्र.सा. / त. प्र. ११४) में इस प्रकार समझाया है -

पर्यायार्थिकमेकान्तनिमीलितं विधाय केवलोन्मीलितेन द्रव्यार्थिकेन यदावलोक्यते तदा नारक तिर्यङ्मनुष्य देव सिद्धत्व पर्यायात्मकेषु विशेषेषु व्यवस्थितं जीव सामान्यमेकमवलोकयतामनवलोकित विशेषाणां तत्सर्वं जीव द्रव्यमिति प्रतिभाति।

अर्थ : पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बंद करके जब मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है तब नारकत्व, तिर्यकत्व, मनुष्यत्व, देवत्व और सिद्धत्व पर्याय स्वरूप विशेषों में रहने वाले एक जीव सामान्य को देखने वाले और विशेषों को न देखने वाले जीवों को "यह सब जीव द्रव्य है" ऐसा भासित होता है।

६०. शंका : द्रव्यार्थिक नय के कितने भेद हैं?

समाधान : देखें (आ. प. २०३)

शुद्धाशुद्ध निश्चयौ द्रव्यार्थिकस्य भेदौ।

अर्थ : शुद्ध निश्चय व अशुद्ध निश्चय दोनों द्रव्यार्थिक नय के भेद हैं।

६१. शंका : शुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं?

समाधान : देखें (आ.प. सू. १८५)

शुद्ध द्रव्यमेवार्थः प्रयोजनमस्येति शुद्ध द्रव्यार्थिक :।

अर्थ : शुद्ध द्रव्य ही है अर्थ और प्रयोजन जिसका सो शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

६२. शंका : शुद्ध तत्त्व क्या वचन के अगोचर है?

समाधान : हाँ, देखों (प.पं. वि. १/१५७) में कहा है कि –

शुद्धं वागति वर्तित तत्त्वं

अर्थ : शुद्ध तत्त्व वचन के अगोचर है।

६३. शंका : शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के विषय को स्पष्ट कीजिए?

समाधान : शुद्ध द्रव्यार्थिक नय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की प्रधानता से वस्तु को विषय करता है यथा –

द्रव्यापेक्षा : जो पस्सदि अप्पाणं अबद्ध पुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्ध णयं वियाणाहि ॥ (स.सा. १४)

अर्थ : जो नय आत्मा को बंध रहित और पर के स्पर्श से रहित, अन्यत्व रहित, चलाचलता रहित, विशेष रहित, अन्य के संयोग से रहित ऐसे पाँच भाव रूप अवलोकन करता है उसे हे शिष्य ! तू शुद्ध नय जान।

क्षेत्रापेक्षा : शुद्ध निश्चयनयेन स्वदेहा भिन्ने स्वात्मनि वसति यः तमात्मानं मन्यस्व (प.प्र.टी. २)

अर्थ : शुद्ध निश्चय नय अर्थात् अभेद नय से अपनी देह से भिन्न रहता हुआ वह निजात्मा में वसता है।

कालापेक्षा : शुद्ध द्रव्यार्थिक नयेन नर नारकादि विभाव परिणामोत्पत्ति विनाश रहितम्। (पं.का.ता.वृ. ११/२७/१९)

अर्थ : शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से नर नारकादि विभाव परिणामों की उत्पत्ति तथा विनाश से रहित है।

भावापेक्षा : (१) शुद्ध द्रव्यार्थिकेन शुद्ध स्वभावः ।(आ.प. १७४)

अर्थ : शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से शुद्ध स्वभाव है।

(२) शुद्ध नयेन केवल मृणमात्रवन्निरूपाधि स्वभावम्।

अर्थ : शुद्ध नय से आत्मा केवल मिट्टी मात्र की भांति शुद्ध (निरूपाधि) स्वभाव वाला है।

६४. शंका : अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय किसे कहते है?

समाधान : (१) (आ.प.सू. १८६) देखें

अशुद्ध द्रव्य मेवार्थः प्रयोजन मस्येत्य शुद्ध द्रव्यार्थिकः।

अर्थ : अशुद्ध द्रव्य ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका, सो अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

६५. शंका : क्या व्यवहार नय अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है?

समाधान : हाँ, देखें (श्लो. वा. २/१/७/२८/५८५/१)

व्यवहार नयोऽशुद्ध द्रव्यार्थिकः।

अर्थ : व्यवहार नय अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

(ध.पु. ९/४/१/४५/१७१/३)

पर्याय कलङ्कितया अशुद्ध द्रव्यार्थिकः व्यवहार नयः।

अर्थ : व्यवहार नय पर्याय (भेद) रुप कलंक से युक्त होने से अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

६६. शंका : उपर्युक्त वाक्य को स्पष्ट कीजिये?

समाधान : देखो (प्र.सा. परिशिष्ट नय न. ४६)

अशुद्ध नयेन घट शराव विशिष्ट मृण्मात्रवत्सोपाधि स्वभावम्।

अर्थ : अशुद्ध नय से आत्मा घट, शराब आदि विशिष्ट (अर्थात् पर्यायकृत भेदों से विशिष्ट) मिट्टी मात्र की भांति रागद्वेष सोपाधि स्वभाव वाला है।

६७. शंका : अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय भी क्या वचनों के अगोचर है?

समाधान : नहीं, देखें (प.पं. वि. १/१५७)

इतर वाच्यं च तद्वाचकं... प्रभेद जनकं शुद्धेतरत्कल्पितम्।

अर्थ : अशुद्ध तत्त्व वचन गोचर है उसका वाचक तथा भेद को प्रकट करने वाला अशुद्ध नय है।

६८. शंका : क्या द्रव्यार्थिक नय के और भी भेद हैं?

समाधान : हाँ है, देखें (आ. प. सू. ४६)

द्रव्यार्थिकस्य दश भेदाः।

अर्थ : द्रव्यार्थिक नय के दस भेद हैं।

६९. शंका : द्रव्यार्थिक नय के दस भेद कौन - कौन से हैं उदाहरण सहित समझाइये?

समाधान : (आ. प. सू. ४७) में कहा है कि -

(१) कर्मोपाधि निरपेक्षः शुद्ध द्रव्यार्थिको यथा संसारी जीवो सिद्ध सदृक शुद्धात्मा। अथवा मिथ्यात्वादि गुणस्थाने सिद्धत्वं वदति स्फुटं।

कर्मभि निरपेक्षो यः शुद्ध द्रव्यार्थिको हि सः ॥१॥ (न.च.श्रुत पृ. ३)

अर्थ : मिथ्यात्वादि गुणस्थान में अर्थात् अशुद्ध भावों में स्थित जीव को जो सिद्धत्व कहता है वह कर्म निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

अथवा कर्मोपाधि निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नयापेक्षया हि एभिर्नो कर्मभि द्रव्य कर्मभिश्च निर्मुक्तम्। नि.सा.ता. वृ. १०७

अर्थ : कर्मोपाधि निरपेक्ष सत्ता ग्राहक शुद्ध निश्चय रुप द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा आत्मा इन द्रव्य व भाव कर्मो से निर्मुक्त है।

(२) उत्पादव्यय गौणत्वेन सत्ता ग्राहकः शुद्ध द्रव्यार्थिको यथा -द्रव्यं नित्यं। (आ.प.सू. ४८)

अर्थ : उत्पाद व्यय गौण सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य नित्य स्वभावी है।

अथवा - सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय बलेन पूर्वोक्त व्यञ्जन पर्यायेभ्यः सकाशान्मुक्तामुक्त समस्तजीवराशयः सर्वथा व्यतिरिक्ता एव। (नि.सा., ता.वृ. गा. १९)

अर्थ : सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के बल से मुक्त तथा अमुक्त सभी जीव पूर्वोक्त (नरनारकादि) व्यंजन पर्याय से सर्वथा व्यतिरिक्त ही है।

(३) भेदकल्पना निरपेक्ष शुद्धो द्रव्यार्थिको यथा – निजगुण पर्याय स्वभावाद् द्रव्यमभिन्नम्। (आ.प.सू. ४९)

अथवा **भेदकल्पना निरपेक्षेणैक स्वभावः (आ.प.सू. १५४)**

अर्थ : भेदकल्पना निरपेक्ष शद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा द्रव्य निज गुण पर्यायों के स्वभाव से अभिन्न है तथा एक स्वभावी है।

अथवा **गुण गुणियाइच उक्के अत्थे जो णो करइ खलु भेयं।**

सुद्धो सो दव्वत्थो भेय वियप्पेण णिरवेक्खो ॥ न.च.वृ. १९२॥

अर्थ : गुण, गुणी और पर्याय – पर्यायी रूप ऐसे चार प्रकार के अर्थ में जो भेद नहीं करता है अर्थात् उन्हें एक रूप ही करता है वह भेद विकल्पों से निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

अथवा

भेद कल्पना निरपेक्षेणे तरेषां धर्माधर्माकाश जीवानां चा खण्डत्वादेक प्रदेशत्वम् ॥ (आ.प.सू. १६८)

अर्थ : भेद कल्पना निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से धर्म, अधर्म, आकाश और जीव इन चारों बहुप्रदेशी द्रव्यों के अखण्डता होने के कारण एकप्रदेशपना है।

(४) कर्मोपाधिसापेक्षोऽशुद्धो द्रव्यार्थिको यथा क्रोधादि कर्मज भाव आत्मा। (आ.प.सू. ५०)

अर्थ : कर्मजनित क्रोध आदि भाव ही आत्मा है ऐसा कहना कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

(५) उत्पादव्यय सापेक्षोऽशुद्ध द्रव्यार्थिको यथैकस्मिन समये द्रव्यमुत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मकम्। (आ.प.सू. ५१)

अर्थ : उत्पाद व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा द्रव्य एक समय में ही उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य रूप इस प्रकार त्रयात्मक है।

(६) भेद कल्पना सापेक्षोऽशुद्ध द्रव्यार्थिको यथात्मनो ज्ञान दर्शन ज्ञानादयो गुणाः। (आ.प.सू. ५२)

भेद कल्पना सापेक्षेण चतुर्णामपि नानाप्रदेश स्वभावत्वम् ।(आ.प. १६९)

अर्थ : भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा ज्ञान, दर्शन आदि आत्मा के गुण है। (ऐसा गुण गुणी में भेद होता है) तथा धर्म, अधर्म, आकाश और जीव ये चारों द्रव्य अनेक प्रदेश स्वभाव लक्षण वाले हैं।

(७) १. अन्वय सापेक्षो द्रव्यार्थिको यथा गुण पर्याय स्वभावं द्रव्यम्।

अन्वय द्रव्यार्थिकेवे नैकस्याप्यनेक स्वभावत्वम्।(आ.प. ५३, १५५)

अर्थ : अन्वय सापेक्ष द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा गुण पर्याय स्वरुप ही द्रव्य है और इसलिये इस नय की अपेक्षा एक द्रव्य के भी अनेक स्वभावीपना है। (जैसे जीव ज्ञानस्वरुपी है, दर्शन स्वरुपी है इत्यादि।)

२. निःशेष गुण पर्यायान् प्रत्येकं द्रव्यमब्रब्रीत्।

सोऽन्वयो निश्चयो हेम यथा सत्कटका दिषु ॥ (न.च.श्रु. ७)

अर्थ : जो सम्पूर्ण गुणों व पर्यायों में से प्रत्येक को द्रव्य बतलाता है, वह विद्यमान कड़े वगैरह में अनुबद्ध रहने वाले स्वर्ण की भांति अन्वय द्रव्यार्थिक नय है।

३. पूर्वोक्तोत्पादादि त्रयस्य तथैव स्वसंवेदन ज्ञानादि पर्याय त्रयस्य चानुगता कारेणान्वय रुपेण यदाधार भूतं तदन्वय द्रव्यं भण्यते, तद्विषयो यस्य स भवत्यन्वय द्रव्यार्थिक नयः।

(प्र.सा.त.प्र. १०१/१४०/११)

अर्थ : जो पूर्वोक्त उत्पादादि तीन का तथा स्वसंवेदन ज्ञान, दर्शन, चरित्र इन तीन गुणों का (उपलक्षण से सम्पूर्ण गुण व पर्यायों का) आधार है वह अन्वय द्रव्य कहलाता है वह जिसका प्रयोजन है, विषय है, वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है।

(८) स्वद्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिको यथा स्वद्रव्यादि चतुष्ट्यापेयोपक्षया द्रव्यमस्ति। (आ.प.सू. ५४)

अर्थ : स्व द्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल व स्व स्वभाव इस चतुष्टय से ही द्रव्य का अस्तित्त्व है। इन चारों रूप ही द्रव्य का अस्तित्त्व स्वभाव है।

(९) परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिको यथा परद्रव्यादि चतुष्ट्यापेक्षया द्रव्यं नास्ति। (आ.प.सू. ५५)

अर्थ : परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा परद्रव्य, परक्षेत्र, परकालऔर परभाव इस पर चतुष्टय से द्रव्य का नास्तित्त्व है। अर्थात् परचतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य का नास्तित्त्व स्वभाव है।

(१०) १. परमभावग्राहको द्रव्यार्थिको यथा - ज्ञान स्वरूप आत्मा। (आ.प.सू. ५६)

अर्थ : परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा आत्मा ज्ञान स्वभाव में स्थित है।

२. परम भावग्राहकेण भव्याभव्य पारिणामिक स्वभावः। ... कर्मनोकर्मणोरचेतन स्वभावः। ... कर्मनोकर्मणो मूर्त स्वभावः।... पुद्‌गलं विहाय इतरेषाममूर्त स्वभावः।...काल परमाणुनामेक प्रदेश स्वभावः। (आ.प.सू. १५८, १६१, १६३, १६५, १६७)

अर्थ : परम भाव ग्राहक नय से भव्य व अभव्य पारिणामिक स्वभावी है। कर्म व नोकर्म अचेतन स्वभावी है, कर्म व नोकर्म मूर्त स्वभावी है। पुद्‌गल के अतिरिक्त शेष द्रव्य अमूर्त स्वभावी हैं, काल व परमाणु एकप्रदेश स्वभावी हैं।

३. सर्वविशुद्ध पारिणामिक परम भाव ग्राहकेण शुद्धोपादान भूतेन शुद्ध द्रव्यार्थिक नयेन कर्तृत्व भोक्तृत्व मोक्षादि कारण परिणाम शून्यो जीव इति सूचितः। (स.सा.ता. वृ. ३२०/४०८/५)

अर्थ : सर्व विशुद्ध पारिणामिक परम भाव ग्राहक शुद्ध उपादान भूत शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से जीव कर्ता, भोक्ता, मोक्ष आदि के कारण रूप परिणामों से शून्य है।

४. यस्तु शुद्ध द्रव्य शक्ति रूपः शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण परम निश्चय मोक्षः स च पूर्वमेव जीवे तिष्ठतीदानीं भविष्यतीत्येवं न। (द्र.सं.टी. गा. ५७/२३६)

अर्थ : जो शुद्ध द्रव्य की शक्ति रूप पारिणामिक परम भाव रूप निश्चय मोक्ष है वह तो जीव में पहले ही विद्यमान है। वह अब प्रगट होगा, ऐसा नहीं है।

७०. शंका : पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

समाधान : (१) देखों (स. सि. १/६/२१/१)

पर्यायोऽर्थः प्रयोजनमस्येत्यसौ पर्यायार्थिकः।

अर्थ : पर्याय ही है अर्थ या प्रयोजन जिसका वो पर्यायार्थिक नय है।

(२) **द्रव्यपर्यायात्मके वस्तुनि.. पर्यायं मुख्यतयानुभावयतीति पर्यायार्थिकः।** (स.सा.आ.ख्या. १३)

अर्थ : द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु में पर्याय को ही मुख्य रूप से जो अनुभव करता है, सो पर्यायार्थिक नय है।

७१. शंका : पर्यायार्थिक नय को स्पष्ट कीजिए?

समाधान : देखों (न्या.दी. ३/८२/१२६) में कहा है कि -

द्रव्यार्थिकनयमुपसर्जनीकृत्य प्रवर्तमान पर्यायार्थिकनयमवलम्ब्य कुण्डलमानयेत्युक्ते न कटकादौ प्रवर्त्तते, कटकादि पर्यायात् कुण्डल-पर्यायस्य भिन्नत्वात्।

अर्थ : जब पर्यायार्थिक नय की विवक्षा होती है तब द्रव्यार्थिक नय को गौण करके प्रवृत्त होने वाले पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से 'कुण्डल लाओ' यह कहने पर लाने वाला कड़ा आदि के लाने में प्रवृत्त नहीं होता, क्योंकि कड़ा आदि पर्याय से कुण्डल पर्याय भिन्न है।

७२. शंका : पर्याय के पर्यायवाची नाम कौन कौन है?

समाधान : देखो (स.सि. १/३३/१४१/१) -

पर्यायो विशेषोऽपवादो व्यावृत्तिरित्यर्थः। तद्विषयः पर्यायार्थिकः।

अर्थ : पर्याय का अर्थ विशेष, अपवाद और व्यावृत्ति (भेद) है, और इसको विषय करने वाला नय पर्यायार्थिक नय है।

७३. शंका : क्या पर्यायार्थिक नय के भी दो भेद हैं?

समाधान : हाँ, शुद्ध पर्यायार्थिक तथा अशुद्ध पर्यायार्थिक नय के भेद से पर्यायार्थिक नय के भी दो भेद हैं।

७४. शंका : शुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं?

समाधान : देखो (आ.प.सू. १९४)

शुद्धपर्याय एवार्थः प्रयोजन मस्येति शुद्ध पर्यायार्थिकः।

अर्थ : शुद्ध पर्याय अर्थात् समय मात्र स्थायी षड्गुण हानि वृद्धि द्वारा उत्पन्न सूक्ष्म अर्थ पर्याय ही है प्रयोजन जिसका, वह शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

७५. शंका : अशुद्ध पर्यायार्थिक नय किसे कहते है?

समाधान : देखो (आ.प.सू. १९५)

अशुद्ध पर्याय एवार्थः प्रयोजन मस्येत्य शुद्ध पर्यायार्थिकः।

अर्थ : अशुद्ध पर्याय – अर्थात् चिरकाल स्थायी संयोगी व स्थूल व्यञ्जन पर्याय ही है प्रयोजन जिसका, वह अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

७६. शंका : क्या पर्यायार्थिक नय के और भी भेद हैं? यदि है तो स्पष्ट कीजिये?

समाधान : पर्यायार्थिक नय के छः और भी भेद हैं जैसे – देखे (न.च. श्रु. पृ. ६)

भरतादि क्षेत्राणि, हिमवदादि पर्वतः, पद्मादि सरोवराणि, सुदर्शनादि मेरुनगाः, लवण कालोदकादि समुद्राः, एतानि मध्यस्थितानि कृत्वा परिणता संख्यात द्वीप समुद्राः श्वभ्रपटलानि भवनवासि वाण व्यन्तर विमानानि चंद्रार्कमण्डलादि ज्योतिर्विमानानि सौधर्म कल्पादि स्वर्ग पटलानि यथायोग्य स्थाने परिणता कृत्रिम चैत्य चैत्यालयाः मोक्ष शिलाश्च वृहद् वातवलयाश्च इत्येव माद्यनेका श्चर्यरुपेण परिणत पुद्गल पर्यायाद्यनेक द्रव्य पर्यायैः सह परिणत लोक महास्कन्ध पर्यायाः त्रिकाल स्थिताः सन्तोऽनादि निधना इति अनादि नित्यं पर्यायार्थिक नयः ।

अर्थ : भरतादि क्षेत्र, हिमवन आदि पर्वत, पद्म आदि सरोवर, सुदर्शन आदि मेरु, लवण व कालोद आदि समुद्र इनको मध्यरुप या केन्द्र रुप करके स्थित असंख्यात द्वीप समुद्र, नरक पटल, भवनवासी व व्यन्तर देवों के विमान, चन्द्र व सूर्य मण्डल आदि ज्योतिषी देवों के विमान, सौधर्म कल्प आदि स्वर्गों के पटल, यथायोग्य स्थानों में परिणत अकृत्रिम चैत्य चैत्यालय,

मोक्ष शिला, वृहद् वातवलय तथा इन सबको आदि लेकर अन्य भी आश्चर्य रुप परिणत जो पुद्‌गल की पर्याय तथा उनके साथ परिणत लोक रुप महास्कन्ध पर्याय जो कि त्रिकाल स्थित रहते हुए अनादि निधन है, इनको विषय करने वाला अर्थात् इनकी सत्ता को स्वीकार करने वाला अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय है।

(२) शुद्धनिश्चय नय विवक्षामकृत्वा सकलकर्म क्षयोद्‌भूत चरम शरीराकार पर्याय परिणति रुप शुद्ध सिद्ध पर्यायः सादिनित्य पर्यायार्थिक नयः।

अर्थ : शुद्ध निश्चय नय को गौण करके सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से उत्पन्न तथा चरम शरीर के आकार रुप पर्याय से परिणत जो शुद्ध सिद्ध पर्याय है उसको विषय करने वाला अर्थात् उसको सत् समझने वाला, सादि नित्य पर्यायार्थिक नय है।

(३) अगुरुलघुकादि गुणाः स्वभावेन षड्‌हानि-षड्‌वृद्धि रुप क्षणभङ्ग पर्याय परिणतोऽपरिणत सद् द्रव्यानन्तगुण पर्याया संक्रमण दोष परिहारेण द्रव्यं नित्य स्वरुपेऽवतिष्ठमानमिति सत्ता सापेक्ष स्वभाव - नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नयः।

अर्थ : अगुरुलघु आदि गुण स्वभाव से ही षटगुणहानि - वृद्धि रुप क्षणभंग अर्थात् एक समयवर्ती पर्याय से परिणत हो रहे है, तो भी सत् द्रव्य के अनन्तों गुण और पर्यायें परस्पर संक्रमण न करके अपरिणत अर्थात् अपने - अपने स्वभाव में स्थित रहते है। द्रव्य को इस प्रकार का ग्रहण करने वाला नय सत्ता सापेक्ष स्वभावनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

(४) सद्‌गुण विवक्षाभावेन ध्रौव्योत्पत्ति व्ययाधीनतया द्रव्यं विनाशोत्पत्ति स्वरुपमिति सत्तानिरपेक्षोत्पाद व्यय ग्राहक स्वभावानित्याशुद्ध पर्यायार्थिक नयः।

अर्थ : पदार्थ में विद्यमान गुणों की अपेक्षा को मुख्य न करके उत्पाद - व्यय - ध्रौव्य के आधीनपने रुप से द्रव्य को विनाश व उत्पत्ति स्वरुप मानने वाला सत्तानिरपेक्ष या सत्तागौण उत्पाद व्यय ग्राहक स्वभाव अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

(५) चराचर पर्याय परिणत समस्त संसारी जीवनिकायेषु शुद्ध सिद्ध पर्याय विवक्षा भावेन कर्मोपाधि निरपेक्षविभाव नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नयः।

अर्थ : चराचर पर्याय परिणत संसारी जीवधारियों के समूह में शुद्ध सिद्ध पर्याय की विवक्षा से कर्मोपाधि से निरपेक्ष विभाव नित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

(यहाँ पर संसार रुप विभाव में भी यह नय नित्य शुद्ध सिद्ध पर्याय को जानने की विवक्षा रखते हुए संसारी जीव को भी सिद्ध सदृश बताता है इसी को आ.प. में कर्मोपाधि निरपेक्ष स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहा है।)

(६) शुद्ध पर्याय विवक्षा भावेन कर्मोपाधि संजनित नारकादि विभाव पर्यायाः जीव स्वरुपमिति कर्मोपाधि सापेक्ष विभावानित्याशुद्ध पर्यायार्थिक नयः।

अर्थ : जो शुद्ध पर्याय की विवक्षा न करके कर्मोपाधि से उत्पन्न हुई नारकादि विभाव पर्यायों को जीव स्वरूप बताता है वह कर्मोपाधि सापेक्ष विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है। (इसे आ.प. में कर्मोपाधि सापेक्ष स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय कहा है)

सम्यक्त्व रत्नान्नपरं हि रत्नं, सम्यक्त्व मित्रान्नपरं हि मित्रम्।
सम्यक्त्व बन्धोर्न परो हि बन्धुः, सम्यक्त्व लाभान्न परो हि लाभः ॥ सु.स. ७१५ ॥

अर्थ : सम्यक्त्व रुपी रत्न से बढ़कर दूसरा रत्न नहीं है, सम्यक्त्व रुपी मित्र से बढ़कर दूसरा मित्र नहीं है, सम्यक्त्व रुपी भाई से बढ़कर दूसरा भाई नहीं है और सम्यक्त्व से बढ़कर दूसरा लाभ नहीं है।

जिण वयण मोसहमिणं विसयसुह विरेयणं अभियभूयम्।
जर मरण वाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणां ॥ सु.स. २६ ॥

अर्थ : यह जिन वचन रुपी औषध विषय सुख का विरेचन करने वाली अमृत रुप है, जरा-मरण की व्याधि को हरने वाली है तथा सब दुःखों का क्षय करने वाली है।

७७. शंका : सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति कितने प्रकार से होती?

समाधान : देखो (त.सू. १/३)

तन्निसर्गादधि गमाद्वा।

अर्थ : वह सम्यग्दर्शन निसर्ग से अर्थात् परिणाम मात्र से और अधिगम से अर्थात् उपदेश के निमित्त से उत्पन्न होता है।

७८. शंका : क्या कार्योत्पत्ति में निमित्त और उपादान युगपत् पाये जाते है?

समाधान : हाँ, ये दोनों कारण युगपत् पाये जाते है।

७९. शंका : क्या इन्हें ही बाह्य और अंतरंग कारण कहते हैं?

समाधान : हाँ

८०. शंका : क्या इसे ही व्यवहार या निश्चय भी कह सकते है?

समाधान : आध्यात्मिक दृष्टि से ये दोनों कारण व्यवहार बाह्य कारण कहे जाते है। क्योंकि ये परद्रव्य सापेक्षी भाव है।

८१. शंका : परद्रव्य सापेक्षी भाव क्या निश्चय नहीं हो सकता है?

समाधान : आप नय के प्रकरण में देख चुके है कि निश्चय स्वद्रव्य में ही अभेद को विषय करने वाला होता है अतः वह आध्यात्मिक दृष्टि से परद्रव्य सापेक्षी नहीं होता है।

८२. शंका : ऐसा क्यों?

समाधान : परद्रव्य सापेक्षी होने से निर्विकल्प रुप नहीं होगा किन्तु सविकल्प हो जायेगा।

८३. शंका : क्या निमित्त उपादान को क्रमशः बहिरंग तथा अंतरंग निमित्त कह सकते है?

समाधान : हाँ, देखें (नि. सा. गा. ५३) में कहा है

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिण सुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतर हेऊ भणिदा दंसण मोहस्स खय पहुदि ॥

अर्थ : सम्यग्दर्शन का बाह्य निमित्त जिन सूत्र है अथवा जिनसूत्र के जानने वाले पुरुष हैं तथा आभ्यंतर निमित्त दर्शनमोह कर्म के क्षय, उपशम व क्षयोपशम को कहा है।

८४. शंका : क्या अंतरंग और बहिरंग कारण और प्रकार से भी है?

समाधान : हाँ, देखों (म.पु. ९/११६)

देशनाकाल लब्ध्यादि बाह्य कारण संपदि।
अंतःकरण समग्रयां भव्यात्मा स्याद् विशुद्ध दृक् ॥

अर्थ : जब देशना लब्धि और काल लब्धि आदि बहिरंग कारण तथा करण लब्धि रुप अंतरंग कारण रुप सामग्री की प्राप्ति होती है तभी यह भव्य प्राणी विशुद्ध सम्यग्दर्शन का धारक हो सकता है।

८५. शंका : क्या करण लब्धि निज हेतु है उसके होने पर ही दर्शन मोह का क्षय, उपशम या क्षयोपशम होता है?

समाधान : हाँ, देखों (न. च. वृ. गा. ३१५)

काऊण करण लद्धी, समगु भावस्स कुणइ जं गहणं।
उवसमखयमिस्सादो, पयडीणं तं पि णिय हेऊं ॥

अर्थ : जिस करण लब्धि को पाकर जीव सम्यक् भाव को तथा प्रकृतियों के उपशम, क्षय व क्षयोपशम को ग्रहण करता है वह करण लब्धि भी सम्यक्त्व में निज हेतु है।

८६. शंका : क्या सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि भी हेतु होते है?

समाधान : हाँ, देखों (श्लो. वा. अं. ३/१/३/११/८२/२२) में कहा है –

दर्शन मोहस्यापि संपन्नो जिनेन्द्र बिम्बादि द्रव्यं, समवशरणादि क्षेत्रं, कालश्चार्ध पुद्गल परिवर्तन विशेषादिर्भावश्चाधाप्रवृत्तिकरणादि रिति निश्चीयते। तदभावे तदुपशमादि प्रतिपत्तेः, अन्यथा तदभावात्।

अर्थ : दर्शनमोह के नाश में भी द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव हेतु होते हैं। वहाँ जिनेन्द्र बिम्बादि तो द्रव्य हैं, समवशरणादि क्षेत्र हैं। अर्द्धपुद्गल परिवर्तन विशेष काल है, अधः प्रवृत्ति करण आदि भाव हैं। उस मोहनीय कर्म का अभाव होने पर ही उपशमादि की प्रतिपत्ति होती है अर्थात् कहे जाते हैं। दूसरे प्रकार से उन उपशमादि के होने का अभाव है।

८७. शंका : "आदि" शब्द से और किन - किन बाह्य हेतुओं को ग्रहण करना चाहिये?

समाधान : (स. सि. २/३/१५३/६) में कहा है कि -

'आदि' शब्देन जाति स्मरणादिः परिगृह्यते।

अर्थ : "आदि" शब्द से जातिस्मरण आदि का ग्रहण होता है ये जातिस्मरण आदि बाह्य निमित्त हैं।

१. (न.च.वृ.गा. ३१६) में कहा है कि -

तित्थयर केवलि समण भव सुमरण सत्थ देव महिमा दी।

इच्चोवमाइबहुगा बाहिरहेऊ मुणेयव्वा॥

अर्थ : तीर्थंकर, केवली, श्रमण, भवस्मरण, शास्त्र, देव, महिमा आदि बहुत प्रकार के बाह्य हेतु मानना चाहिये।

८८. शंका : काल लब्धि ही सम्यग्दर्शन का मुख्य कारण माने तो क्या दोष आयेगा?

समाधान : (रा. वा. १/३/१०/२४/६) में कहा है कि -

यदि हि सर्वस्य कालो हेतुरिष्टः स्यात्, बाह्याभ्यंतर कारण नियमस्य दृष्टस्येष्टस्य वा विरोधः स्यात्।

अर्थ : यदि सबका काल ही कारण मान लिया जाये (अर्थात् केवल काल लब्धि से ही मुक्ति होना मान लिया जाये) तो बाह्य एवं आभ्यंतर कारण सामग्री का ही लोप हो जायेगा।

८९. शंका : जातिस्मरण आदि बाह्य कारण कौन - कौन से है?

समाधान : जिन बिम्ब दर्शन, धर्म श्रवण, जातिस्मरण, वेदना, अथवा देवर्द्धिदर्शन इस प्रकार जातिस्मरण आदि चार कारण हैं।

९०. शंका : किस गति में कौन - कौन से कारण पाये जाते हैं?

समाधान : १ से ३ नरक में - धर्म श्रवण, जातिस्मरण और वेदना ये ३, ४ से ७ नरक में जातिस्मरण और वेदना ये दो कारण पाये जाते हैं। भोग भूमिज तिर्यञ्चों में - जिनबिम्ब दर्शन, धर्म श्रवण, जाति स्मरणीय ये 3 कारण, कर्म भूमि तिर्यंचों में उपर्युक्त तीन और वेदना ये चार कारण पाये जाते हैं।

भोग भूमिज मनुष्यों में	– उपर्युक्त तीन कारण पाये जाते है
कर्म भूमिज मनुष्यों में	– उपर्युक्त चार कारण पाये जाते है
भवनवासी देवों में, व्यंतर, ज्योतिषी, सौधर्म सहस्त्रार तक में	– जिनबिम्ब दर्शन, धर्मश्रवण, जातिस्मरण, देवद्धिदर्शन ये चारों कारण पाये जाते है
आनतादि चार स्वर्गो में	– उपर्युक्त में से देवर्द्धि दर्शन के बिना ३
नवग्रैवेयक में	– जिनमहिमा दर्शन के बिना उपर्युक्त ३ कारण
अनुदिश व अनुत्तर	– एक भी कारण नहीं पाये जाते हैं क्योंकि ये देव सम्यदृष्टि ही होते हैं।

९१. **शंका : जातिस्मरण और जिनबिम्ब दर्शन क्या निसर्गज सम्यग्दर्शन है?**

समाधान : गइ सग्गियमवि पढम सम्मत्तं तच्चट्ठे उत्तं, तं हि एत्थेव दट्ठव्वं, जाइस्सरण जिणबिबं दसणेहि विणा । उप्पज्जमाणणइ सग्गिय पढम सम्मत्तस्स असंभवादो (ध.६/१/९, ९, ३०/४३०/९)

अर्थ : तत्त्वार्थ सूत्र में नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्व का भी कथन किया गया है, उसका भी पूर्वोक्त कारणों से उत्पन्न हुये सम्यक्त्व में ही अन्तर्भाव कर लेना चाहिये, क्योंकि जातिस्मरण और जिनबिम्ब दर्शन के बिना उत्पन्न होने वाला नैसर्गिक प्रथम सम्यक्त्व असंभव है।

९२. **शंका : देवर्द्धि दर्शन का जातिस्मरण में समावेश क्यों नहीं होता?**

समाधान : इस विषय को (ध.पु. ६/१, ९-९, ३७/४३३/५) में इस प्रकार कहा है कि –

देवर्द्धि दंसणं जाइसरणम्मि किण्ण पविसदि। ण पविसदि, अप्पणो अणिमादि रिद्धीओ दट्ठूण एदाओ रिद्धीओ जिण पण्णत्त धम्माणुट्ठाणादो जादाओ त्ति पढ़म सम्मत्त पडिवज्जणं जाइस्सरण णिमित्तं। सोहम्मिंदादि देवाणं महिद्धीओ दट्ठूण एदाओ सम्मद्दंसण संजुत्त संजम फलेण जादाओ, अह पुण सम्मत्त विरहिददव्वं संजम फलेण वाहणादिणीच च देवेसु उप्पणो त्ति णादूण पढम सम्मत्तग्गहणं देविद्धि दंसण णिबंधणं। तेण ण दोण्ह मेयत्त मिदि। किं च जाइस्सरण मुप्पण्ण पढम समयप्पहुडि अंतो

मुहुत्त कालब्भंतरे चेव होदि। देविद्धि दंसणं पुण कालंतरे चेव होदि, तेण ण दोण्हमेयत्तं। एसो अत्थो णेरइयाणं जाइस्सरण वेयणाभिभव णाणं पि वत्तव्वो।

अर्थ : प्र. देवर्द्धिदर्शन का जातिस्मरण में समावेश क्यों नहीं होता?

उत्तर :

(१) नहीं होता, क्योंकि अपनी अणिमादिक ऋद्धियों को देखकर जब (देवों को) ये विचार आते हैं- कि ये ऋद्धियाँ जिन भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म के अनुष्ठान से उत्पन्न हुई है तब प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति जातिस्मरण निमित्तक होती है।

किंतु जब सौधर्मेन्द्रादिक देवों की महाऋद्धियों को देखकर यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियाँ सम्यग्दर्शन से संयुक्त संयम के फल से प्राप्त हुई है। किंतु मैं सम्यग्दर्शन से रहित द्रव्य संयम के फल से वाहनादिक नीच देवों में उत्पन्न हुआ हूँ तब प्रथम सम्यक्त्व का ग्रहण देव ऋद्धि दर्शन निमित्तक है। इससे ये दोनों कारण एक नहीं हो सकते हैं।

(२) तथा जातिस्मरण उत्पन्न होने के प्रथम समय से लगाकर अंतर्मुहुर्त काल के भीतर ही होता है। किंतु देवर्द्धिदर्शन उत्पन्न होने के समय से अन्तर्मुहुर्त काल के पश्चात् ही होता है। इसलिये भी उन दोनों कारणों में एकत्व नहीं है।

(३) यही अर्थ नारकियों के जातिस्मरण और वेदनाभिभव रूप कारणों में विवेक के लिये भी कहना चाहिये।

९३. शंका : जिन बिम्ब दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण किस प्रकार से है?

समाधान : देखों (ध.पु. ६/१, ९-९, २२/४२७/९)

कथं जिणबिंब दंसणं पढम सम्मत्तुप्पतीए कारणं?

जिण बिंब दंसणेण णिधत्त णिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खय दंसणादो।

अर्थ : प्र.: जिनबिंब दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण किस प्रकार से है?

उत्तर : जिनबिम्ब के दर्शन से निघत्त और निकाचित रुप भी मिथ्यात्वादि कर्म कलाप का क्षय देखा जाता है।

९४. शंका : लद्धि संपण्ण रिसि दंसणं पि पढम सम्मत्तुप्पत्तीए कारणं होदि, तमेत्थ पुध किण्ण भण्णदे।

अर्थ : लब्धि सम्पन्न ऋषियों का दर्शन भी तो प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण होता है अतएव इस कारण को यहाँ पृथक् रुप से क्यों नहीं कहा?

समाधान : यह प्रश्न (ध.पु. ६, ९-९, ३०/४३०/६) में किया गया है वहीं इसका उत्तर इस प्रकार से दिया गया है।

ण एदस्स वि जिणबिम्ब दंसणो अंतब्भावादो । उज्जंत -चंपा - पावा णयरादि दंसणं वि एदेणे.... विणा पढम सम्मत्त गहणा भावा।

अर्थ : नहीं कहा, क्योंकि लब्धि सम्पन्न मुनियों के दर्शन का भी जिनबिम्ब दर्शन में ही अन्तर्भाव हो जाता है। ऊर्जयन्तपर्वत, चम्पापुर व पावापुर नगर आदि के दर्शन का भी जिनदर्शन के भीतर ग्रहण कर लेना चाहिये।

क्योंकि उक्त प्रदेशवर्ती जिनबिम्बों के दर्शन तथा जिन भगवान के निर्वाण गमन के कथन के बिना प्रथम सम्यक्त्व का ग्रहण नहीं हो सकता।

९५. शंका : नरकों में यदि जाति स्मरण को सम्यक्त्व का कारण माना जाये तो फिर सभी नारकियों को सम्यक्त्व होना चाहिए, क्योंकि वे सभी अपने विभंगावधि ज्ञान से १, २, ३ आदि भवों को स्मरण करते हैं?

समाधान : (ध.पु. ६/१, ९-९, ८/४२२/२) में इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार से दिया है यथा -

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सामान्य रूप से भव स्मरण के द्वारा सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती, किंतु धर्म बुद्धि से पूर्व में किये गए धर्मानुष्ठानों की विफलता के दर्शन अर्थात् स्मरण से ही प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण इष्ट है, जिससे पूर्वोक्त दोष प्राप्त नहीं होता।

और इस प्रकार की बुद्धि सभी नारकियों की होती नहीं है। क्योंकि तीव्र मिथ्यात्व के वशीभूत नारकी जीवों के पूर्व भवों का स्मरण होते हुए भी उक्त प्रकार के उपयोग का अभाव है इसलिये वहाँ जातिस्मरण ही प्रथम सम्यक्त्वोपत्ति का कारण है।

९६. शंका : वेदनानुभव भी सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वेदना अनुभव तो सब नारकियों के साधारण होता है। यदि वह अनुभव सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण हो तो सब नारकी जीव सम्यग्दृष्टि होंगे, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता है?

समाधान : पूर्वोक्त शंका का परिहार करते हैं। वेदना सामान्य सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण नहीं है, किंतु जिन जीवों के ऐसा उपयोग होता है कि अमुक वेदना अमुक मिथ्यात्व के कारण या असंयम से उत्पन्न हुई, उन्हीं जीवों की वेदना, सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण होती है। अन्य जीवों की वेदना नरकों में सम्यक्त्वोत्पत्ति का कारण नहीं होती, क्योंकि उसमें उक्त प्रकार के उपयोग का अभाव होता है।

९७. शंका : नारकी जीवों के धर्म श्रवण किस प्रकार संभव है, क्योंकि वहाँ तो ऋषियों के गमन का अभाव है?

समाधान :

(१) नहीं, क्योंकि, अपने पूर्व भव के सम्बन्धी जीवों के धर्म उत्पन्न कराने में प्रवृत्त और समस्त बाधाओं से रहित सम्यग्दृष्टि देवों का नरकों में गमन देखा जाता है।

(२) नीचे की चार पृथिवियों में धर्मश्रवण के द्वारा प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि वहाँ देवों के गमन का अभाव है।

९८. शंका : वहाँ ही विद्यमान सम्यग्दृष्टियों से धर्मश्रवण के द्वारा प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति क्यों नहीं होती।

समाधान : ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं कि नहीं होती, क्योंकि भव सम्बन्ध से या पूर्व वैर के संबंध से परस्पर विरोधी हुए नारकी जीवों के अनुगृह्य अनुग्राहक भाव होना असंभव है।

९९. शंका : जिन महिमा को देखकर भी कितने ही मनुष्य प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं इसलिए तीन के स्थान पर चार कारणों से मनुष्य, प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं, ऐसा कहना चाहिए?

समाधान :

(१) यह कोई दोष नहीं, क्योंकि जिनमहिमा दर्शन का जिन बिम्ब दर्शन में अन्तर्भाव हो जाता है।

(२) अथवा मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के आकाश में गमन करने की शक्ति न होने से उनके चतुर्विध देव निकायों के द्वारा किये जाने वाले नंदीश्वर द्वीपवर्ती जिनेंद्र प्रतिमाओं के महामहोत्सव का देखना संभव नहीं है, इसलिए उनके जिन महिमा दर्शन रूप कारण का अभाव है।

(३) किन्तु मेरू पर्वत पर किये जाने वाले जिनेंद्र महोत्सवों को विद्याधर मिथ्यादृष्टि देखते हैं, इसलिए उपर्युक्त अर्थ नहीं कहना चाहिए, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं, अतएव पूवोक्ति अर्थ ही ग्रहण करना चाहिए।

१००.शंका : जिनबिम्ब दर्शन को प्रथम सम्यक्त्व के कारण रूप से क्यों नहीं कहा?

समाधान :

(१) यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जिनबिम्ब दर्शन का जिन महिमा दर्शन में ही अन्तर्भाव हो जाता है। कारण, जिनबिम्ब के बिना जिनमहिमा की उत्पत्ति बनती नहीं है।

१०१.शंका : स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और परिनिष्क्रमण रूप जिन महिमाएँ जिनबिम्ब के बिना ही की गयी देखी जाती हैं, इसलिए जिन महिमा दर्शन में जिनबिम्ब दर्शन का अविनाभावीपना क्यों नहीं है?

समाधान : उत्तर :

(१) ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और परिनिष्क्रमण रूप जिन महिमाओं में भी भावी जिनबिम्ब का दर्शन पाया जाता है।

(२) अथवा इन महिमाओं में उत्पन्न होने वाला प्रथम सम्यक्त्व जिनबिम्ब दर्शन निमित्तिक नहीं है। किन्तु जिनगुण श्रवण निमित्तिक है।

१०२.शंका : यहाँ पर (आनतादि चार स्वर्गों में) देव ऋद्धि दर्शन सहित चार कारण क्यों नहीं कहे?

समाधान :

(१) आनत आदि चार कल्पों में महर्द्धि से संयुक्त ऊपर के देवों का आगमन नहीं होता, इसलिए वहाँ महर्द्धि दर्शन रूप प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण नहीं पाया जाता है।

(२) और उन्हीं कल्पों में स्थित देवों के महर्द्धि का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का निमित्त हो नहीं सकता है। क्योंकि उसी ऋद्धि को बार - बार देखने से विस्मय नहीं होता।

(३) अथवा उक्त कल्पों में शुक्ल लेश्या के सद्‍भाव के कारण महर्द्धि के दर्शन से उन्हें कोई संक्लेश भाव उत्पन्न नहीं होता।

(४) धर्मोपदेश सुनकर जो जाति स्मरण होता है और देवर्द्धि को देखकर जो जातिस्मरण होता है ये दोनों ही यद्यपि प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के निमित्त होते हैं। तथापि उनसे उत्पन्न सम्यक्त्व वहाँ (आनातादि में) जाति स्मरण निमित्तक नहीं माना गया है, क्योंकि यहाँ देवर्द्धि के दर्शन व धर्मोपदेश के श्रवण के पश्चात् ही उत्पन्न हुए जाति स्मरण का निमित्त प्राप्त हुआ है। अतएव यहाँ धर्मोपदेश श्रवण और देवर्द्धि दर्शन को ही निमित्त मानना चाहिए।

१०३.शंका : नव ग्रैवेयकों में महर्द्धि दर्शन नहीं है, क्योंकि यहाँ ऊपर के देवों के आगमन का अभाव है। यहाँ जिन महिमा दर्शन भी नहीं है क्योंकि ग्रैवेयक विमानवासी देव नन्दीश्वर आदि के महोत्सव देखने नहीं आते?

अथवा

ग्रैवेयक देव अपने विमान में रहते हुए ही अवधिज्ञान से जिन महिमाओं को देखते तो हैं, अतएव जिनमहिमा का दर्शन भी उनके सम्यक्त्व की उत्पत्ति में निमित्त होता है, ऐसा क्यों नहीं कहते?

समाधान : नहीं, क्योंकि ग्रैवेयक विमानवासी देव वीतरागी होते हैं अतएव जिनमहिमा के दर्शन से उन्हें विस्मय उत्पन्न नहीं होता है।

१०४.शंका : ग्रैवेयक विमानवासी देवों में धर्म श्रवण किस प्रकार संभव होता है?

समाधान : नहीं, क्योंकि उनमें परस्पर संलाप होने पर अहमिन्द्रत्व से विरोध नहीं आता।

१०५.शंका : सम्यग्दर्शन के कितने भेद है?

समाधान : देखें (र. सा.गा. ४)

सम्मत्त रयणसारं मोक्ख महारुक्ख मूल मिदि भणियं।

तं जाणिज्जइ णिच्छय ववहार सरुव दो भेदं ॥

अर्थ : सम्यग्दर्शन समस्त रत्नों में सारभूत रत्न है और मोक्षरुपी वृक्ष का मूल है, इसके निश्चय व व्यवहार ऐसे दो भेद जानना चाहिये।

१०६.शंका : व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

समाधान : व्यवहार सम्यग्दर्शन को मुख्य रुप से १० प्रकार के लक्षणों से जाना जा सकता है। यथा -

१. सच्चे देव, शास्त्र व गुरु तथा धर्म की श्रद्धा रुप से

२. आप्त आगम व तत्त्वों की श्रद्धा रुप से

३. तत्त्वार्थ या पदार्थों आदि की श्रद्धा रुप से

४. पदार्थों का विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान रुप से

५. यथावस्थित पदार्थों के श्रद्धान रुप से

६. तत्त्वों के हेयोपादेय रुप से

७. तत्त्व रुचि रुप से

८. सात प्रकृतियों के क्षय, क्षयोपशम व उपशम रुप से

९. सराग रुप से

१०. अरहंत की भक्ति रुप से

१०७.शंका : उपर्युक्त लक्षणों को स्पष्ट कीजिये?

समाधान :

(१) देव-शास्त्र-गुरु व धर्म की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन -

१. (मो.पा.गा. ९०) में देखें

हिंसा रहिए धम्मे अट्ठारह दोस वज्जिए देवे।

णिग्गंथे पावयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥

अर्थ : हिंसा रहित धर्म, १८ दोष रहित देव, निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग व गुरु इनमें श्रद्धा होना सम्यग्दर्शन हैं।

२. **श्रद्धानं परमार्थाना माप्तागम तपोभृताम्।**

त्रिमूढ़ा पोढ़मष्टाङ्गं सम्यग्दर्शन मस्मयम् ॥ र.क.श्रा. ४॥

अर्थ : सत्यार्थ देव, शास्त्र और गुरु इन तीनों का आठ अंग सहित, तीन मूढ़ता और आठ मद रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

३. **णिज्जिय दोसं देवं सव्व जिवाणं दयावरं धम्मं।**

वज्जिय गंथं च गुरुं जो मण्णदि सो दु सद्दिट्ठी ॥ का.अ. ३१७॥

अर्थ : जो वीतराग अरहंत को देव, दया को उत्कृष्ट धर्म और निर्ग्रन्थ को गुरु मानता है वही सम्यग्दृष्टि है।

(२) आप्त, आगम व तत्त्वों की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन -

१. **देखें** (नि.सा.गा. ५)

अत्तागम तच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।

अर्थ : आप्त, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा से सम्यक्त्व होता है।

(३) तत्त्वार्थ या पदार्थों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है -

१. **तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं** ।। त.सू., अ. १ सू. २।।

अर्थ : अपने - अपने स्वभाव में स्थित तत्त्वार्थ के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते है।

२. **भावा : खलु कालकलितपञ्चास्तिकायविकल्परुपा नव पदार्थाः।** (पं.का./त. प्र. टी. १०७)

अर्थ : काल सहित पंचास्तिकाय के भेद रुप नव पदार्थ वास्तव में भाव हैं उन भावों का श्रद्धान सो सम्यक्त्व है।

३. **छद दव्व णव पयत्था, पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।**

सद्दहइ ताण रुवं, सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥ द.पा.गा १९

अर्थ : छह द्रव्य, नव पदार्थ, पाँच अस्तिकाय, सप्त तत्त्व, ये जिन वचन में कहे गये हैं। इनके स्वरुप का जो श्रद्धान करता है वह सम्यग्दृष्टि है।

४. छप्पंचण वविहाणं अत्थाणं जिणवरो व इट्ठाणं।

आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥ पं.स./प्रा. १/१५९ ॥

अर्थ : जिनवरों के द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नौ पदार्थों का आज्ञा या अधिगम से श्रद्धान करना सम्यक्त्व है।

(४) पदार्थों का विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

मिथ्यात्वोदय जनित विपरीताभिनिवेश रहितं श्रद्धानं। केषां संबन्धि। पंचास्तिकाय षड्द्रव्य विकल्प रुपं जीवाजीव द्वयं जीव पुद्गल संयोग परिणामोत्पन्नास्त्रवादि पदार्थ सप्तकं चेत्युक्त लक्षणानां भावानां जीवादिनवपदार्थानां। इदं तु नवपदार्थ विषय भूतं व्यवहार सम्यक्त्वं।

(पं.का./ता.वृ. १०७/१६९/२८)

भावार्थ : मिथ्यात्वोदय जनित विपरीत अभिनिवेश रहित, पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य, जीवादि सात पदार्थ अथवा जीवादि नव पदार्थ, इनका जो श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है।

(५) यथावस्थित पदार्थों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है -

दव्वइं जाणइ जह ठियइं तह जगि मण्णइ जो जि।

अप्पइं केरउ भावडउ, अविचलु दंसणु सो जि ॥ प.प्र. २/१५ ॥

अर्थ : जो द्रव्यों को जैसा उनका स्वरुप है वैसा जाने और उसी तरह इस जगत में श्रद्धान करे, वही आत्मा का चल, मलिन, अवगाढ़ दोष रहित निश्चल भाव है। वही आत्मभाव सम्यग्दर्शन है।

(६) तत्त्वों में हेय व उपादेय बुद्धि सम्यग्दर्शन है -

सुत्तत्थं जिण भणियं जीवा जीवादि बहुविहं अत्थं।

हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥ सू.पा.गा. ५ ॥

अर्थ : सूत्र में जिनेन्द्र भगवान ने जीव अजीव आदि बहुत प्रकार के पदार्थ कहे हैं। उनको जो हेय और अहेय रुप से जानता है वह सम्यग्दृष्टि है।

(७) तत्त्व रुचि सम्यग्दर्शन है

तच्चरुई सम्मत्तं (मो.पा. ३८)

(८) सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय क्षयोपशम से सम्यग्दर्शन

(पं.का.ता.वृ. १५० - १५१) में कहा है कि -

सप्त प्रकृतिनामुपशमेन क्षायोपशमेन च सराग सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा पंचपरमेष्ठि भक्त्यादि रुपेण...।

अर्थ : सात प्रकृतियों के उपशम व क्षयोपशम से सराग सम्यग्दृष्टि होकर पंच परमेष्ठी की भक्ति आदि रुप से (परिणमित होता है)।

क्षीण प्रशान्त मिश्रासु मोह प्रकृतिषु क्रमात्।

ततुस्यात् द्रव्यादि सामग्रया पुंसां सद्दर्शनं त्रिधा ॥ ज्ञा. ६/७॥

अर्थ : मोह कर्म की (३ दर्शन मोह की और ४ अनंतानुबन्धी चारित्र मोह की) प्रकृतियों के क्षय, उपशम व क्षयोपशम रुप होने से क्रमशः तीन प्रकार का सम्यक्त्व होता है।

(९) सरागता के अर्थ में सम्यग्दृष्टि

देखें (द्र.सं.टी. ४१/१७७/१२)

शुद्ध जीवादि तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षणं सराग सम्यक्त्वाभिधानं व्यवहार सम्यक्त्वं विज्ञेयम्।

अर्थ : शुद्ध जीवादि तत्त्वार्थों का श्रद्धान रुप सराग सम्यक्त्व नामक व्यवहार सम्यक्त्व है ऐसा जानना चाहिये।

(१०) अरहंतो में भक्ति सम्यग्दर्शन है...

अरहंते सुह भत्ती समत्तं। (भा.पा.गा. ४०)

अर्थ : अरहंत में भक्ति सम्यग्दर्शन है।

१०८.शंका : प्रवचनसार तत्वप्रदीपिका गा. (८० के उत्थानिका) में कहा है कि.....

अथ चत्तापावारंभं...... इत्यादि सूत्रेण यदुक्तं शुद्धोपयोगाभावे मोहादि विनाशो न भवति, मोहादि विनाशाभावेन, शुद्धात्मलाभो न भवति तदर्थमेवेदानीमुपायं समालोचयति।

अर्थ : अब 'चत्तापावारंभं' इत्यादि ७९ वीं गाथा द्वारा जो कहा था कि शुद्धोपयोग के अभाव में मोहादि का विनाश नहीं होता है। और मोहादि के विनाश बिना शुद्धात्म लाभ नहीं होता, उसके लिये ही यहाँ उपाय का विचार करते हैं।

समाधान : उक्त शंका का समाधान "जो जाणदि अरहंतं" इत्यादि गाथा ८० की तात्पर्य वृत्ति में इस प्रकार से दिया गया है –

जो जाणदि अरहंतं ..... इत्थंभूतं द्रव्यगुणपर्यायस्वरुपं पूर्वमर्हदभिधाने परमात्मनि ज्ञात्वा पश्चान्निश्चयनयेन तदेवागमसारपदभूतयाऽध्यात्मभाषया निजशुद्धात्मभावनाभिमुखरूपेण सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञानेन तथैवागम भाषयाधः प्रवृत्ति करणापूर्व करणा निवृत्तिकरण संज्ञ दर्शन मोह क्षपपण समर्थ परिणाम विशेष बलेन पश्चादात्मनि योजयति। तदन्तरमविकल्प स्वरुप रूपे प्राप्ते यथा पर्याय स्थानीय मुक्ताफलानि गुणस्थानीयं धवलत्वं चाभेदनयेन हार एव, तथा पूर्वोक्त द्रव्य गुण पर्याया अभेदनयेनात्मैवेति भावयतो दर्शन मोहान्धकारः प्रलीयते इति भावार्थः।

अर्थ : "जो अरहंत को जानता है".......... इस प्रकार द्रव्य गुण पर्याय स्वरुप को पहले कहे हुये अरहंत नामक परमात्मा में जानकर, पश्चात् निश्चय नय से उसी आगम के सारभूत अध्यात्म भाषा द्वारा अपनी शुद्धात्म भावना के सन्मुख सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञान से उसी प्रकार आगम भाषा से अधः प्रवृत्तिकरण अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, नामक दर्शन मोह के क्षय में समर्थ परिणाम विशेष के बल से पश्चात् (अपने ज्ञान को) आत्मा में जोड़ता है। तदनंतर निर्विकल्प स्वरुप प्राप्त होने पर जैसे अभेद नय से पर्याय स्थानीय मुक्ताफल (मोती) और गुण स्थानीय धवलता (सफेदी) हार ही है। उसी प्रकार अभेद नय से पूर्वोक्त द्रव्य गुण पर्याय आत्मा ही है। इस प्रकार परिणमित होता हुआ (उसका) दर्शन मोह रूप अंधकार विनाश को प्राप्त हो जाता है यह भावार्थ हुआ।

१०९.शंका : क्या अध्यात्म भाषा में कथित "निज शुद्धात्म भावनाभिमुख रुप सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञान तथा आगम भाषा में कथित अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रुप परिणाम एक है?"

समाधान : दर्शनमोह के समय एक समान है शेष समय नहीं क्योंकि दर्शन मोह के क्षय में समर्थ अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणाम मात्र एक बार ही होते हैं किंतु (छट्ठें, सातवें – गुणस्थान के अनुरूप) निज शुद्धात्माभिमुख रुप सविकल्प रुप स्वसंवेदन अनेकों बार होता है।

११०.शंका : यह कैसे?

समाधान : दर्शन मोह की क्षपणा में एक बार के ही करण परिणामों से दर्शन मोह के क्षय के सन्मुख जीव दर्शन मोह का क्षय कर देता है। अतः एक बार दर्शन मोह के क्षय हो जाने के पश्चात् फिर पुनः तद्विषयक करण परिणाम नहीं होते हैं फिर चारित्र मोह की क्षपणा में क्षपक श्रेणी में ही करण परिणाम होते हैं।

१११.शंका : दर्शन मोह की क्षपणा विधि विषयक करण परिणाम तथा चारित्र मोह की क्षपणा विधि विषयक परिणाम क्या एक ही है?

समाधान : नाम से तो एक है किन्तु काम से एक नहीं है। दोनों के काम अलग–अलग है।

११२.शंका : दर्शन मोह की क्षपणा कौन करता है? मिथ्यादृष्टि या उपशम सम्यग्दृष्टि?

समाधान : दर्शन मोह की क्षपणा न मिथ्यादृष्टि करता है और न उपशम सम्यग्दृष्टि। अपितु क्षायोपशिक सम्यग्दृष्टि जीव करता है।

११३.शंका : दर्शन मोह की क्षपणा किन–किन गुणस्थानों में संभव है?

समाधान : दर्शन मोह की क्षपणा – ४, ५, ६, ७ गुणस्थानों में संभव है।

११४.शंका : प्रवचनसार गाथा ८० की तत्वप्रदीपिका में किस गुणस्थानवर्ती की मुख्यता से कथन है?

समाधान : यह अध्यात्म ग्रंथ है इसमें पाँचवें गुणस्थान से ऊपर के गुणस्थानवर्ती की प्रधानता से कथन है जैसा कि (स.सा./ता.वृ.गा २०१)–२०२ में कहा भी है कि .....

११५.शका : तो फिर यहाँ किस गुणस्थानवर्ती की प्रधानता है?

समाधान : यहाँ पर छट्ठे, सातवें गुणस्थानवर्ती मुनियों की ही प्रधानता है।

११६.शंका : ऐसे कैसे?

समाधान : क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन के धारी मुनि यदि क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं तो सर्वप्रथम द्रव्य गुण पर्याय स्वरुप को पहले कहे हुये अरहंत नामक परमात्मा में जानकर तदनंतर निश्चय से उसी आगम के सारभूत अध्यात्म भाषा से स्वशुद्धात्म भावना के सम्मुख रुप सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञान से, उसी प्रकार आगम भाषा से अधः प्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण नाम दर्शन मोह के क्षय में समर्थ परिणाम विशेष के बल से पश्चात् (अपने ज्ञान को) आत्मा में जोड़ता है। तदनन्तर (अप्रमत्तनामक सप्तम गुणस्थानवर्ती) निर्विकल्प स्वरूप प्राप्त होने पर जैसे अभेद नय से पर्याय स्थानीय मुक्ताफल (मोती) और गुणस्थानीय धवलता (सफेदी) हार ही है। उसी प्रकार अभेद नय से पूर्वोक्त द्रव्य गुण पर्याय आत्मा ही है। इस प्रकार परिणमित होता हुआ (उसका) दर्शन मोह रूप अंधकार विनाश को प्राप्त होता है।

चारित्रं निरगाराणां शूराणां शान्तचेतसाम्।
शिवं सुदुर्लभं सिद्धं सारं क्षुद्रभयावहम् ॥ सु.स.३४ ॥

अर्थ : जो शिव-आनंद रुप है, अत्यन्त दुर्लभ है, सिद्ध है, सारभूत है और क्षुद्र जीवों को भय उत्पन्न करने वाला है, ऐसा चारित्र शूरवीर तथा शान्तचित्त मुनियों के होता है।

श्रुतसुरगुरुभक्तिः सर्व भूतानुकम्पा, स्तवननियम दानेष्वस्ति यस्यानुरागः। मनसि न पर निंदात्विन्द्रियाणां प्रशान्तिः, कथित मिह हितज्ञैर्ध्यान मेवं हि धर्म्यम्॥ सु.स. ५५ ॥

अर्थ : देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति, सर्व जीवों पर दया, स्तुति, नियम तथा दान में अनुराग, मन में पर निन्दा का भाव नहीं आना तथा इन्द्रियों का शांत रहना ये सब जिसके है उसकी यह प्रवृत्ति हित के ज्ञाता पुरुषों के द्वारा धर्म ध्यान कही गयी है।

११७.शंका : निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

समाधान : निश्चय सम्यग्दर्शन अनेक अर्थों में वर्णित है यथा -

(१) ज्ञेय ज्ञायक अर्थ में (प्र.सा./त.प्र. गा. २४२)

ज्ञेय ज्ञातृ तत्त्व तथा प्रतीति लक्षणेन सम्यग्दर्शन पर्यायेण...

अर्थ : ज्ञेय और ज्ञाता इन दोनों की यथारूप प्रतीति सम्यग्दर्शन का लक्षण है।

(२) १. स्व-पर विभाग अर्थ में (स.सा./आ. ३१४ - ३१५)

स्व परयोर्विभाग दर्शनेन दर्शको भवति।

अर्थ : स्व व पर के विभाग दर्शन से दर्शक होता है।

२. तेषामेव भूतार्थेनाधिगतानां पदार्थानां शुद्धात्मनः सकाशात् भिन्नत्वेन सम्यग्वलोकनं निश्चय सम्यक्त्वं।

(स.सा./ता.वृ. १५५/२२०/११)

अर्थ : उन भूतार्थ रूप से, जाने गये जीवादि नौ पदार्थों का शुद्धात्मा से भिन्न करके सम्यक् अवलोकन करना निश्चय सम्यक्त्व है।

(३) शुद्धात्मा के उपादेय अर्थ में (स.सा./ता.वृ. ३८/७२/९)
शुद्धात्मैवोपादेय इति श्रद्धानं सम्यक्त्वम्।

अर्थ : शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसा श्रद्धान सम्यक्त्व है।

(४) रूचि अर्थ में -

१. विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे निजपरमात्मनि यद्रुचिरूपं सम्यग्दर्शनम्। (स.सा./ता. वृ. २/८/१०)

अर्थ : विशुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव रूप निज परमात्मा में रूचि रूप सम्यग्दर्शन है।

२. शुद्ध जीवास्तिकाय रूचिरूपस्य निश्चय सम्यक्त्व...

(पं.का./ता.वृ. १०७/१७०/९)

अर्थ : शुद्ध जीवास्तिकाय की रूचि निश्चय सम्यक्त्व है।

(५) अतीन्द्रिय सुख की रूचि रूप में -

रागादिभ्यो भिन्नोऽयं स्वात्मोत्थ सुख स्वभावः परमात्मेति भेद ज्ञानं, तथा स एव सर्वप्रकारोपादेय इति रूचि रूपं सम्यक्त्वं।

अर्थ : रागादि से भिन्न यह जो स्वात्मा से उत्पन्न सुख रूप स्वभाव है वही परमात्म तत्त्व है। वही परमात्म तत्त्व सर्व प्रकार उपादेय है ऐसी रुचि सम्यक्त्व है।

(६) शुद्धोपयोग की भावना अर्थ में -

शुद्धोपयोग लक्षण निश्चय रत्नत्रय भावनोत्पन्न परमाल्हादैक रूप सुखामृत रसास्वादनमेवोपादेयमिन्द्रिय सुखादिकं च हेयमिति रूचि रूपं वीतराग - चारित्राविनाभूतं वीतराग सम्यक्त्वाभिधानं निश्चय सम्यक्त्वं च ज्ञातव्यमिति। (द्र.सं.टी. ४१/१७८/२)

अर्थ : शुद्धोपयोग रूप निश्चय रत्नत्रय की भावना से उत्पन्न परमाल्हाद रूप सुखामृत रस का आस्वादन ही उपादेय है, इन्द्रिय जन्य सुखादिक हेय है ऐसी रूचि तथा जो वीतराग चारित्र के बिना नहीं होता है ऐसा जो वीतराग सम्यक्त्व है वही निश्चय सम्यक्त्व है, ऐसा जानना चाहिए।

(७) मैं वीतराग सुख स्वभावमय हूँ इस अर्थ में -

रागादिविकल्पोपाधि रहित चिच्चमत्कार भावनोत्पन्न मधुर रसास्वाद सुखोऽहमिति निश्चय रूपं सम्यग्दर्शन् ॥

(द्र.सं.टी. ४०/१६३/१०)

अर्थ : रागादि विकल्प रहित चित् चमत्कार भावना से उत्पन्न मधुर रस के आस्वाद रूप सुख का धारक मैं हूँ। इस प्रकार निश्चय रूप सम्यग्दर्शन है।

(८) सर्वनय पक्ष से रहित समयसार अर्थ में -

सम्मद्दंसण णाणं एदं लहदित्ति णवरि ववदेसं।
सव्व णय पक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥ (स.सा. १४४)

अर्थ : जो सर्व नयापेक्षों से रहित कहा गया है वह समयसार है, इसी समयसार की सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान संज्ञा है।

११८.शंका : वीतराग चारित्र के अविनाभावीभूत निश्चय सम्यग्दृष्टि साधु ही होते हैं, ऐसा कोई प्रमाण है?

समाधान : हाँ, देखिये (मो.पा.गा. १४)

सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण।

सम्मत्त परिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठ कम्माणि ॥

अर्थ : जो साधु अपनी आत्मा में लीन हैं, वे सम्यग्दृष्टि हैं। वे सम्यक्त्व भाव से युक्त होते हुए अष्ट कर्मों का क्षय करते हैं।

११९.शंका : प्रशमादि की प्रकटता को ही सम्यक्त्व क्यों नहीं कहते हो?

समाधान : प्रशम संवेगानुपास्तिक्याभिव्यक्ति लक्षणं सम्यक्त्वम्। सत्येव असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानाभावः स्यादिति चेत्सत्यमेतत शुद्धनये समाश्रीयमाणे। (ध.पु. १/१, १, ४/१५१/२)

अर्थ : प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य की प्रकटता ही जिसका लक्षण है उसको सम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न : इस प्रकार सम्यक्त्व का लक्षण मान लेने पर असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान का अभाव हो जायेगा?

उत्तर : यह कहना शुद्ध निश्चय नय के आश्रय करने पर ही सत्य कहा जा सकता है।

अथवा - तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। यस्य गमनिकोच्यते आप्तागमपदार्थ-स्तत्त्वार्थस्तेषु श्रद्धान मनुरक्तता सम्यग्दर्शन मिति लक्ष्य निर्देशः। कथं पौरस्तेयेन लक्षणेनास्य न विरोधश्चेन्नैष दोषः शुद्धाशुद्ध समाश्रयणात्।

अथवा तत्त्वरूचि सम्यक्त्वम् अशुद्धतर नय समाश्रयणात्। (ध.पु. १/१, १, ४)

अर्थ : अथवा तत्त्वार्थ के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं इसके अर्थ यह है कि आप्त, आगम और पदार्थ को तत्त्वार्थ कहते हैं। और इनके विषय में श्रद्धान अर्थात् अनुरक्ति करने को सम्यग्दर्शन कहते हैं। यहाँ पर सम्यग्दर्शन लक्ष्य है और आप्त, आगम और पदार्थ का श्रद्धान लक्षण है।

प्रश्न : पहिले कहे हुए (प्रशमादि की अभिव्यक्ति रूप) सम्यक्त्व के लक्षण के साथ इस लक्षण का विरोध क्यों न माना जाये?

उत्तर : यह कोई दोष नहीं है क्योंकि शुद्ध और अशुद्ध नय की अपेक्षा से ये दोनों लक्षण कहे गये हैं। अर्थात् पूर्वोक्त लक्षण शुद्ध नय की अपेक्षा से है और यह तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप लक्षण अशुद्ध नय की अपेक्षा से है।

अथवा तत्त्वरूचि को सम्यक्त्व कहते हैं। यह लक्षण अशुद्धतर नय की अपेक्षा से जानना चाहिए।

१२०.शंका : क्या निश्चय सम्यक्त्व का कथन भी दो प्रकार से है?

समाधान : हाँ, देखिये (प. प्र. टी. २/१७/१३२/८)

अत्राह प्रभाकर भट्टः। निजशुद्धात्मैवोपादेय इति रूचि रूपं निश्चय सम्यक्त्वं भवतीति बहुधा व्याख्यातं पूर्व भवद्भिः इदानीं पुनः वीतराग चारित्राविनाभूतं निश्चय सम्यक्त्वं व्याख्यातमिति पूर्वापरविरोधः कस्मादिति चेत् निजशुद्धात्मैवोपादेय इति रूचि रूपं निश्चय सम्यक्त्व गृहस्थावस्थायां तीर्थंकर परम देव भरत सगर राम पाण्डवादीनां विद्यते, न च तेषां वीतराग चारित्रमस्तीति परस्पर विरोधः, अस्ति चेत्तर्हि तेषामसंयतत्वं कथमिति पूर्वपक्षः। तत्र परिहार माह। तेषां शुद्धात्मोपादेय भावना रूपं निश्चय सम्यक्त्वं विद्यते परं किंतु चारित्रमोहोदयेन स्थिरता नास्ति व्रत प्रतिज्ञा भङ्गो भवतीति तेन कारणेनासंयत वा भण्यन्ते।

शुद्धात्म भावना च्युताः सन्तः भरतादयो... शुभराग योगात् सराग सम्यग्दृष्टयो भवन्ति। या पुनस्तेषां सम्यक्त्वस्य निश्चयसम्यक्त्वसंज्ञा-वीतरागचारित्राविनाभूतस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य परंपरया साधकत्वादिति। वस्तुवृत्या तु तत्सम्यक्त्वं सराग सम्यक्त्वाख्यं व्यवहार सम्यक्त्वमेवेति भावार्थ :।

अर्थ : प्रश्न : यहाँ प्रभाकर भट्टारक पूछता है कि निज शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी रूचि रूप निश्चय सम्यक्त्व होता है। ऐसा कई बार पहिले आपने कहा और अब वीतराग चारित्र का अविनाभावी निश्चय सम्यक्त्व है, ऐसा कह रहे हैं। दोनों में पूर्वापर विरोध है। वह ऐसे कि निज शुद्धात्म तत्त्व ही उपादेय है ऐसा रुचि रूप निश्चय सम्यक्त्व गृहस्थ अवस्था में तीर्थंकर परमदेव

तथा भरत, सगर, राम, पांडव आदि को रहता है परन्तु उनको वीतराग चारित्र नहीं होता, इसलिए परस्पर विरोध है। यदि होता है ऐसा माने तो उनके असंयतपना कैसे हो सकता है?

उत्तर : उनके शुद्धात्मा के उपादेयता की भावना रूप निश्चय सम्यक्त्व रहता है किन्तु चारित्र मोह के उदय के कारण स्थिरता नहीं है, व्रत की प्रतिज्ञा भंग हो जाती है, इस कारण उनको असंयत कहा है। शुद्धात्म भावना से च्युत होकर शुभ राग के योग से वे सराग सम्यग्दृष्टि होते हैं। उनके सम्यक्त्व को जो निश्चय सम्यक्त्व कहा गया है उसका कारण यह है कि वह वीतराग चारित्र के अविनाभूत निश्चय सम्यक्त्व का परंपरा साधन है। वस्तुतः तो वह सम्यक्त्व भी सराग सम्यक्त्व नाम वाला व्यवहार सम्यक्त्व ही है।

१२१.शंका : यहाँ पर चतुर्थ, पंचम गुणस्थानवर्ती को तो निश्चय सम्यग्दर्शन माना है? स्पष्ट उल्लेख है कि -

"निज शुद्धात्मैवोपादेय इति रूचि रूपं निश्चयसम्यक्त्वं गृहस्थावस्थायां तीर्थंकरपरमदेवभरतसगररामपाण्डवादीनां विद्यते"

(प.प्र. २/१७/१३२)

अर्थ : निज शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी रूचि रूप निश्चय सम्यक्त्व गृहस्थावस्था में तीर्थंकर परमदेव, भरत, सगर, राम पाण्डव आदि को होता है। तो फिर यह कैसे?

समाधान : आपने उक्त ग्रंथ के इस प्रकरण को पढ़ा जरूर, किन्तु अधूरा पढ़ा, पूरा नहीं पढ़ा, अन्यथा प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि आगे कहा है कि -

या पुनस्तेषां सम्यक्त्वस्य निश्चयसम्यक्त्वसंज्ञावीतरागचारित्रविनाभूतस्य निश्चय सम्यक्त्वस्य परंपरया साधकत्वादिति। (प.प्र. २/१७/१३३)

अर्थ : उनके (तीर्थंकर, सगर, रामादि के गृहस्थावस्था में) सम्यक्त्व की जो निश्चय संज्ञा है वह वीतराग चारित्र के अविनाभावी रूप निश्चय सम्यक्त्व का परंपरा से साधक है।

१२२.शंका : दोनों प्रकार के निश्चय सम्यक्त्व को पुनः स्पष्ट कीजिए?

समाधान : ध्यान दीजिए –

१. साधन रूप निश्चय सम्यग्दर्शन, जिसमें वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है।

२. साध्य रूप निश्चय सम्यक्त्व, जो वीतराग चारित्र के अविनाभावी होता है।

१२३.शंका : साधन रूप निश्चय सम्यक्त्व में क्या वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है, किन्तु हमने तो ऐसा सुना है कि उसे अनंतानुबंधी चार के अभाव में स्वरूपाचरण चारित्र पाया जाता है?

समाधान : आपने भले ही सुना हो, पर जैनाचार्य प्रणीत आगम में उसे स्वरूपाचरण नहीं किंतु सम्यक्त्वाचरण चारित्र माना है।

यथा देखो – (चा.पा.गा. ७ – ८)

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंच्छा अमूढदिट्ठी य।

उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा य ते अट्ठ ॥७॥

अर्थ : निःशंकित, निःकाक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ सम्यक्त्व के गुण हैं।

तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाय।

जं चरइ णाणजुत्तं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ॥८॥

अर्थ : निःशंकितादि गुणों से विशुद्ध वह सम्यक्त्व ही जिन – सम्यक्त्व कहलाता है तथा जिन–सम्यक्त्व ही उत्तम मोक्ष रूप स्थान की प्राप्ति के लिये निमित्तभूत है। ज्ञान सहित जिन–सम्यक्त्व का जो मुनि आचरण करते हैं वह पहला सम्यक्त्व – चरण नामक चारित्र है।

१२४.शंका : स्वरूपाचरण चारित्र में तथा सम्यक्त्वाचरण चारित्र में क्या अंतर है?

समाधान : सम्यक्त्वाचरण चारित्र को तो आप ऊपर देख ही चुके हैं अतः स्वरूपाचरण चारित्र को भी समझें।

१२५.शंका : स्वरूपाचरण चरित्र किसे कहते हैं?

समाधान : देखें – (प्र.सा./त.प्र.गा. ७)

स्वरूपेचरणं चारित्रं स्व समय प्रवृत्तिरित्यर्थः।

अर्थ : स्वरूप में चरण करना चारित्र है, स्वसमय में प्रवृत्ति करना इसका अर्थ है।

१२६.शंका : स्वसमय में प्रवृत्ति, इसका अर्थ है? स्वसमय किसे कहते हैं?

समाधान : स्वसमय को निम्न प्रकार से समझना चाहिए –

१. **परमप्पा सगसमयं** (र.सा.गा. १४०)

परमात्मा स्वसमय है।

२. **आद सहावम्मिठिदा ते सगसमया मुणेदव्वा** (प्र.सा.गा. ९४)

अर्थ : जो आत्म स्वभाव में लीन हैं वे स्वसमय जानना चाहिये

३. **जीवो चरित्त दंसण णाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण** ॥ (स.सा.गा. २)

अर्थ : हे भव्य ! जो जीव दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित है वह निश्चय से स्वसमय जानो।

इस प्रकार स्वसमय में प्रवृत्ति करना ही स्वरूपाचरण चारित्र है।

१२७.शंका : उपर्युक्त प्रकार से आत्म स्वरूप में लीन कौन होता है?

समाधान : निर्ग्रंथ मुनि/योगी ही आत्म स्वरूप में लीन होकर निर्वाण को प्राप्त करते हैं। देखें – (मो.पा. गा. ८३)

णिच्छय णयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।

सो होदि हु सुचरित्तो जोइ सो लहइ णिव्वाणं ॥

अर्थ : जो आत्मा, आत्मा ही विषै आप ही के अर्थि भले प्रकार रत होय है। सो योगि ध्यानी मुनि सम्यक् चारित्रवान भया संता निर्वाण कूं पावे है।

उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह है कि अविरत व देशव्रत गुणस्थान में स्वरूपाचरण / वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है।

१२८.शंका : ऐसा आप कैसे कहते हो कि उसे (गृहस्थ को) वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है?

समाधान : देखों, वीतराग चारित्र साध्य है और सराग चारित्र साधन है तो साधन स्वरूप सराग चारित्र के द्वारा ही वीतराग चारित्र प्राप्त होता है, तभी तो सराग चारित्र साधन कहलायेगा। कहा भी है – (द्र.सं.टी. गा. ४५, पृ. १९४)

वीतराग – चारित्रस्य साधकं सराग चारित्रं...।

अर्थ : वीतराग चारित्र का साधक सराग चारित्र है।

अथवा

व्यवहार चारित्रेण साध्यं निश्चय चारित्रं। (द्र.सं.गा. ४६) उत्थानिका

अर्थ : व्यवहार चारित्र द्वारा निश्चय चारित्र साध्य है।

१२९.शंका : तो फिर सराग चारित्र किसे कहते हैं?

समाधान : देखें (न.च.वृ.गा. ३३४)

मूलुत्तर समणण्गुणा धारण कहणं च पंच आयारो।

सो ही तहव सुणिट्ठा सराय चरिया हवइ एवं ॥

अर्थ : श्रमण जो मूल व उत्तरगुणों को धारण करता है तथा पंचाचारों का कथन करता है और आठ प्रकार की शुद्धियों में निष्ठ रहता है, वह उसका सराग चारित्र है।

१३०.शंका : सराग चारित्र के पर्यायवाची नाम कौन – कौन से हैं?

समाधान:अपवादो व्यवहारनय एकदेश परित्या गस्तथा चापहृत संयमः

सराग चारित्रं शुभोपयोग इति यावदेकार्थः।

(प्र.सा.त.प्र. २३०/३१५/१०)

अर्थ : अपवाद मार्ग,. व्यवहार नय या व्यवहार चारित्र, एकदेश परित्याग, अपहृत संयम, सराग चारित्र या शुभोपयोग ये सभी एकार्थवाची हैं।

१३१.शंका : अनंतानुबंधी एवं अप्रत्याख्यान संबंधी राग के अभाव में पंचम गुणस्थानवर्ती को उतने अंश में तो वीतरागता आती ही है तो उसे वीतराग चारित्र कहने में क्या बाधा है?

समाधान : यह बात सत्य है कि जितने -जितने अंश में राग नष्ट होता है उतने -उतने अंश में वीतरागता आती है किंतु उसे वीतराग चारित्र नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि (प.प्र.गा. २/१७/१३२) में कहा है कि -

निज शुद्धात्मोपादेय इति रूचि रूपम् निश्चय सम्यक्त्वम्'' गृहस्थावस्थायां तीर्थंकर परमदेव भरत सगर राम पाण्डवादिनां विद्यते न च तेषां वीतराग चारित्रम् ...।

अर्थात् निज शुद्धात्मा उपादेय है ऐसी रूचि रूप निश्चय सम्यक्त्व है जो गृहस्थ अवस्था में तीर्थंकर परमदेव, भरत, सगर, पाण्डवादियों को पाया जाता है किन्तु उनको वीतराग चारित्र नहीं पाया जाता है।

१३२.शंका : वीतराग चारित्र के पर्यायवाची नाम क्या - क्या हैं?

समाधान : शुद्धात्मनः सकाशादन्यद्बाह्याभ्यंतर परिग्रह रूपं सर्व त्याज्य मित्युत्सर्गो निश्चय नयः, सर्व परित्यागः परमोपेक्षासंयमो वीतराग चारित्रं शुद्धोपयोग इति यावदेकार्थः। (प्र.सा./त.प्र./२३०/३१५/८)

अर्थ : शुद्धात्मा के अतिरिक्त अन्य बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह रूप पदार्थों का त्याग करना उत्सर्ग मार्ग है। उसे ही निश्चय नय, सर्व परित्याग, परमोपेक्षा संयम, वीतराग चारित्र व शुद्धोपयोग कहते हैं। ये सभी एकार्थवाची हैं।

अपकर्तर्यपि सन्तः शुभानि कर्माणि कर्तुमीहन्ते।

धिक्तं पुरुषं सदोपकर्तरि यो योजयत्यशुभम् ॥ सु.स. ९४१॥

अर्थ : सज्जन मनुष्य, अपकार करने वाले का भी भला करने की चेष्टा करते हैं। उस पुरुष को धिक्कार है कि जो सदा उपकार करने वाले का भी बुरा करता है।

१३३.शंका : निश्चय ज्ञान किसे कहते हैं?

समाधान : (द्र. सं.टी.गा. ४२/१५४/४) पर कहा है कि -

"निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानमेव निश्चय ज्ञानं भण्यते।"

अर्थ : निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान ही निश्चय ज्ञान है।

१३४.शंका : स्वसंवेदन ज्ञान किसे कहते है? कब और कैसा होता है?

समाधान : इस शंका के समाधान को (प.प्र. २/२९/१४९/२) देखें-

"निश्चयनयेन पुनर्वीतराग निर्विकल्प समाधिकाले बहिरुपयोगो यद्यप्यनी हितवृत्त्या निरस्तस्तथापीहापूर्वके विकल्पाभावाद् गौणत्वमिति कृत्वा स्वसंवेदन ज्ञानमेव ज्ञानमुच्यते।

अर्थ : निश्चय नय से वीतरागनिर्विकल्प समाधि के समय यहाँ ही अनीहित दृष्टि से उपयोग में से बाह्यपदार्थों का निराकरण किया जाता है। फिर भी इच्छापूर्वक विकल्पों का अभाव होने से गौण करके स्वसंवेदन ज्ञान को ही ज्ञान कहते है।

१३५.शंका : स्वसंवेदन ज्ञान क्या सराग भी होता है?

समाधान : हाँ, देखें (प.प्र. टी.गा.१२) में कहा है कि -

स्वसंवेदन ज्ञाने वीतराग विशेषणं किमर्थमिति पूर्व पक्षः । परिहार माह विषयानुभवस्वरूप स्वसंवेदन ज्ञानं सरागमपि दृश्यते तन्निषेधार्थमित्यभिप्रायः।

अर्थ : प्रश्न - स्वसंवेदन ज्ञान में वीतराग विशेषण किस लिये जोड़ा है?

उत्तर : क्योंकि, विषयानुभव रूप स्वसंवेदन ज्ञान तो सरागियों में भी देखा जाता है। अतः उसके निषेध के लिये किया है कि निर्विकल्प ध्यान में स्थित मुनिजनों को उस काल में वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान ही होता है। सराग स्वसंवेदन ज्ञान नहीं । (विशेष देखें नं. २३१, २३२ शंका समाधान में)

१३६.शंका : वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान में आत्मा किस प्रकार से प्रत्यक्ष होता है उदाहरण सहित समझाइये?

समाधान : देखे (प्र.सा. त.प्र. ३३ पृ. ४७)

यथा कोऽपि देवदत्त आदित्योदयेन दिवसे पश्यति रात्रौ किमपि प्रदीपेनेति। तथादित्योदयस्थानीयेन केवलज्ञानेन दिवस स्थानीय मोक्षपर्यायै भगवानात्मानं पश्यति। संसारी विवेकि जनः पुनर्निशास्थानीय संसार पर्यायै प्रदीप स्थानीयेन रागादि विकल्प रहित परम समाधिना निजात्मानं पश्यतीति।

अर्थ : जैसे कोई देवदत्त सूर्योदय के द्वारा दिन में देखता है और दीपक के द्वारा रात्रि में कुछ देखता है उसी प्रकार मोक्ष पर्याय में भगवान, आत्मा को केवल ज्ञान के द्वारा देखते है। संसारी विवेकी जन संसार पर्याय में रागादि विकल्प रहित समाधि के द्वारा निजात्मा को देखते है।

१३७.शंका : स्वसंवेदन ज्ञान रूप से आत्मग्राहक भाव श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष है या परोक्ष?

समाधान : देखिये **(प्र.सा. त.प्र. ९९ पृ. १५९)**

स्वसंवेदन ज्ञान रुपेन यदात्म ग्राहकं भावश्रुतं तत्प्रत्यक्षं।

अर्थ : स्वसंवेदन ज्ञान रूप से आत्मग्राहक भाव श्रुतज्ञान हैं वह प्रत्यक्ष है।

१३८.शंका : ''आद्ये परोक्षं'' सूत्र के अनुसार भाव श्रुतज्ञान तो परोक्ष है उसे आप प्रत्यक्ष कैसे कहते है?

समाधान : देखिये **(स.सा./ता.वृ. / १९०)** में कहा है कि -

यद्यपि केवल ज्ञानापेक्षया रागादि विकल्प रहितं स्वसंवेदन रूपं भाव श्रुतज्ञानं शुद्धनिश्चयनयेन परोक्षं भण्यते, तथापि इन्द्रिय मनोजनित सविकल्प ज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षम्। तेन कारणेन आत्मा स्वसंवेदन ज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षो भवति केवलज्ञानापेक्षया पुनः परोक्षोऽपि भवति। सर्वथा परोक्ष एवेति वक्तुं नायाति। किंतु चतुर्थ कालेऽपि केवलिनः किमात्मानं हस्ते गृहीत्वा दर्शयन्ति तेऽपि दिव्यध्वनिना भणित्वा गच्छन्ति। तथापि श्रवण काले श्रोतणां परोक्ष एव पश्चात् परम समाधि काले प्रत्यक्षो भवति। तथा इदानीं कालेऽपीति भावार्थः।

अर्थ : यद्यपि केवल ज्ञान की अपेक्षा रागादि विकल्प रहित वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन रूप भावश्रुतज्ञान शुद्ध निश्चय से परोक्ष कहा जाता है तथापि इन्द्रिय मनोजनित सविकल्प ज्ञान की अपेक्षा प्रत्यक्ष है इस प्रकार आत्मा स्वसंवेदन ज्ञान की अपेक्षा प्रत्यक्ष होता हुआ भी केवलज्ञान की अपेक्षा से परोक्ष है। सर्वथा परोक्ष ही है ऐसा कहना नहीं बनता।

चतुर्थ काल में क्या केवली भगवान आत्मा को हाथ में लेकर दिखाते है। वे भी तो दिव्यध्वनि के द्वारा कह कर चले जाते है। फिरभी सुनने के समय श्रोता के लिए जो परोक्ष है वही पीछे परम समाधि काल में प्रत्यक्ष होता है। इसी प्रकार वर्तमान में भी समझना चाहिए।

१३९.शंका : क्या आगम भाषा में कहा गया परोक्ष भाव श्रुतज्ञान ही न्याय / तर्क की भाषा में साम्व्यवहारिक प्रत्यक्ष है। तथा वही स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है?

समाधान : आगम भाषा में जिसे परोक्ष भाव श्रुतज्ञान कहा है उसे ही न्याय की भाषा में सांव्यवहारिक स्वसंवेदन प्रत्यक्ष कहते है किन्तु आध्यात्मिक भावश्रुतज्ञान या स्वसंवेदन इससे अलग है। निश्चय भावश्रुतज्ञान, शुद्धात्माभिमुख (परिणाम), स्वसंवित्ति, निर्विकल्प समाधि ही आत्मा शब्द से कही जाती है तथा वह वीतराग चारित्र के अविनाभाविभूत केवलज्ञान की अपेक्षा परोक्ष फिर भी छद्मस्थों की अपेक्षा प्रत्यक्ष कही जाती है।

१४०.शंका : आगम भाषा तथा आध्यात्मिक भाषा में कथित स्वसंवेदन या भाव श्रुतज्ञान में क्या अंतर है?

समाधान : हाँ, देखो (द्र. सं. टी. गा. ५ पृ. १३ पं. ९) में कहा है कि-

निश्चय भावश्रुतज्ञानं तच्च शुद्धात्माभिमुख स्वसंवित्ति स्वरूपं स्व संवित्त्याकारेण सविकल्पमपीन्द्रियमनोजनितरागादि विकल्प जालरहितत्वेन निर्विकल्पम्। अभेद नयेन तदेवात्म शब्द वाच्यं वीतरागसम्यक् चारित्र विनाभूतं केवलज्ञानापेक्षया परोक्षमपि संसारिणां क्षायिकज्ञानाभावात् क्षायोपशमिक मपिप्रत्यक्षमभिधीयते।

अर्थ : जो निश्चय भावश्रुतज्ञान है वह शुद्धात्माभिमुख स्वसंवित्ति स्वरूप है। परंतु इन्द्रिय मनोजनित रागादि विकल्प जाल से रहित होने के कारण निर्विकल्प है। अभेद नय से वही ज्ञान आत्मा शब्द से कहा जाता है। तथा वह वीतराग सम्यग्चारित्र के बिना नहीं होता है। वह ज्ञान यद्यपि केवलज्ञान की अपेक्षा परोक्ष है। तथापि संसारियों को क्षायिक ज्ञान की प्राप्ति न होने से क्षायोपशमिक होने पर प्रत्यक्ष कहलाता है।

१४१.शंका : निश्चय भावश्रुतज्ञान क्या शुद्धात्माभिमुख परिणाम है?

समाधान : हाँ, उपर्युक्त प्रमाण देखें। (शंका नं. १४०)

१४२.शंका : निश्चय भावश्रुतज्ञान क्या स्वसंवित्ति है?

समाधान : हाँ, उपर्युक्त प्रमाण से ही समझे। (शंका नं. १४०)

१४३.शंका : निश्चय भावश्रुतज्ञान क्या वीतराग निर्विकल्प समाधि का नाम है?

समाधान : हाँ, निश्चय भावश्रुतज्ञान निर्विकल्प समाधि है।

(विशेष देखें शंका समाधान नं. १०९ से ११६ में)

१४४.शंका : अभेद नय यह कौन सा नय है?

समाधान : देखिये (आ. प. सू. २१६) में कहा है कि -

"तत्र निश्चयनयोऽभेद विषयो..."

अर्थात् उन नयों में निश्चय नय अभेद विषयक है इस कारण उसे अभेद नय भी कहते है।

१४५.शंका : अभेदनय से क्या भावश्रुतज्ञान को आत्मा कह सकते है?

समाधान : हाँ, निश्चय नय से भावश्रुतज्ञान और आत्मा एक ही है अतः उसे आत्मा कह सकते है।

१४६.शंका : तो क्या द्रव्यश्रुतज्ञान आत्मा नहीं है?

समाधान : नहीं, द्रव्यश्रुतज्ञान आत्मा से भिन्न है फिर भी भावश्रुतज्ञान में कारण है

१४७.शंका : द्रव्य श्रुतज्ञान तथा भाव श्रुतज्ञान के स्वरूप को एक बार पुनःसमझाइये?

समाधान : देखिये (गो.सा.जी.का.जी.प्र.टी. ३४८/७४४/१५)

अंगबाह्य सामायिकादि चतुर्दश प्रकीर्णक भेद द्रव्य भावात्मक श्रुतं पुद्‌गल द्रव्य रूपं वर्ण पदवाक्यात्मकं द्रव्यश्रुतं...।

अर्थ : आचारादि अंग तथा सामायिक आदि १४ प्रकीर्णक अंगबाह्य है यह सब द्रव्यभावात्मक श्रुत है उसमें से पुद्‌गल द्रव्य रूप वर्ण (अक्षर) पद वाक्यात्मक श्रुत है वह द्रव्य श्रुतज्ञान है। (विशेष देखें शंका समाधान नं. २२३ से २२७ में।)

१४८.शंका : तो फिर द्रव्य श्रुतज्ञान को श्रुतज्ञान क्यों कहा?

समाधान : द्रव्य श्रुतज्ञान भावश्रुतज्ञान का कारण है देखिये

(१) गो.जी.प्र. ३४८/७४४/१५ पर

तच्छ्रूवण समुत्पन्न श्रुतज्ञान पर्याय रूपं भावश्रुतं।

अर्थ : द्रव्यश्रुत के सुनने से उत्पन्न श्रुतज्ञान पर्याय रूप भावश्रुतज्ञान है।

(२) और भी देखिये (न.च.प्रा.क्षे.गा. २८७)

दव्व सुयादो भावं तत्तो भेयं हवेइ संवेदं।

तत्तो संवित्ती खलु केवल णाणं हवे तत्तो ॥

अर्थ : द्रव्य श्रुत के अभ्यास से भावश्रुत होता है और उससे बाह्याभ्यंतर संवेदन होता है उस संवेदन से शुद्धात्मा की संवित्ति होती है तथा शुद्धात्म संवित्ति से केवलज्ञान होता है।

१४९.शंका : तो द्रव्य रूप व्यवहार श्रुतज्ञान कितने प्रकार का है।

समाधान : द्रव्य रुप व्यवहार श्रुतज्ञान दो प्रकार का है देखिये – (द्र. सं. टी. गा. ४२/१४४/११)

सप्त तत्त्व, नव पदार्थेषु मध्ये निश्चय नयेन स्वकीय शुद्धात्म द्रव्यं.....। उपादेयः शेषं च हेयमिति संक्षेपेण हेयोपादेय भेदेन द्विधा व्यवहारज्ञानमिति।

अर्थ : सात तत्त्व, नव पदार्थों में निश्चय नय सेअपना शुद्धात्म द्रव्य ही उपादेय है इसके सिवाय शुद्ध अशुद्ध पर जीव अजीव आदि सभी हेय हैं। इस प्रकार संक्षेप से हेय तथा उपादेय भेदों से व्यवहार ज्ञान दो प्रकार का है।

१५०.शंका : व्यवहार रुप श्रुतज्ञान क्या विकल्प रुप होता है तथा उससे किस साध्य की सिद्धि होती है?

समाधान : देखिये (पं.का.ता.वृ. गा. ४३/८६)

विकल्प रूप व्यवहार ज्ञानेन साध्यम् निश्चय ज्ञानम्।

अर्थ : विकल्प रूप द्रव्य या व्यवहार श्रुतज्ञान है इससे साध्य रूप/निश्चय रूप भावश्रुतज्ञान होता है।

१५१.शंका : भाव श्रुतज्ञान क्या अभेद रत्नत्रयात्मक होता है और आदेय है तो फिर व्यवहार श्रुतज्ञान क्या है?

समाधान : देखिये (पं. का.ता. वृ. गा. ४३ पृ. ८६)

अभेदरत्नत्रयात्मकं यद्भावश्रुतं तदेवोपादेयभूतपरमात्मतत्त्व साधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरंग तु व्यवहारेणेति तात्पर्यम्।

अर्थ : अभेदरत्नत्रयात्मक जो भावश्रुतज्ञान है वही उपादेय है और उसका साधक बहिरंग श्रुतज्ञान व्यवहार से उपादेय है ऐसा तात्पर्य है।

१५२.शंका : तो व्यवहार द्रव्य श्रुतज्ञान भी उपादेय है?

समाधान : हाँ, निश्चय के साधक रूप बहिरंग द्रव्य श्रुतज्ञान भी व्यवहार नय से उपादेय है।

१५३.शंका : व्यवहार रुप द्रव्य या बहिरंग श्रुतज्ञान कब तक आदेय है।

समाधान : व्यवहार रुप द्रव्य या बहिरंग श्रुतज्ञान तभी तक उपादेय है जब तक वीतराग चारित्र के अविनाभावी निश्चय या अंतरंग भावश्रुतज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता है।

१५४.शंका : इसी का नाम क्या तत्त्वोपलब्धि है।

समाधान : हाँ, निश्चय वीतराग सम्यग्दर्शन की उपलब्धि निज तत्त्वोपलब्धि के बिना नहीं होती ।

देखिये (र. सा. गा. ८६) में कहा भी है कि

णियतच्चुवलद्धि विणा सम्मत्तुव लद्धि णत्थि णियमेण।

सम्मत्तुवलद्धि विणा णिव्वाणं णत्थि णियमेण ॥

अर्थ : निज तत्त्वोपलब्धि के बिना (निश्चय) सम्यक्त्व की उपलब्धि नियम से नहीं होती और (निश्चय)सम्यक्त्व की उपलब्धि के बिना निर्वाण नहीं होता।

१५५.शंका : आपने यहाँ निश्चय सम्यक्त्व ऐसा अर्थ कैसे किया?

समाधान : अगर ऐसा नहीं करते तो मिथ्यादृष्टि को भी आत्मोपलब्धि का प्रसंग आ जाता।

१५६.शंका : ऐसे कैसे?

समाधान : बिना सम्यक्त्व के उपलब्धि को किसमें गर्भित करते मिथ्यात्व में ही तो।

१५७.शंका : यदि युगपत् मानें तो?

समाधान : तब तो घटित हो ही जायेगा अर्थात् अभेदरत्नत्रय युगपत् होता है अत: जिन्हें अभेदरत्नत्रय पाया जाता है उन्हें आत्मोपलब्धि भी एक साथ पायी जाती है इसीलिये हमने उपरोक्त समाधान में निश्चय या वीतराग यह विशेषण जोड़ा।

१५८.शंका : उपलब्धि किसे कहते है?

समाधान : देखिये (सि. वि. वृ. १/२/८/१४)

उपलभ्यते अनया वस्तुतत्त्वमिति उपलब्धिः अर्थादापन्ना तदाकारा च बुद्धिः।

अर्थ : जिसके द्वारा वस्तु तत्त्व उपलब्ध किया जाता है या ग्रहण किया जाता है वह उपलब्धि है,पदार्थ से उत्पन्न होने वाली तदाकार परणत बुद्धि उपलब्धि है।

इसी बात का खुलासा (पं.का.त.प्र.गा. ३९) में कहा है

चेतयन्ते अनुभवन्ति उपलभन्ते विन्दंतीत्येकार्याश्चेतनानुभूत्युत्युपलब्धि वेदनानामेकार्थत्वात्।

अर्थ : चेतता है, अनुभव करता है, उपलब्ध करता है और वेदता है, ये एकार्थ है, क्योंकि चेतना, अनुभूति, उपलब्धि और वेदना एकार्थक है।

१५९.शंका : उपलिब्ध किस कर्म के क्षयोपशम से होती है?

समाधान : (पं.का. ता.वृ. ४३/२६/९) में कहा है कि -

मतिज्ञानावरणीय क्षयोपशम जनितार्थ ग्रहण शक्ति रूप लब्धिः।

अर्थ : मति ज्ञानावरणीय (कर्म) के क्षयोपशम से उत्पन्न अर्थ ग्रहण करने की शक्ति रुप लब्धि को ही उपलब्धि कहते है।

१६०.शंका : अंतरंग में श्रुतज्ञान के क्षयोपशम के बिना क्या द्रव्य श्रुतज्ञान हो सकता है?

समाधान : श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के बिना तो बहिरंग श्रुतज्ञान भी नहीं हो सकता है। अतः आध्यात्मिक भाषा में श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम को भी बहिरंग द्रव्य श्रुतज्ञान ही जानता है।

१६१.शंका : ऐसा क्यों कहते हो?

समाधान : क्योंकि क्षयोपशम रूप श्रुतज्ञान तो मिथ्यादृष्टि को भी पाया जाता है।

१६२.शंका : मिथ्यादृष्टि को श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम नहीं पाया जाता है उसे तो कुश्रुतज्ञानावरण कहना चाहिए ?

समाधान : ध्यान रखिये ज्ञानावरण कर्म के पांच ही भेद कहे हैं उसमें सम्यक् या मिथ्या के भेद नहीं हैं देखिये (त.सू. अ.८/सू.६)

मतिश्रुतावधिमनः पर्यय केवलानाम् ।

ज्ञानावरण कर्म के पांच भेद हैं मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ।

१६३.शंका : 'विपर्ययश्च' यह सूत्र भी तो कहा है?

समाधान : यह सूत्र ज्ञान के विषय में कहा है कि ज्ञान मिथ्या भी होते है।

१६४.शंका : यदि ज्ञान मिथ्या है हो फिर उसके आवारक कर्म भी मिथ्या होना चाहिए?

समाधान : अगर ऐसा माना जाएगा तो फिर ज्ञानावरण कर्म के पाँच भेद नहीं आठ भेद हो जायेंगे।

१६५.शंका : हो जाने दो?

समाधान : तो फिर आगम तथा जिनदेव के वचन गलत ठहरेंगे, फिर उनका सम्यग्ज्ञान भी गलत होगा, क्योंकि सम्यग्ज्ञान वस्तु को न्यूनाधिकता से रहित जानता है । देखिये (र. क. श्रा.गा.४२) में कहा भी है कि -

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसंदेहं वेद य, दाहुस्तज्ज्ञान मागमिनः ।।४२।।

अर्थ : जो ज्ञान, वस्तु के स्वरूप को न्यूनता रहित, अधिकता रहित, विपरीतता रहित और संदेह रहित, जैसा का तैसा जानता है उस ज्ञान को आगम के ज्ञाता (श्रुतकेवली) सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

१६६.शंका : तो फिर ज्ञान आठ और ज्ञानावरण कर्म के पांच भेद क्यों कहे?

समाधान : मति, श्रुत आदि ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टि को समान रुप से होने पर भी सम्यग्दृष्टि का ज्ञान मति, श्रुत आदि रूप है और मिथ्यादृष्टि का ज्ञान कुमति, कुश्रुत रूप है। अज्ञान भाव है।

१६७.शंका : ऐसे कैसे?

समाधान : सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से परमार्थ को सिद्ध करता है जब कि मिथ्यादृष्टि संसार की सिद्धि करता है संसार वर्धक कार्यों में ही निरंतर संलग्न रहता है।

१६८.शंका : जैसे आप ज्ञान में मिथ्यापना या सम्यक्पना कहते है वैसा ज्ञानावरण में भी क्यों नहीं कहते है?

समाधान : जो आगम में है वही तो हम कहेंगे, आगम से बाहर का या आगम विरुद्ध तो नहीं कहेंगे ।

१६९.शंका : क्या वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान मात्र मुनियों को ही होता है?

समाधान : हाँ, मात्र अभेद निश्चय वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थित मुनियों को ही होता है कहा भी है (त.अ.गा. १६१) में

वेद्यत्त्वं वेदकत्वं च यत् स्वस्य स्वेन योगिनः।

तत्स्व संवेदनं प्राहुरात्मनोऽनुभवं दृशम् ॥

अर्थ : स्वसंवेदन, आत्मा के उस साक्षात् दर्शन रुप अनुभव का नाम है। जिसमें योगि अपने ही द्वारा अपनी आत्मा का ज्ञेय तथा ज्ञायक भाव को प्राप्त होता है।

और भी देखिये (स.सा.गा. ३८२ क. २२३)

रागद्वेषविभावमुक्तमहसो नित्यं स्वभावस्पृशः,

पूर्वगामिसमस्तकर्मविकला भिन्नास्तदात्वोदयात्।

दूरारूढ़चरित्रिवैभवबलाच्चञ्चच्चिदर्चिर्मयीं,

विंदन्ति स्वरसाभिषिक्त भुवनां ज्ञानस्य संचेतनाम्॥

अर्थ : जिनका तेज राग-द्वेष रूपी विभाव से रहित है, जो सदा स्वभाव को स्पर्श करने वाले हैं, जो भूतकाल के तथा भविष्य काल के समस्त कर्मों से रहित है और जो वर्तमान काल के कर्मोदय से भिन्न है, वे ज्ञानी अति प्रबल चारित्र के वैभव के बल से ज्ञान की संचेतना का अनुभव करते है जो ज्ञान चेतना चमकती हुई चैतन्य ज्योतिमय है और जिसने अपने रस से समस्त लोक को सींचा है। (विशेष देखें २२८ से २४० शंका समाधान में)

१७०. शंका : वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान के पर्यायवाची नाम कौन कौन से है?

समाधान : भावश्रुतज्ञान, निश्चयश्रुतज्ञान, वीतराग स्वसंवेदन, वीतराग, निर्विकल्प स्वसंवेदन, अभेदरत्नत्रय आत्मग्राहक भावश्रुतज्ञान, निश्चयज्ञान, शुद्धात्माभिमुख, स्वसंवित्ति, आत्मानुभव (त.अ. १६१) चेतना, अनुभूति, उपलब्धि, वेदना (**चेतनानुभूत्युत्युपसलब्धिवेदनानामेकार्थत्त्वात्**) (पं.का./ता.वृ. ३९/७९)

१७१. शंका : स्वसंवेदन रूप भावश्रुतज्ञान, केवलज्ञान सदृश कैसे है?

समाधान : स्वसंवेदनज्ञानरूपेण यदात्मग्राहकं भावश्रुतं तत्प्रत्यक्षं यत्पुनर्द्वादशाङ्ग चतुर्दशपूर्व रूप परमागम संज्ञं तच्च मूर्तामूर्तोभय परिच्छित्ति विषये व्याप्ति ज्ञान रूपेण परोक्षमपि केवलज्ञान सदृश मित्यभिप्रायः। (पं.का./ता.वृ./९९/१५९)

अर्थ : स्वसंवेदन ज्ञान रूप से आत्मग्राहक भावश्रुतज्ञान है वह प्रत्यक्ष हैऔर जो बारह अंग, चौदह पूर्व रुप परमागम नाम वाला ज्ञान है वह मूर्त, अमूर्त व उभय रूप अर्थों के जानने के विषय में अनुमान ज्ञान के रूप में परोक्ष होता हुआ भी केवलज्ञान सदृश है।

१७२.शंका : शब्दात्मक श्रुतज्ञान क्या परोक्ष ही है?

समाधान : हाँ, देखिये **(वृ. द्र. सं. टी. ५/१६/१)**

शब्दात्मकं श्रुतज्ञानं परोक्षमेव तावत् स्वर्गापिवर्गादि बहिर्विषय परिच्छित्ति परिज्ञानंविकल्प रूपं तदपि परोक्षं।

अर्थ : श्रुतज्ञान के भेदों में शब्दात्मक श्रुतज्ञान तो परोक्ष ही है और स्वर्ग, मोक्ष आदि बाह्य विषयों की परिच्छित्ति (ज्ञान) रूप विकल्पात्मक ज्ञान भी परोक्ष ही है।

१७३.शंका : मैं अनंतज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ ऐसा विचार करना प्रत्यक्ष श्रुतज्ञान है या परोक्ष?

समाधान : देखिये **(वृ. द्र. सं. टी. गा. ५)**

यत्पुनरभ्यन्तरे सुखदुःखविकल्परुपोऽहमनंतज्ञानादिरूपोऽहमिति वा तदीषत्परोक्षम्।

अर्थ : यह जो आभ्यंतर में सुख, दुःख के विकल्प रूप या "अनंत ज्ञानादि रूप मैं हूँ" ऐसा ज्ञान होता है वह ईषत् परोक्ष है।

१७४.शंका : तो फिर वीतराग चरित्र के अविनाभावी निश्चय भावश्रुत-ज्ञान/स्वसंवित्ति सविकल्प है या निर्विकल्प? प्रत्यक्ष है या परोक्ष?

समाधान : देखें **(वृ. द्र. सं. टी. गा. ५)**

यच्च निश्चय भावश्रुतज्ञानं तच्च शुद्धात्माभिमुखसुखसंवित्तिस्वरूपं स्वसंवित्त्याकारेण सविकल्पमपीन्द्रिय मनोजनितरागादिविकल्पजाल रहितत्वेन निर्विकल्पम्। अभेदनयेनतदेवात्मशब्दवाच्यं वीतरागं सम्यक् चारित्राविनाभूतं केवलज्ञानापेक्षया परोक्षमपि संसारिणां क्षायिक ज्ञानाभावात् क्षायोपशमिकमपि प्रत्यक्षमभिधीयते।

अर्थ : परन्तु जो निश्चय भाव श्रुतज्ञान है वह शुद्धात्माभिमुख (परिणाम) स्वसंवित्ति स्वरूप है। यह यद्यपि संवित्ति के आकार रूप से सविकल्प है परंतु इन्द्रिय मनोजनित रागादि विकल्प जाल से रहित होने के कारण निर्विकल्प है। वह ज्ञान यद्यपि केवलज्ञान की अपेक्षा से परोक्ष है, तथापि संसारियों को क्षायिक ज्ञान की प्राप्ति न होने से क्षायोपशमिक होने पर भी "प्रत्यक्ष" कहलाता है।

१७५.शंका : संवित्ति के आकार का क्या अर्थ है?

समाधान : देखें (वृ.न.च.गा. ३५१)

लक्खण दो णियलक्खे अणुहवमाणस्स जं हवे सोक्खं।

सा संवित्ती भणिया सयल वियप्पाण णिद्दहणा ॥

अर्थ : निजात्मा के लक्ष्य से सकल विकल्पों को दग्ध करने पर जो सौख्य होता है उसे संवित्ति कहते हैं।

१७६.शंका : तत्त्वार्थ सूत्र में श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है फिर वह प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है?

समाधान : देखिये वही (वृ. द्र. सं.टी.गा. ५) इसी प्रकार प्रश्न उत्पन्न कर समाधान दिया गया है।

अत्राह शिष्यः आद्ये परोक्षमिति तत्त्वार्थसूत्रे मतिश्रुतद्वयं परोक्षं भणितं तिष्ठति कथं प्रत्यक्षं भवतीति। परिहारमाह - तदुत्सर्गव्याख्यानम्, इदं पुनरपवाद व्याख्यानम्।

अर्थ : प्र. 'आद्ये परोक्षम्' इस प्रकार तत्त्वार्थ सूत्र में मति और श्रुत इन दोनों ज्ञानों को परोक्ष कहा है फिर श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है?

उत्तर : तत्त्वार्थ सूत्र में उत्सर्ग व्याख्यान की अपेक्षा कहा है और यहाँ अपवाद व्याख्यान की अपेक्षा कहा गया है।

१७७.शंका : उत्सर्ग व्याख्यान किसे कहते हैं?

समाधान :

(१) देखिये (द.पा.टी.गा. २४)

सामान्योक्तौ विधिरुत्सर्गो।

अर्थ : सामान्य रूप से कही जाने वाली विधि को उत्सर्ग कहते हैं।

(२) (स.सि. १/३३/१४०/९) में कहा है कि -

द्रव्यं सामान्यमुत्सर्गः अनुवृत्तिरित्यर्थः।

अर्थ : द्रव्य का अर्थ सामान्य, उत्सर्ग और अनुवृत्ति है उसका विषय करने वाला नय द्रव्यार्थिक नय है।

१७८.शंका : श्रुतज्ञान, उत्सर्ग व्याख्यान की अपेक्षा परोक्ष, तो अपवाद व्याख्यान की अपेक्षा प्रत्यक्ष कैसे है, स्पष्ट कीजिए?

समाधान : (वृ. द्र. सं. टी. गा. ५) में ही –

यदि तदुत्सर्ग व्याख्यानं न भवति तर्हि मतिज्ञानं कथं तत्त्वार्थे परोक्षं भणितं तिष्ठति। तर्क शास्त्रे सांव्यवहारिकं प्रत्यक्षं कथं जातम्। यथा अपवाद व्याख्यानेन मतिज्ञानं परोक्षमपि प्रत्यक्ष ज्ञानं तथा स्वात्माभिमुख भावश्रुतज्ञानमपि परोक्षं सत्प्रत्यक्षं भण्यते। यदि पुनरेकान्तेन परोक्ष भवति तर्हि, सुखदुःखादिसंवेदनमपि परोक्षं प्राप्नोति, न च तथा।

अर्थ : यदि तत्त्वार्थ सूत्र में उत्सर्ग का व्याख्यान न होता तो फिर तत्त्वार्थ सूत्र में मतिज्ञान परोक्ष कैसे कहा जाता? और यदि सूत्र के अनुसार वह सर्वथा परोक्ष ही होता, तो तर्क शास्त्र में सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कैसे हुआ? इसलिए जैसे अपवाद व्याख्यान से परोक्ष रूप भी मतिज्ञान को, प्रत्यक्ष कहा जाता है उसी प्रकार स्वात्माभिमुख भाव श्रुतज्ञान भी परोक्ष होनें पर भी सत् सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा जाता है।

यदि एकान्त से मति, श्रुत दोनों (ज्ञान) परोक्ष ही हो तो सुख-दुःख आदि का जो संवेदन होता है वह भी परोक्ष ही होगा। किन्तु वह स्वसंवेदन परोक्ष नहीं है।

१७९.शंका : आध्यात्मिक दृष्टि से मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान किसे कब उपादेय है?

समाधान : देखिये (पं. का. ता. वृ. गा. ४३)

निर्विकार शुद्धात्मानुभूत्यभिमुखं यत् मतिज्ञानं तदेवोपादेयभूतानन्त सुख साधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरङ्गं पुनर्व्यवहारेणेति तात्पर्यम्। ... अभेद रत्नत्रयात्मकं यद्भाव श्रुतं तदेवोपादेयभूत परमात्म तत्त्व साधकत्वान् निश्चयेनोपादेयं, तत्साधकं बहिरङ्गं तु व्यवहारेणेति तात्पर्यम्।

अर्थ : निर्विकार शुद्धात्मानुभूति के अभिमुख जो मतिज्ञान है वही उपादेयभूत अनन्त सुख का साधक होने से निश्चय से उपादेय है और उसका साधक बहिरंग मतिज्ञान व्यवहार से उपादेय है ऐसा तात्पर्य है।

इसी प्रकार अभेद रत्नत्रयात्मक जो भावश्रुतज्ञान है वही उपादेयभूत परमात्म तत्त्व का साधक होने से निश्चय से उपादेय है और उसका साधक बहिरंग श्रुतज्ञान व्यवहार से उपादेय है ऐसा तात्पर्य है।

१८०.शंका : स्वसंवेदन के साथ आप 'वीतराग' विशेषण क्यों जोड़ते हो, क्या सरागियों को भी स्वसंवेदन होता है?

समाधान : हाँ, देखिये इस प्रश्न का समाधान (स.सा.ता.वृ.गा. ९६)

ननु वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान विचार काले वीतराग विशेषणं किमिति क्रियते प्रचुरेण भवद्भिः, किं सरागमपि स्वसंवेदन ज्ञानमस्तीति? अत्रोत्तरं विषय सुखानुभवानंद रूपं स्वसंवेदन ज्ञानं सर्वजन प्रसिद्धं सरागमप्यस्ति। शुद्धात्म सुखानुभूतिरूपं स्वसंवेदन ज्ञानं वीतरागमिति। इदं व्याख्यानं स्वसंवेदन ज्ञान व्याख्यान काले सर्वत्र ज्ञातव्यम्।

अर्थ : प्रश्न – वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान का विचार करते हुए आप सर्वत्र "वीतराग" विशेषण क्यों लगाते हैं। क्या सराग को भी स्वसंवेदन ज्ञान होता है?

उत्तर : विषय सुख आनंद रूप स्वसंवेदन ज्ञान सर्वजन प्रसिद्ध है। वह सराग को भी होता है। परन्तु शुद्धात्म सुखानुभूति रूप स्वसंवेदन ज्ञान वीतराग को ही होता है। स्वसंवेदन ज्ञान के प्रकरण में सर्वत्र यह व्याख्यान जानना चाहिए।

१८१.शंका : वीतरागता किस गुणस्थान से प्रारंभ होती है?

समाधान : (स. सा. ता. वृ. २०१ - २०२ / २७९/५) में इस विषय को इस प्रकार से समझाया गया है –

रागी सम्यग्दृष्टिर्न भवतीति भणितं भवद्भिः। तर्हि चतुर्थ पञ्चम गुणस्थान वर्तिनतीर्थंकरकुमार भरत–सगर–राम–पाण्डवादयः सम्यग्दृष्टयो न भवन्ति। इति। तन्न, मिथ्यादृष्ट्यपेक्षया त्रिचत्वारिंशत् प्रकृतीनां बंधाभावात् सराग सम्यग्दृष्टयो भवन्ति। कथं इति चेत्, चतुर्थ गुणस्थानवर्तिनां जीवानां अनन्तानुबन्धि क्रोध मानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनितानां पाषाणरेखादि समानानां रागादिनामभावात्। पञ्चमगुणस्थानवर्तिनां पुनर्जीवानां, अप्रत्याख्यान क्रोध मानमायालोभोदयजनितानां भूमि रेखादि समानानां रागादिनामभावात्। अत्र तु ग्रंथे पञ्चम गुणस्थानादुपरितन गुणस्थानवर्तिनां वीतराग सम्यग्दृष्टिनां मुख्य वृत्याग्रहणं, सराग सम्यग्दृष्टिनां गौण वृत्त्येति व्याख्यानं सम्यग्दृष्टि व्याख्यान काले सर्वत्र तात्पर्येण ज्ञातव्यम्।

अर्थ : प्रश्न : रागी जीव सम्यग्दृष्टि नहीं होता, ऐसा आपने कहा है तो चौथे व पाँचवें गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकेंगे?

उत्तर : ऐसा नहीं है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा ४३ प्रकृतियों के बन्ध का अभाव होने से सरागसम्यग्दृष्टि होते हैं। वह ऐसे कि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव के तो पाषाण रेखा सदृश अनंतानुबंधी चतुष्क रूप रागादिकों का अभाव होता है और पञ्चम गुणस्थानवर्ती जीव के भूमिरेखा सदृश अप्रत्याख्यान चतुष्क रूप रागादिकों का अभाव होता है।

यहाँ इस ग्रंथ में पञ्चम गुणस्थान से ऊपर वाले गुणस्थानवर्ती वीतराग सम्यग्दृष्टियों को मुख्य रूप से ग्रहण किया गया है और सराग सम्यग्दृष्टियों को गौण रूप से। सम्यग्दृष्टि के व्याख्यान काल में सर्वत्र यही जानना चाहिए।

१८२.शंका : शुद्धनय स्वरूप पांच भाव के आश्रय से ही क्या निश्चय सम्यक्त्व होता है?

समाधान : हाँ, देखिये (स.सा.गा. १४) में कहा है कि -

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।

अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणा हि ॥

अर्थ : जो नय आत्मा को बन्ध रहित, पर के स्पर्श रहित, अन्यत्व रहित, चलाचलता रहित, विशेष रहित, अन्य के संयोग से रहित ऐसे पांच भाव रूप से देखता है उसे हे शिष्य ! तू शुद्धनय जान। इस नय के आश्रय से ही निश्चय सम्यग्दर्शन होता है।

१८३.शंका : परम पंचम भाव क्या वीतराग सम्यग्दृष्टि के ही गोचर होता है?

समाधान : हाँ, देखो (नि.सा.ता.वृ.गा. १७८ क. २९७)

भावाः पञ्च भवन्ति येषु सततं भावः परः पञ्चमः।

स्थायी संसृति नाश कारण मयं सम्यग्दशां गोचरः ॥

अर्थ : भाव पांच है जिनमें यह पंचम परम भाव (पारिणामिक भाव) निरन्तर स्थाई है। जो संसार के नाश का कारण है और वह (वीतराग) सम्यग्दृष्टियों को ही होता है।

१८४.शंका : क्या आत्मानुभूति शुद्ध नयाश्रित ही होती है?

समाधान : हाँ, देखो (स.सा.आ.गा. १४ क. १३) में कहा है.

आत्मानुभूति रिति शुद्ध नयात्मिकाया।

ज्ञानानुभूतिरियमेष किलेति बुद्ध्वा ॥

अर्थ : जो पूर्व कथित शुद्धनय स्वरुप आत्मा की अनुभूति है वही वास्तव में ज्ञान की अनुभूति है।

१८५.शंका : क्या शुद्धात्मा योगियों को ही प्रत्यक्ष होती है इतर को नहीं?

समाधान : देखिये (पं.का.ता.वृ. १२७/१९०) में इस विषय को इस प्रकार से समझाया गया है कि -

यद्यप्यनुमानेन लक्षणेन परोक्ष ज्ञानेन व्यवहार नयेन धूमादग्निवद शुद्धात्मा ज्ञायते तथापि रागादिविकल्परहित स्वसंवेदन ज्ञान समुत्पन्न... सुखामृत जलेन... भरितावस्थानां परम योगिनां यथा शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति तथेतराणां न भवति ।

अर्थ : यद्यपि अनुमान लक्षण परोक्ष ज्ञान के द्वारा व्यवहार नय से धूम से अग्नि की भांति अशुद्ध आत्मा जानी जाती है परन्तु रागादिविकल्प से रहित स्वसंवेदन ज्ञान से उत्पन्न सुखामृत से परिपूर्ण परम योगियों को जैसा शुद्धात्मा प्रत्यक्ष होता है वैसा अन्य को नहीं होता।

१८६.शंका : इतर को नहीं होती इसका क्या तात्पर्य है?

समाधान : इसे (प्र.सा.त.प्र.गा.वृ. २५४/३४४) में कहा है कि -

विषय कषाय निमित्तोत्पन्नेनार्तरौद्र ध्यानद्वयेन परिणतानां गृहस्थानामात्माश्रित निश्चय धर्मस्यावकाशो नास्ति।

अर्थ : विषय कषाय के निमित्त से उत्पन्न आर्त्तरौद्र ध्यान में परिणत ग्रहस्थ जनों को आत्माश्रित धर्म का अवकाश नहीं है।

१८७.शंका : क्या मुनियों को ही आत्मध्यान होता है गृहस्थों को नहीं होता?

समाधान : इस प्रश्न के उत्तर में देखें (मो.पा.टी. २/३०५/९)

मुनिनामेव परमात्म ध्यानं घटते। तप्तलोह गोलक समान गृहिणां परमात्म ध्यानं न संगच्छते।

अर्थ : मुनियों को ही परमात्म ध्यान घटित होता है तप्त लोहे के गोले के समान गृहस्थों को परम आत्म ध्यान नहीं होता है।

यही भाव **देवसेन सूरिकृत** (भा. सं. ३७१-३९७, ६०५) में भी कहा है।

१८८.शंका : भावश्रुतज्ञान / स्वसंवेदनज्ञान शुद्धात्मा को जानता है तो क्या वह निश्चय श्रुतकेवली कहा जाता है?

समाधान : हाँ, देखिये (स.सा.ता.वृ.गा. १०)

यो भावश्रुतरूपेण स्वसंवेदन ज्ञान बलेन शुद्धात्मानं जानाति स निश्चय श्रुतकेवली भवति। यस्तु स्वशुद्धात्मानं न संवेदयति न भावयति बर्हिविषयं द्रव्यश्रुतार्थं जानाति स व्यवहार श्रुतकेवली भवतीति ।

अर्थ : जो भावश्रुतरुप स्वसंवेदन ज्ञान के बल से शुद्धात्मा को जानता है वह निश्चय श्रुतेकवली होता है। जो शुद्धात्मा का संवेदन तो नहीं करता है किन्तु वहिर्विषय रूप द्रव्यश्रुत को जानता है वह व्यवहार श्रुतकेवली होता है।

१८९.शंका : क्या इस काल में श्रुत केवली हो सकते है?

समाधान : देखिये (स.सा.ता.वृ.गा. १०)

ननु तर्हि - स्वसंवेदनज्ञानबलेनास्मिन् कालेऽपि श्रुतकेवली भवति? तन्न यादृशं पुरुषाणां शुक्लध्यानरुपं स्वसंवेदन ज्ञानं तादृशमिदानीं नास्ति किन्तु धर्मध्यानंयोग्यमस्तीत्यर्थः।

अर्थ : प्रश्न : तब तो स्वसंवेदन ज्ञान के बल से इस काल में श्रुतकेवली हो सकता है?

उत्तर : नहीं, क्यों कि जिस प्रकार का शुक्ल ध्यान रुप स्वसंवेदन ज्ञान पूर्व पुरुषों को होता था वैसा इस काल में नहीं होता है किन्तु धर्म ध्यान के योग्य है।

१९०.शंका : प्रवचन सार गा. २३७ प्र. प्र. टीका में किस आत्मा को मोक्ष का कारण माना है?

समाधान : देखिये वहाँ कहा है कि -

तत्र मोक्ष कारणं चिन्त्यते। मिथ्यात्वरागादिरूपा बहिरात्मावस्था तावदशुद्धा, मुक्ति कारणं न भवति। मोक्षावस्था शुद्धात्म फलभूता, सा चाग्रे तिष्ठति। एताभ्यां द्वाम्यां भिन्नायान्तरात्मावस्था सा मिथ्यात्वरागादि-रहितत्वेनशुद्धा। यथा सूक्ष्म निगोत ज्ञाने शेषावरणे सत्यपि क्षयोपशम ज्ञानावरणं नास्ति तथा त्रापि केवलज्ञानावरणे सत्यप्येकदेश क्षयोपशम-ज्ञानापेक्षया नास्त्यावरणम्। यावतांशेन निरावरणारागादिरहितत्वेन शुद्धा च तावतांशेन मोक्षकारणं भवति। तत्र शुद्ध पारिणामिकभाव रूपं परमात्मद्रव्यं ध्येयं भवति। तच्च तस्मादन्तरात्मध्यानावस्था विशेषात्कथं चिद्भिन्नम्। यदैकान्तेनाभिन्नं भवति तदा मोक्षेऽपि ध्यानं प्राप्नोति, अथवास्य ध्यानपर्यायस्य विनाशे सति तस्यपारिणामिक भावस्यापि विनाशः प्राप्नोति। एवं बहिरात्मान्तरात्म परमात्मकथन रूपेण मोक्षमार्गो ज्ञातव्याः।

अर्थ : वहाँ मोक्ष के कारण का विचार करते है। मिथ्यात्व रागादि रूप बहिरात्मा दशा - अशुद्ध दशा है वह मोक्ष का कारण नहीं है। तथा मोक्ष दशा शुद्धफलभूत है, वह आगे प्रगट होती है। इन दोनों से भिन्न जो अन्तरात्मदशा है वह मिथ्यात्व रागादि से रहित होने के कारण शुद्ध है। जैसे सूक्ष्म निगोदिया जीव के ज्ञान में शेष आवरण होने पर भी क्षयोपशम-ज्ञानावरण नहीं है वैसे यहाँ भी केवलज्ञानावरण होने पर भी एकदेश क्षयोपशम ज्ञान की अपेक्षा आवरण नहीं है।

जितने अंशों में आवरण रहित और रागादि से रहित होने के कारण शुद्ध, उतने अंशों में मोक्ष का कारण है वहाँ शुद्ध पारिणामिक भाव रूप परमात्मा द्रव्य ध्येय है और वह उस अन्तरात्मा रूप ध्यान दशा विशेष से कथंचित् भिन्न है। यदि वह एकान्त से उससे अभिन्न हो तो मोक्ष में भी ध्यान प्राप्त होता है अथवा इस ध्यान पर्याय का विनाश होने पर उस पारिणामिक भाव का भी विनाश प्राप्त होता है।

१९१.शंका : तीनों आत्माओं को संक्षिप्त रूप में बताईये, समाझाइये।

समाधान : उपरोक्त कथन का तात्पर्य है कि आत्मा तीन प्रकार की होती है : (१) बहिरात्मा (२) अंतरात्मा (३) परमात्मा। इनमें से बहिरात्मा अशुद्धात्मा है, अंतरात्मा शुद्धात्मा है तथा परमात्मा शुद्ध फल रूप आत्मा है।

१९२.शंका : अन्तरात्मा तो संसारी है वह शुद्धात्मा कैसे हो सकती है?

समाधान : अन्तरात्मा, संसारी होने पर भी एक देश शुद्ध है क्योंकि अविरत सम्यग्दृष्टि के अनंतानुबंधी जन्य राग नहीं है, देशव्रती के अप्रत्याख्यानजन्य राग नहीं है। ६ से १० वें गुणस्थानवर्ती मुनि के प्रत्याख्यानजन्य राग नहीं है। ११-१२ वे गुणस्थानवर्ती मुनि के संज्वलन जन्य राग नहीं है। अर्थात् जितना जितना राग का अभाव हुआ आत्मा उतने उतने अंश रूप शुद्ध हुई। इसीलिये वह एकदेश शुद्ध कही जाती है।

१९३.शंका : तो क्या अंतरात्मा एकदेश रूप से ही मोक्ष का कारण है?

समाधान : हाँ, जितने अंश में रागादि का अभाव है वह शुद्ध अंश ही मोक्ष का कारण है।

१९४.शंका : यहाँ ध्यान क्या है तथा ध्येय क्या है इसे एक बार पुनः स्पष्ट रूप से समझा दीजिये?

समाधान : शुद्ध पारिणामिक भाव अर्थात् शुद्धात्म द्रव्य ध्येय है। ध्यान करने योग्य है तथा अन्तरात्मा की एकाग्रता ध्यान है। दोनों एक नहीं है, भिन्न है।

१९५.शंका : ऐसा क्यों, दोनों एक क्यों नहीं है?

समाधान : क्योंकि यदि शुद्ध पारिणामिक भाव और अंतरात्मा रूप ध्यान को दोनों को एक रूप अभिन्न मान लिया जाये तो सबसे बड़ी दो समस्या/बाधा खड़ी हो जाएगी : (१) या तो फिर सिद्ध परमेष्ठियों को भी सिद्धालय में ध्यान मानना पड़ेगा अथवा (२) संसारी अवस्था का अभाव मानना पड़ेगा।

१९६.शंका : सिद्धों में ध्यान मान लेने में क्या हानि है?

समाधान : ध्यान तो अग्निवत् होता है और अग्नि तभी तक होती है जब तक ईधन हो, ईधन के अभाव में अग्नि नहीं पाई जाती है, इसी प्रकार कर्म रूपी ईधन होने पर ही ध्यान का अस्तित्त्व संभव है। किन्तु सम्पूर्ण कर्म क्षीण हो जाने पर सिद्धों के ध्यान नहीं पाया जाता है। अतः शुद्ध परम पारिणामिक भाव अंतरात्मा रूप ध्यान पर्याय नहीं है वह बात सिद्ध हुई।

१९७.शंका : अच्छा तो संसारी जीवों में शुद्ध पारिणामिक भाव तथा ध्यान अंतरात्मा दशा को एक अभिन्न मान लेने पर उसका (जीव का) अभाव कैसे ठहरेगा?

समाधान : अंतरात्मा रूप ध्यान एक पर्याय है जो समय समय पर नष्ट होती रहती है, बदलती रहती है। यदि हम उसे अंतरात्मा रूप ध्यान अवस्था को शुद्ध पारिणामिक भाव के साथ एक अभिन्न मानेगें तो ध्यान के नष्ट होने के साथ साथ शुद्ध पारिणामिक जीवत्व भाव को भी नष्ट हुआ मानना पड़ेगा। फिर जीव द्रव्य का शाश्वत अस्तित्त्व नहीं रहेगा। उसके अस्तित्त्व का भी अभाव हो जाएगा। इसलिए ध्यान रूप अंतरात्मा को तथा ध्येय रूप शुद्ध पारिणामिक भाव को एक मानने में और भी अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। अत: दोनों को एक नहीं मानना चाहिए यह बात सिद्ध हुई।

१९८.शंका : तो फिर यहाँ पर अंतरात्मा ध्यान रूप से ही स्वीकार की गई है?

समाधान : हाँ, अध्यात्म ग्रंथों में अंतरात्मा को ध्यान रूप से ही स्वीकार किया गया है।

१९९.शंका : तो क्या अध्यात्म भाषा में अंतरात्मा के तीन भेद नहीं होते?

समाधान : चरणानुयोग में कथित अंतरात्मा के ही तीन भेद होते है द्रव्यानुयोग में कथित अंतरात्मा के तीन भेद नहीं होते अपितु यहाँ पर मुख्य रुप से निर्विकल्प ध्यान लीन मुनि की (उत्तम) अंतरात्मा ही ग्राह्य है शेष नहीं। इसीलिये ही अंतरात्मा को ध्यान रूप कहा गया है शुद्ध पारिणामिक रूप नहीं।

२००.शंका : तो क्या चरणानुयोग में कथित अंतरात्मा ध्यान रूप से नहीं ग्रहण की गई है?

समाधान : नहीं, चरणानुयोग कथित अंतरात्मा को ध्यान पर्याय रूप से नहीं माना है। अपितु उसे यथायोग्य गुणस्थानों में स्थाई माना है। अत: द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग में कथित अंतरात्मा को एक नहीं मानना चाहिए।

२०१.शंका : यदि चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग कथित अंतरात्मा को एक मान ले तो क्या दोष आयेगा?

समाधान : दोनों अनुयोगों में कथित अंतरात्मा को एक मान लेंगे तो चतुर्थ, पंचम् आदि गुणस्थानों को भी अंतर्मूहूर्त प्रमाण मानना पड़ेगा। क्योंकि ध्यान अंतर्मूहर्त से अधिक नहीं होता और ऐसा मानने पर अंतर्मूहूर्त के पश्चात् उक्त गुणस्थानवर्ती महाव्रती तो है नहीं कि छट्ठे सातवें गुणस्थान में झूलना प्रारंभ कर दे, अतः वे मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होंगे। आदि अनेक दोष उत्पन्न होंगे अतः दोनों की परिभाषाएँ एक नहीं है, अलगअलग हैं। उन्हें एक मानने की भूल नहीं करना चाहिए।

२०२.शंका : तो क्या यहाँ अंतरात्मा ध्यान लीन मुनि के ही साक्षात् मोक्ष का कारण माना गया है, शेष को नहीं?

समाधान : हाँ, यहाँ पर अन्तरात्मा ध्यान लीन मुनि को ही मोक्ष का साक्षात् कारण माना गया है शेष को नहीं।

२०३.शंका : १. निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव ही क्या अंतरात्मा है?

२. अंतरात्मा ही क्या ज्ञानी कहा जाता है?

३. क्या वही निश्चयरत्नत्रय लक्षण रूप शुद्धोपयोग को प्राप्त करता है?

४. क्या वही वीतराग चारित्र के अविनाभावि वीतराग सम्यग्दृष्टि है?

५. वही निर्विकल्प समाधि रूप परिणाम में परिणति करता है?

समाधान : उक्त पाँचों प्रश्नों के समाधान में (स.सा.ता.वृ. ७४) में कहा है कि -

यः पुनः सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा स ज्ञानी जीवः स मुख्यवृत्त्या निश्चयरत्नत्रय लक्षण शुद्धोपयोगबलेननिश्चयचारित्राविनाभावि वीतराग-सम्यग्दृष्टि भूंत्वानिर्विकल्प समाधिरूप परिणाम परिणतिं करोति।

अर्थ : जो (सप्तम गुणस्थानवर्ती) सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा है वह ज्ञानी जीव है। वह मुख्य रूप से निश्चय रत्नत्रय लक्षण वाले शुद्धोपयोग के बल से निश्चय चारित्र के अविनाभावि भूत वीतराग सम्यग्दृष्टि होकर निर्विकल्प समाधि रूप परिणाम में परिणति करता है।

२०४.शंका : अंतरात्मा किसे कहते है?

समाधान : देखिये (का.अ.गा. १९४)

जो जिणवयणे कुसला, भेयं जाणंत्ति जीव देहाणं।

णिज्जिय दुट्ठट्ठ मया अंतर अप्पा य ते तिविहा॥

अर्थ : जो जिनवचनों में कुशल है, जीव और देह के भेद को जानते है तथा जिन्होंने आठ दुष्ट मदों को जीत लिया है वे अंतरात्मा है।

२०५.शंका : सभी अंतरात्मा क्या एक सदृश है या उनके भेद भी है?

समाधान : सभी अंतरात्मा एक समान नहीं है अपितु उनके भेद भी है इसे पूर्व गाथा में कहा भी गया है कि अंतरात्मा के तीन भेद है।

२०६.शंका : तीनों प्रकार की अंतरात्मा को स्पष्ट कीजिए। ?

समाधान : देखिये (द्र. सं. टी. गा. १४/४९) में कहा है कि -

अविरत गुणस्थाने तद्योग्याशुभलेश्या-परिणतो जघन्यान्तरात्मा, क्षीणकषायगुणस्थाने पुनरुत्कृष्टः, अविरतक्षीणकषायोर्मध्ये मध्यमः।

अर्थ : अविरत गुणस्थान में उसके योग्य अशुभ लेश्या से परिणत जघन्य अन्तरात्मा है और क्षीणकषाय गुणस्थान में उत्कृष्ट अंतरात्मा है। अविरत और क्षीणकषाय गुणस्थानों के बीच में जो सात गुणस्थान है सो उनमें मध्यम अंतरात्मा है।

२०७.शंका : जघन्य अंतरात्मा के लक्षणों को समझाईए।

समाधान : देखिये (का.अ.गा. १९७)

अविरय सम्मादिट्ठो होंति जहण्णा जिणिंदपयभत्ता।

अप्पाणं णिंदंता गुण गहणे सुट्ठु अणुरत्ता॥

अर्थ : जो जीव अविरत सम्यग्दृष्टि है वे जघन्य अंतरात्मा है। वे जिन भगवान के चरणों के भक्त होते है। अपनी निंदा करते रहते है और गुणों को ग्रहण करने में बड़े अनुरागी होते है।

२०८.शंका : मध्यम अंतरात्मा किसे कहते है?

समाधान : (का.अ.गा. १९६) में कहा है कि -

सावय गुणेहिं जुत्ता, पमत्त विरदा य मज्झिमा होंति।

जिण वयणे अणुरत्ता उवसम सीला महासत्ता॥

अर्थ : श्रावक के व्रतों को पालने वाले गृहस्थ और प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि मध्यम अंतरात्मा होते है। ये जिनवचन में अनुरक्त रहते है। उपशम स्वभावी होते है और महापराक्रमी होते है।

२०९.शंका : उत्तम अंतरात्मा कौन है?

समाधान : देखिये (का.अ.गा. १९५)

पंचमहव्वय जुत्ता धम्मे सुक्के वि संठिदा णिच्चं ।

णिज्जिय सयलपमाया उक्किट्ठा अंतरात्मा होंति॥

अर्थ : जो पाँच महाव्रतों से सहित है, सदा धर्मध्यान या शुक्लध्यान में स्थित रहते है तथा जो समस्त प्रमादों को जीत चुके है वे उत्कृष्ट अंतरात्मा है।

२१०.शंका : अध्यात्म ग्रंथों में क्या इसी उत्तम अंतरात्मा की प्रधानता है?

समाधान : हाँ, देखों (प.प्र.गा. १४/२१/१३)

देह-विभिण्णउ णाणमउ जो परमप्पु णिएइ।

परमसमाहिपरिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ॥

अर्थ : जो पुरुष परमात्मा को शरीर से जुदा केवलज्ञान कर पूर्ण जानता है वही परम समाधि में तिष्ठता हुआ अंतरात्मा है अर्थात् पंडित विवेकी है।

२११.शंका : परम समाधि में लीन ही उत्तम अंतरात्मा ग्राह्य है क्या?

समाधान : हाँ, परम समाधि में लीन मुनि ही उत्तम अंतरात्मा है वे ही यहाँ ग्राह्य है देखो (नि.सा.गा. १५०)

जप्पेसु जो ण वट्टइ सो उच्चइ अंतरंगप्पा।

जो जल्पों (विकल्पों) में नहीं वर्तता अर्थात् निर्विकल्प रहता है वह अंतरात्मा कहलाता है।

अथवा (मो.पा.गा. ५) में कहा है कि -

अंतरअप्पा हु अप्प संकप्पो ॥

अर्थ : बहुरि अन्तरात्मा है सो अंतरंग विषै आत्मा का प्रकट अनुभव गोचर संकल्प है।

२१२.शंका : क्या वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान अंतरात्मा को ही होता है?

समाधान : हाँ, देखो (**प.प्र.टी.गा. १२**)

अंतरात्म-लक्षण-वीतराग-निर्विकल्प-स्वसंवेदन ज्ञानेन ।

अर्थ : (आध्यात्मिक) अंतरात्मा लक्षण वाला वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान होता है।

२१३.शंका : स्वसंवेदन तथा आत्मानुभव एक ही है?

समाधान : हाँ, देखे (**त.अनु. श्लो. १६१**)

तत्स्व संवेदनं प्राहुरात्मनोऽनुभवं दृशम् ॥

अर्थ : वह स्वसंवेदन आत्मा के साक्षात् दर्शन रूप अनुभव का नाम है।

२१४.शंका : क्या स्वसंवेदन और शुद्धोपयोग एक ही है?

समाधान : हाँ, देखें (**द्र.सं.टी. ४१/१७७**)

शुद्धोपयोग लक्षण स्वसंवेदन ज्ञानेन

अर्थ : शुद्धोपयोग लक्षण स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा.....

२१५.शंका : आत्मानुभूति तथा ज्ञानानुभूति क्या एक है?

समाधान : देखो (**स.सा. क. १३**)

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या

ज्ञानानुभूति-रियमेव किलेति बुद्ध्वा ॥

आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प-

मेकोऽस्ति नित्यमवबोध घनः समन्तात् ॥

अर्थ : शुद्ध नय स्वरूप आत्मा की अनुभूति ही ज्ञान की अनुभूति है। अतः आत्मा को आत्मा में निश्चल स्थापित करके सदा सर्व और एक ज्ञानघन आत्मा है इस प्रकार देखों।

२१६.शंका : आत्मग्राहक कौन सा दर्शन है?

समाधान : देखे (प.प्र.टी. अ. २/गा. ३४/१५५)

अत्र चतुष्टय मध्ये मानसम चक्षुदर्शनमात्मग्राहकम् भवति ।

अर्थ : चारों दर्शनों में से मानस अचक्षुदर्शन आत्मग्राहक है।

२१७.शंका : क्या इस विषय में कोई मत भेद है?

समाधान : हाँ, तत्त्वानुशासन का मत उक्त प्रमाण से भिन्न है। देखिये (श. नं. १६६, १६७)

मोहीन्द्रिया धिया दृश्यं रूपादि रहितत्त्वतः।

वितर्कास्तत्र पश्यन्ति ते त्थवि स्पष्ट तर्कणाः॥

उभयस्मिन्नि रुद्धे तु स्याद्धि स्पष्ट मतीन्द्रियम्।

स्वसंवेद्यं हि तद्रूपं स्व संवित्त्यैव दृश्यताम्॥

अर्थ : रूपादि से रहित होने के कारण वह आत्म स्वरूप इन्द्रिय ज्ञान से दिखाई देने वाला नहीं है। तर्क करने वाले उसे देख नहीं पाते। वे अपनी तर्कणा में भी विशेष रूप से स्पष्ट नहीं हो पाते हैं। इन्द्रिय और मन दोनों के विरुद्ध होने पर अतीन्द्रिय ज्ञान विशेष रूप से स्पष्ट होता है। अपना वह आत्मा स्वसंवेदन के गोचर होता है उसे स्वसंवेदन के द्वारा ही देखना चाहिए।

२१८.शंका : आत्मा कौन है तथा वह कैसे प्राप्त किया जाता है?

समाधान : देखो (प्र.सा.त.प्र.) परिशिष्ट -

ननु कोऽयमात्मा कथं चावाप्यत इति चेत्, अभिहितमेततपुनरप्यभिधीयते। आत्मा हि तावच्चैतन्य सामान्य व्याप्तानन्त धर्माधिष्ठात्रेकं द्रव्यमनन्तधर्मव्यापकानन्तनयव्याप्येक श्रुतज्ञान लक्षण प्रमाणपूर्वक स्वानुभव प्रमीय माणत्वात्।

अर्थ : प्र. यह आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त किया जाता है?

उत्तर : आत्मा वास्तव में चैतन्य सामान्य से व्याप्त अनन्त धर्मों का अधिष्ठाता एक द्रव्य है, क्योंकि अनन्त धर्मों में व्याप्त होने वाला जो एक श्रुतज्ञान स्वरूप प्रमाण है, उस प्रमाण पूर्वक स्वानुभव से प्रमेय होता है।

ओर भी देखें **स.सा.ता.वृ. २९६**

कथं स गृह्यते आत्मा 'दृष्टि विषयो न भवत्यमूर्तत्वात्' इति प्रश्नः? प्रज्ञाया भेद ज्ञानेन गृह्यते इत्युत्तरम्।

अर्थ : प्र. वह आत्मा कैसे ग्रहण की जाती है क्योंकि अमूर्त होने के कारण वह दृष्टि का विषय नहीं है ?

उत्तर : प्रज्ञा रूप, भेद ज्ञान के द्वारा ग्रहण की जाता है।

२१९.शंका : आत्मा को किस प्रकार कौन जानता है?

समाधान : इसे **प्र.सा.त.प्र.गा. ८६** में देखें तद्यथा –

वीतरागसर्वज्ञ प्रणीत शास्त्रात् ''एगो मे सस्सदो अप्पा'' इत्यादि परमात्मोपदेशक श्रुतज्ञानेन तावदात्मानं जानीते कश्चिद भव्यः, तदनन्तरं विशिष्टाभ्यासवशेन परमसमाधिकाले रागादि, विकल्प रहित मानस प्रत्यक्षेण च तमेवात्मानं परिच्छिनत्ति तथैवानुमानेन वा। तथाहि अत्रैव देहे निश्चय नयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मास्ति। कस्माद्धेतोः निर्विकारस्वसंवेदन प्रत्यक्षत्वात् सुखादिवत इति, तथैवान्येऽपि पदार्थ यथासंभव मागमाभ्यासबलोत्पन्न प्रत्येक्षणानुमानेन वा ज्ञायन्ते। ततो मोक्षार्थिना भव्येनागमाभ्यासः कर्तव्यः इति तात्पर्यम्।

अर्थ : वह इस प्रकार कोई भव्य वीतराग सर्वज्ञ देव द्वारा कहे गये शास्त्र से एक मेरा शाश्वत आत्मा इत्यादि परमात्मा का उपदेश देने वाले श्रुतज्ञान द्वारा सर्वप्रथम आत्मा को जानता है और उसके बाद विशिष्ट अभ्यास के वश से परम समाधि लीनता के समय रागादि विकल्पों से रहित मानस प्रत्यक्ष (स्व संवेदन प्रत्यक्ष) से उसी आत्मा को जानता है अथवा उसी प्रकार अनुमान से जानता है। वह इस प्रकार निश्चय नय से शरीर में शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव परमात्मा है सुखादि के समान विकार रहित स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष रूप से यह जाना जाता है उसी प्रकार अन्य भी पदार्थ यथा संभव आगम अभ्यास के बल से उत्पन्न प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से जाने जाते है। इसलिए भव्य मोक्षार्थी को आगम का अभ्यास करना चाहिए यह तात्पर्य है।

२२०.शंका : उपर्युक्त कथन में जो परमात्मा के उपदेशक गुरु तथा शास्त्र के प्रथम आत्मा को जानना आवश्यक है क्या?

समाधान : हाँ, सच्चे शास्त्र व गुरु के उपदेश के बिना आत्मा का सही तरह से ज्ञान भी नहीं हो सकता है।

२२१.शंका : परमात्मोपदेशक गुरु की क्या आवश्यकता है, आत्मा का ज्ञान तो मात्र शास्त्र स्वाध्याय से भी हो जाता है?

समाधान : सच्चे उपदेशक निर्ग्रंथ गुरु के बिना तथा अल्पज्ञान के कारण शास्त्रों के शब्दों के अन्यथा रूप अर्थ भी संभव है अतः गुरु सही अर्थ तक पहुँचाते है। इसलिए यहाँ परमात्मोपदेशक गुरु की बात कही गई है।

२२२.शंका : इस प्रकार आगम या गुरुओं से आत्मा को जानना कौन सा ज्ञान है?

समाधान : यह द्रव्य श्रुतज्ञान है।

२२३.शंका : तो भाव श्रुत से भी आत्मा को जाना जा सकता है?

समाधान : हाँ, भाव श्रुतज्ञान से जाना जाता है। इसे जानने के लिए ही द्रव्य श्रुतज्ञान प्रयोजनवान् है तथा साधन है और यह साध्य है।

२२४.शंका: भाव श्रुतज्ञान कितने प्रकार से होता है?

समाधान : दो प्रकार से एक प्रत्यक्ष दूसरा अनुमान।

२२५.शंका : प्रत्यक्ष भाव श्रुतज्ञान के भी कोई भेद है क्या?

समाधान : हाँ, इसके भी दो भेद हैं – एक वीतराग दूसरा सराग।

२२६.शंका : वीतराग प्रत्यक्ष भावश्रुतज्ञान के भी क्या कोई भेद है?

समाधान : हाँ, एक निर्विकल्प दूसरा सविकल्प ये दो भेद हैं।

२२७.शंका : वीतराग निर्विकल्प प्रत्यक्ष भाव श्रुतज्ञान को अध्यात्म भाषा में क्या कहते है?

समाधान : वीतराग निर्विकल्प प्रत्यक्ष भाव श्रुतज्ञान को अध्यात्म भाषा में वीतराग निर्विकल्प समाधी, वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन, वीतराग निर्विकल्प स्वानुभव, वीतराग निर्विकल्प स्वात्मानुभूति, शुद्धोपयोग, निश्चय धर्मध्यान आदि शब्दों से कहा जाता है।

२२८.शंका : वीतराग निर्विकल्प प्रत्यक्ष भाव श्रुतज्ञान या वीतराग निर्विकल्प स्वात्मानुभूति क्या योगियों, मुनियों को ही होती है?

समाधान : हाँ, यह एक मात्र वीतराग समाधीलीन मुनियों को ही होती है। इसीलिये इसे योगी प्रत्यक्ष भी कहते है।

२२९.शंका : तो क्या यह गृहस्थों को भी संभव नहीं है?

समाधान : नहीं, यह गृहस्थों को भी संभव नहीं है।

२३०.शंका : क्या कभी-कभी अल्प समय के लिये भी गृहस्थों को ये हो सकती है?

समाधान : नहीं, गृहस्थावस्था में कभी भी कितना भी वीतराग निर्विकल्प समाधी रूप निश्चय धर्म ध्यान संभव नहीं है।

(देखिये शंका समाधान में २५२, २८१)

२३१.शंका : तो क्या सराग स्वसंवेदन भी होता है और वह किसे होता है?

समाधान : हाँ, विषय सुखानुभवानंदरूप स्वसंवेदन ज्ञान भी होता है। और वह सरागी जीवों को होता है (देखें शंका नं. १८०)

२३२.शंका : सराग स्वसंवेदन के भी कोई भेद है?

समाधान : हाँ, सराग स्वसंवेदन के भी दो भेद हैं - एक सविकल्प धर्म ध्यान रूप दूसरा आर्तरौद्र ध्यान रूप।

२३३.शंका : गृहस्थों को सविकल्प धर्मध्यान रूप स्वसंवेदन ज्ञान कैसे पाया जाता है?

समाधान : गृहस्थों को जिनाभिषेक, पूजा, स्वाध्याय, जाप, मुनियों की सेवा, आहार दान आदि रूप सराग स्वसंवेदन रूप व्यवहार धर्मध्यान पाया जाता है।

२३४.शंका : तो गृहस्थों को आर्त्तरौद्र ध्यान रूप स्वसंवेदन ज्ञान कैसे पाया जाता है?

समाधान : विषय जनानंद रूप सराग स्वसंवेदन तो जगत् प्रसिद्ध है जो कि गृहस्थावस्था में गृहस्थों को संभव है ही।

२३५.शंका : तो वीतराग सविकल्प भावश्रुतज्ञान को अध्यात्म ग्रंथों में क्या कहते है?

समाधान : वीतराग सविकल्प भावश्रुतज्ञान को अनुमान ज्ञान, निर्विकार सविकल्प स्वसंवेदन कहते है।

२३६.शंका : वीतराग सविकल्प भाव श्रुतज्ञान या अनुमान ज्ञान के द्वारा आत्मा किस प्रकार जानी जाती है?

समाधान : शुद्ध निश्चयनय से मैं इस शरीर में भी शुद्धबुद्ध एक स्वभाव वाला परमात्मा हूँ अथवा शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहं इत्यादि प्रकार से शुद्ध भावना से जाना जाता है।

२३७.शंका : तो क्या यह गृहस्थों को संभव है?

समाधान : हाँ, सामायिक आदि के काल में यह गृहस्थों को भी संभव है अर्थात्, गृहस्थजनों को भी इस प्रकार की भावना रूप श्रुतज्ञान संभव है। वे भी अनुमान ज्ञान द्वारा परोक्ष रूप से आत्मा को जान सकते है।

२३८.शंका : अनुमान ज्ञान से आत्मा कैसे जानी जाती है?

समाधान : अनुमान ज्ञान, परोक्ष भाव श्रुतज्ञान है जैसे – धूम से अग्नि का अनुमान लगाया जाता है उसी प्रकार आगम व आचार्यों के उपदेश से आत्मा का अनुमान लगाया जाता है।

२३९.शंका : क्या अनुमान ज्ञान प्रमाण नहीं है?

समाधान : नहीं, ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि अनुमान ज्ञान भी मतिज्ञान का अभिनिबोध ज्ञान नामक सम्यग्ज्ञान प्रमाण का ही भेद है।

२४०.शंका : तो क्या इस अनुमान ज्ञान से अविरत सम्यग्दृष्टि या देशव्रती भी अपनी आत्मा को जान सकता है?

समाधान : हाँ, अनुमान ज्ञान से अवश्य जान सकता है।

(देखिये – शंका समाधान नं. १८०)

२४१.शंका : आत्मानुभव करने की क्रमिक विधि क्या है?

समाधान : देखिये **(स.सा.आ.गा. १४४)**

यतः प्रथमतः श्रुताज्ञानावष्टम्भेन ज्ञानस्वभावमात्मानं निश्चित्य ततः खल्वात्मख्यातये परख्याति हेतूनखिला एवेन्द्रियीनिन्द्रिय बुद्धिरवधीर्य

आत्माभिमुखीकृतमतिज्ञान तत्त्वः, तथा नानाविधनय पक्षालम्बनेनानेक विकल्पैरो कुलयन्तीः श्रुतज्ञान बुद्धिरप्यवधीर्य श्रुतज्ञान-तत्त्वमप्यात्माभिमुखी कुर्वन्नत्यन्त-मविकल्पो भूत्वा झगित्येव स्वरसत एव व्यक्ती-भवन्तमादि-मध्यान्त-विमुक्त-मनाकुलमेकं केवलमखिलस्यापि विश्वस्योपरि तरन्त-मिवाखण्ड-प्रतिभासमयमनन्तं विज्ञानघनं परमात्मानं समयसारं विन्दन्नेवात्मा सम्यग्दृश्यते ज्ञायते च ततः सम्यग्दर्शनंज्ञानं च समयसार एव।

अर्थ : प्रथम श्रुतज्ञान के आलम्बन से ज्ञान स्वभाव आत्मा का निश्चय करके और फिर आत्मा की प्रसिद्धि के लिए पर पदार्थ की प्रसिद्धि के कारणभूत इन्द्रियों और मन के द्वारा प्रवर्तमान बुद्धियों को मर्यादा में लेकर जिसने मतिज्ञान तत्त्व को आत्म सन्मुख किया है, तथा जो नाना प्रकार के नय पक्षों के आलम्बन से होने वाले अनेक विकल्पों के द्वारा आकुलता उत्पन्न करने वाली श्रुतज्ञान की बुद्धियों को भी मर्यादा में लाकर श्रुतज्ञान तत्त्व को भी आत्म सम्मुख करता हुआ अत्यंत विकल्प रहित होकर तत्काल निजरस से ही प्रकट होता हुआ आदि, मध्य और अन्त से रहित अनाकुल केवल एक सम्पूर्ण ही विश्व पर मानो तैरता हो ऐसे अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त, विज्ञानघन परमात्मा रूप समयसार का जब आत्मा अनुभव करता है, तब उसी समय आत्मा सम्यक्तया दिखाई देता है और ज्ञाता होता है।

२४२. शंका : समयसार क्या अनुभूति मात्र है?

समाधान : देखिये (स.सा.आ. ख्या.गा. १४३)

यथाखलु भगवान्केवली .... विश्वसाक्षितया केवलं स्वरूप मेव जानाति न तु........ नयपक्ष परिगृह्णात तथा किल यः.......... श्रुतज्ञानात्मक-विकल्प प्रत्युद्गमनेऽपि परपरिग्रह प्रतिनिवृत्तौत्सुक्य तया स्वरूपमेव केवलं जानाति न तु.......... स्वयमेव विज्ञानघनभूतत्वात्........ नय पक्षं परिगृह्णाति स खलु निखल-विकल्पेभ्यः परतरः परमात्मा ज्ञानात्मा प्रत्यग्ज्यो-तिरात्मख्याति रूपोऽनुभूति मात्रः समयसारः॥

अर्थ : जैसे केवली भगवान विश्व के साक्षीपनें के कारण केवल स्वरूप को ही मात्र जानते है किन्तु किसी भी नय पक्ष को ग्रहण नहीं करते इसी प्रकार श्रुतज्ञानात्मक विकल्प उत्पन्न होने पर भी पर का ग्रहण करने के प्रति उत्साह निवृत्त हुआ होने से स्वरूप को ही केवल जानते है परन्तु स्वयं ही विज्ञान घन होने से नय पक्ष को ग्रहण नहीं करते वही वास्तव में समस्त विकल्पों से परे परमात्मा, ज्ञानात्मा, प्रत्यग्ज्योति, आत्मख्याति रूप अनुभूति मात्र समयसार है।

२४३.शंका : क्या वीतराग स्वसंवेदन केवलज्ञानवत् होता है?

समाधान : देखिये (स.सा.ता.वृ.गा. १९० पेज २६२)

इदमात्म स्वरूपं प्रत्यक्षमेव मयादृष्टं चतुर्थकाले केवलज्ञानिवत्।

अर्थ : यह आत्मस्वरूप मेरे द्वारा चतुर्थकाल में केवलज्ञानियों की भांति प्रत्यक्ष देखा गया है।

२४४.शंका : साक्षात् केवली के ज्ञानवत् ही आत्मा प्रत्यक्ष दिखता है तो फिर श्रुतज्ञान को परोक्ष क्यों कहा?

समाधान : देखिये (स.सा./ता.वृ.गा. १९० पेज २६२)

यद्यपि केवलज्ञानापेक्षया रागादि-विकल्प-रहितं स्वसंवेदनरूपं भाव-श्रुतज्ञानं शुद्धनिश्चयनयेन परोक्षं भण्यते, तथापि इन्द्रियमनोजनित-सविकल्प ज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षम्। तेन कारणेन आत्मा स्वसंवेदनज्ञानापेक्षया प्रत्यक्षो भवति, केवलज्ञानापेक्षया पुनः परोक्षोऽपि भवति। सर्वथा परोक्ष एवेति वक्तुं नायाति। किंतु, चतुर्थकालेऽपि केवलिनः, किमात्मानं हस्ते गृहीत्वा दर्शयन्तिर तेपि दिव्यध्वनिना भणित्वा गच्छन्ति। तथापि श्रवण-काले श्रोतणां परोक्ष एव पश्चात् परम समाधि काले प्रत्यक्षो भवति। तथा इदानीं कालेऽपीति भावार्थः।

अर्थ : यद्यपि केवलज्ञान की अपेक्षा रागादि विकल्प रहित स्वसंवेदन रूप भावश्रुतज्ञान शुद्ध निश्चय से परोक्ष कहा जाता है तथापि इन्द्रिय मनोजनित सविकल्प ज्ञान की अपेक्षा प्रत्यक्ष है इस प्रकार आत्मा स्वसंवेदन ज्ञान की अपेक्षा प्रत्यक्ष होता हुआ भी केवलज्ञान की अपेक्षा परोक्ष भी है। सर्वथा परोक्ष है ऐसा कहना नहीं बनता। चतुर्थकाल में क्या केवली भगवान् आत्मा को हाथ में लेकर दिखाते है वे भी तो दिव्य ध्वनि के द्वारा कह कर चले जाते है, फिर भी सुनने के समय जो श्रोता के लिए परोक्ष है, वही पीछे परम समाधि काल में प्रत्यक्ष होता है। इसी प्रकार वर्तमान काल में भी समझना।

२४५.शंका : साधुओं को वीतराग चारित्र ही उपादेय है?

समाधान : हाँ, वीतराग चारित्र ही उपादेय है दखिये – (प्र.सा. त. प्र. टी. गा. ६) में कहा है कि –

संपद्यते हि दर्शनज्ञानप्रधानाच्चारित्राद्वीतरागान्मोक्षः। तत एव च सरागाद्देवासुरमनुजराजविभवक्लेशरूपो बन्धः। अतो मुमुक्षुणेष्ट फलत्वाद्वीतराग चारित्रमुपादेयमनिष्ट फलत्वात् सरागचारित्रं हेयम्।

अर्थ : दर्शन, ज्ञान प्रधान चारित्र से वीतराग हो तो मोक्ष होता है। और उससे ही यदि सराग हो तो देवेन्द्र, असुरेन्द्र, नरेन्द्र के वैभव क्लेशरूप बन्ध की प्राप्ति होती है। इसलिए मुमुक्षुओं को इष्ट फल वाला होने से वीतराग चारित्र उपादेय है तथा अनिष्ट फल वाला होने से सराग चारित्र हेय है।

२४६.शंका : "चारित्तं खलु धम्मो" इस शब्द का खुलासा कीजिये।

समाधान : चारित्तं खलु धम्मो........ इत्यादि प्रवचनसार की ७ वीं गाथा है। इसका खुलासा (प्र.सा. त.प्र. टी. गा.११) में निम्न प्रकार से किया गया है।

"चारित्तं खलु धम्मो" इति वचनात्। तच्च चारित्रमपहृत संयमोपेक्षा-संयमभेदेन सरागवीतरागभेदेनवाशुभोपयोगशुद्धोपयोगभेदेन च द्विधा भवति। तत्र यच्छुद्ध संप्रयोग शब्दवाच्यं शुद्धोपयोग- स्वरूपं वीतराग चारित्तं तेन निर्वाणं लभते। निर्विकल्प समाधिरूप शुद्धोपयोग शक्त्यभावे सति यदा शुभोपयोगरूप सरागचारित्रेण परिणमति तदापूर्वमनाकुलत्व लक्षण पारमार्थिकसुख विपरीतमाकुल-त्वोत्पादकं स्वर्ग सुखं लभते। पश्चात् परमसमाधि-सामग्री-सद्भावे मोक्षं च लभते इति सूत्रार्थः॥

अर्थ : "चारित्र ही वास्तविक धर्म है"। ऐसा वचन होने से वही धर्म दूसरे शब्दों में चारित्र कहा जाता है और वह – (१) अपहृत संयम – उपेक्षा संयम भेद से अथवा (२) वीतराग भेद से अथवा (३) शुभोपयोग – शुद्धोपयोग भेद से दो प्रकार का है। वहाँ जो शुद्ध संप्रयोग शब्द से कहा जाने वाला शुद्धोपयोग स्वरूप वीतराग चारित्र है, उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। निर्विकल्प समाधि रूप शुद्धोपयोग में रहने की शक्ति का अभाव होने पर जब (पूर्वोक्त

जीव) शुभोपयोग रूप सराग चारित्र से परिणत होता है तो अनुकूलता लक्षण पारमार्थिक सुख से विपरीत आकुलता पैदा करने वाला स्वर्ग सुख प्राप्त करता है तथा बाद में परम समाधि रूप मोक्ष की कारणभूत वीतराग चारित्र रूप सामग्री के सद्‌भाव में मोक्ष प्राप्त करता है।

२४७.शंका : अविरत सम्यग्दृष्टि को वीतराग चरित्र क्यों नहीं पाया जाता है?

समाधान : देखों (प.प्र.टी. अ. २ गा. १७) में कहा है कि -

तेषां शुद्धात्मोपादेय भावना रूपं निश्चय-सम्यक्त्वं विद्यते परं किन्तु चारित्रमोहोदयेन स्थिरता नास्ति व्रत प्रतिज्ञा भङ्गो भवतीति तेन कारणेनासंयता वा भण्यन्ते।

अर्थ : उनको (अविरत सम्यग्दृष्टि को) शुद्धात्म उपादेय है ऐसी भावना रूप निश्चय सम्यक्त्व होता है किन्तु उनको चरित्रमोह के उदय से स्थिरता नहीं है, व्रत प्रतिज्ञा भङ्ग हो जाती है, उस कारण से उसे असंयत कहा जाता है।

२४८.शंका : तो क्या स्थिरता को ही निश्चय चारित्र कहते है?

समाधान : हाँ, देखो (**नि.सा.ता.वृ.गा. ५५**)

स्वस्वरूपाविचल स्थिति रूपं सहज निश्चय चारित्रम्।

अर्थ : निज स्वरूप में अविचल स्थिति रूप सहज निश्चय चारित्र है।

अथवा

आत्माधीन ज्ञान सुख स्वभावे शुद्धात्मद्रव्ये यन्निश्चल निर्विकारानुभूति रूपमवस्थानं, तल्लक्षण निश्चय चरित्राज्जीवस्य समुत्पद्यते। प्र.सा.ता.वृ.६

अर्थ : आत्माधीन ज्ञान व सुख स्वभाव रूप शुद्धात्म द्रव्य में निश्चल निर्विकार अनुभूति रूप जो अवस्थान है वही निश्चय चारित्र का लक्षण है।

२४९.शंका : निश्चय या वीतराग चारित्र के पर्यायवाची नाम क्या-क्या है?

समाधान : देखें (न.च.वृ.गा. ३५७)

समदा तह मज्झत्थं सुद्धणो भावो य वीयरायत्तं।
तह चारित्तं धम्मो सहाव आराहणा भणिया॥

अर्थ : समता, माध्यस्थ, शुद्धोपयोग, वीतरागता, चारित्र, धर्म, स्वभाव की आराधना ये सब एकार्थ वाची है।

२५०.शंका : चतुर्थ गुणस्थानवर्ती को निश्चय सम्यक्त्व तो पाया ही जाता है ? (तो क्या वह उपचार से है?)

समाधान : हाँ, वीतराग चारित्र के साधन भूत निश्चय सम्यक्त्व तो पाया ही जाता है। किन्तु उसे वास्तव में सराग या व्यवहार ही समझना चाहिए। देखिये (प.प्र.टी.आ.२ गा.१७)

या पुनः तेषां सम्यक्त्वस्य निश्चयसम्यक्त्वसंज्ञा वीतराग चारित्राविनाभूतस्य निश्चय सम्यक्त्वस्य परम्परया साधकत्वादिति। वस्तु-वृत्त्या तु तस्सम्यक्त्वं सराग सम्यक्त्वाख्यं व्यवहार सम्यक्त्वमेवेति।

अर्थ : उनके सम्यक्त्व को जो निश्चय सम्यक्त्व कहा गया है वह वीतराग चारित्र के अविनाभूत निश्चय सम्यक्त्व का परम्परा से साधक है इसलिए (कारण में कार्य के उपचार से कहा है) वास्तव में तो वह सम्यक्त्व, सराग सम्यक्त्व नाम वाला व्यवहार सम्यक्त्व ही है।

२५१.शंका : तो क्या वीतरागी निर्ग्रन्थ साधू ही निश्चय सम्यग्दृष्टि है ऐसा कही स्पष्ट प्रमाण है?

समाधान : हाँ, देखों (मो. पा. गा.१४) में स्पष्ट कहा है कि -

सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण

सम्मत्त परिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठ कम्माणि॥

अर्थ : जो साधु अपनी आत्मा में रत् है अर्थात् लीन है वे वीतराग/निश्चय सम्यग्दृष्टि है। सम्यक्त्व भाव से युक्त होते हुए वे दुष्ट अष्टकर्मों का क्षय करते है।

२५२.शंका : वीतराग निश्चय सम्यग्दृष्टि का उपभोग क्या बंध का कारण नहीं है?

समादान : हाँ, देखो (स.सा.गा. १९६)

जह मज्झं पिवमाणो अरदि भावेण मज्जदि ण पुरिसो।

दव्वुवभोगो अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव ॥

अर्थ : जैसे कोई पुरुष मदिरा को अरति भाव से पीता हुआ मतवाला नहीं होता, इसी प्रकार ज्ञानी भी द्रव्य के उपभोग के प्रति अरति वर्तता हुआ बंध को प्राप्त नहीं होता है।

२५३.शंका : वीतराग सम्यग्दृष्टि तो ध्यान में लीन होता है उसे उपभोग कैसे?

समाधान : (१) सामान्य भाषा में जिस शिला, काष्ठ या तृण संस्तर पर वे बैठते है वह उपभोग है। जिस वन या महल में ठहरे हो वह भोग है। वहाँ के चित्र-विचित्र दृश्य, पक्षियों की आवाज, शीत में धूपादि, ग्रीष्म में छाया आदि ये सभी लौकिक जनों में भोग-उपभोग के हेतु होने से भोग या राग होने से बंध के कारण है वही सामग्री ध्यानलीन मुनियों को उसमें रागपूर्ण ध्यान न होने से बंध के कारण नहीं है।

(२) (स.सा.गा. २१८) को भी देखें -

णाणी रागप्पजहो, सव्वदव्वेसु कम्ममज्झ गदो।

णे लिप्पदि रजएण दु, कद्दम मज्झे जहा कणयं ॥

अर्थ : सम्पूर्ण पदार्थों के प्रति राग से रहित ज्ञानी कर्मों के मध्य रहा हुआ भी कर्म रज से लिप्त नहीं होता है - जैसे सोना कीचड़ में पड़ा हुआ भी लिप्त नहीं होता है।

(३) जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलणि-पत्तं सहाव पयडीए।

तह भावेण ण लिप्पइ कसाय-विसएहिं सप्पुरिसो ॥

(भा.पा.गा. १५२)

अर्थ : जिस प्रकार जल में रहता हुआ भी कमल पत्र अपने स्वभाव से ही जल से लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार ज्ञानी विषय और कषाय से संलग्न होने पर भी अपने भावों से उनके साथ लिप्त नहीं होता है।

(४) ज्ञानी विषय संगेऽपि विषयैनैर्व लिप्यते।

कनकं मल मध्येऽपि न मलै रूप लिप्यते ॥ यो. सा.आ. ४/१ ॥

अर्थ : जिस प्रकार कीचड़ के बीच पड़ा हुआ भी स्वर्ण कीचड़ से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार ज्ञानी पंचेन्द्रियों के विषयों को भोगता हुआ भी विषयों से लिप्त नहीं होता है।

२५४.शंका : वीतराग सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को विषय-भोग किस प्रकार संभव है?

समाधान : पहले बता चुके है स्पर्शनेन्द्रिय के आठ स्पर्श, रसनेन्द्रिय के पांच रस, घ्राणेन्द्रिय के दो गंध, चक्षु इंद्रिय के पांच वर्ण तथा कर्णेन्द्रिय के सात स्वर मुनियों को भी संभव है किन्तु वे उसमें लिप्त नहीं होते है।

२५५.शंका : वीतराग निश्चय सम्यग्दृष्टि को प्रत्येक समय प्रत्येक कार्यों से निर्जरा होती है?

समाधान : हाँ, देखो (स.सा.गा. १९३) में कहा है -

उवभोग-मिंदियेहिं, दव्वाण-मचेदणाण-मिदराणं।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जर-णिमित्तं॥

अर्थ : वीतराग निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव जो अचेतन तथा चेतन द्रव्यों का उपभोग करता है वह सभी उसके लिए निर्जरा का निमित्त है।

२५६.शंका : यहाँ चेतन भोग से क्या अर्थ लेना?

समाधान : आहार दाता, शुद्ध-प्रासुक आहार देता है, कभी-कभी मार्ग में कमण्डलु लेकर चलता है, पाद मर्दनादि रूप वैय्यावृत्ति करता है, वृद्धावस्था में या अस्वस्थावस्था में चलने में सहारा देता है। अतः भक्त सेवक या शिष्य चेतन भोग है।

२५७.शंका : आप वीतराग सम्यग्दृष्टि ही क्यों कहते है मात्र सम्यग्दृष्टि ही क्यों नहीं कहते हो?

समाधान : हाँ, सप्तमादि गुणस्थानवर्ती वीतराग सम्यग्दृष्टि जीवों के उपयोग में राग न होने से तथा वीतरागता होने से वे सभी, तभी तक उसकी बाह्य रागादि निमित्तक पदार्थ निर्जरा के हेतु कहे है। इस विषय को (स.सा.आ.टी.गा. १९३-१९४) में कहा है।

रागादि भावानां सद्भावेन मिथ्यादृष्टेरचेतनान्यद्रव्योपभोगो बंध निमित्तमेव स्यात्। स एव रागादि भावानामभावेन सम्यग्दृष्टे-निर्जरा निमित्तमेव स्यात्। एतेन द्रव्य निर्जरा स्वरूपमावेदितम् ॥१३॥"

अथ भाव निर्जरा स्वरूपमावेदयति-स तु यदा विद्यते तदा मिथ्यादृष्टे रागादि भावानां सद्भावेन बन्ध निमित्तंभूत्वा निर्जीर्यमाणोप ड्यनिर्जीर्णः सन् बन्ध एव स्यात्। सम्यग्दृष्टेस्तु रागादि भावानामभावेन बन्ध निमित्तमभूत्वा केवलमेव निर्जीर्यमाणो निर्जीर्णः सन्निर्जरैव स्यात्॥१४॥

अर्थ : रागादि भावों के सद्भाव से मिथ्यादृष्टि के जो अचेतन तथा चेतन द्रव्यों का उपभोग बंध का कारण होता है वही रागादि भावों के अभाव के कारण सम्यग्दृष्टि के लिये निर्जरा का कारण होता है। इस प्रकार द्रव्य निर्जरा का स्वरूप कहा।

अब भाव निर्जरा का स्वरूप कहते है – जब उस (कर्मोदयजन्य सुख रूप अथवा दु:ख रूप) भाव का वेदन होता है, तब मिथ्यादृष्टि को, रागादि भावों के सद्भाव से (नवीन) बन्ध का निमित्त होकर निर्जरा को प्राप्त होता हुआ भी, निर्जरित न होता हुआ बन्ध ही होता है। किन्तु सम्यग्दृष्टि के रागादि भावों के अभाव से बन्ध का निमित्त हुए बिना केवल मात्र निर्जरित होने से निर्जरित होता हुआ निर्जरा ही होती है।

२५८.शंका : तो क्या सराग सम्यग्दृष्टि को भी किसी अपेक्षा से कर्म निर्जरा संभव है?

समाधान : हाँ, देखें (स.सा.ता.वृ.गा. १९३)

अत्राह शिष्यः रागद्वेषमोहाभावे सति निर्जराकारणं भणितं सम्यग्दृष्टेस्तु रागादयः सन्ति ततः कथं निर्जरा कारणं भवतीति?

अस्मिन् पूर्व पक्षे परिहार :। अत्र ग्रन्थे वस्तुवृत्या वीतराग सम्यग्दृष्टेर्ग्रहणं, यस्तु चतुर्थ गुणास्थानवर्ति सराग सम्यग्दृष्टास्तस्य गौणवृत्या ग्रहणं, तत्र तु परिहारः पूर्वमेव भणितः। कथ मिति चेत्? मिथ्यादृष्टे : सकाशादसंयत सम्यग्दृष्टेः अनन्तानुबन्धि क्रोध-मान-माया-लोभ मिथ्यात्वोदयजनिताः श्रावकस्य चाऽप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभोदयजनिता रागादयो न सन्तीत्यादि। किं च सम्यग्दृष्टेः संवर पूर्विका निर्जरा भवति, मिथ्यादृष्टेस्तु गजस्नानवत् बन्ध पूर्विका भवति। तेन कारणेन मिथ्यादृष्टयपेक्षया। सम्यग्दृष्टेरबंधक इति। एवं द्रव्यनिर्जरा व्याख्यान रूपेण गाथा गता।( )

अर्थ : प्रश्न : राग-द्वेष-मोह का अभाव होने पर भोग आदि निर्जरा के कारण कहे गये है। परन्तु सम्यग्दृष्टि के तो रागादि होते है इसलिए उसे वे निर्जरा के कारण कैसे हो सकते है?

उत्तर :

१. इस ग्रन्थ में वस्तु वृत्ति से अर्थात् वास्तव में वीतराग सम्यग्दृष्टि का ग्रहण किया गया है।

२. सराग सम्यग्दृष्टि सम्बन्धी समाधान पहिले ही दे दिया गया है वह ऐसे कि – मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टि को अनंतानुबंधी चतुष्क और मिथ्यात्वोदय जनित रागादिक तथा श्रावक को अप्रत्याख्यान चतुष्क जनित रागादिक नहीं होते।

३. (वीतराग) सम्यग्दृष्टि की निर्जरा संवरपूर्वक होती है और मिथ्यादृष्टि की गजस्नानवत् बंधपूर्वक होती है। इस प्रकार द्रव्य निर्जरा के व्याख्यान रूप गाथा कही।

२५९. शंका : सम्यग्दृष्टि उदयागत सुख-दुःख को कैसे अनुभव करता है? किस कारण वह निर्जरा को प्राप्त होता है?

समाधान : देखो (स.स.ता.वृ.गा. १९४)

निरूपराग स्वसंवित्ति भावनोत्पन्न पारमार्थिक सुखाद्भिन्नं तत्सुखं दुःखं वा समुदीर्णं सत् सम्यग्दृष्टिजीवि रागद्वेषौ न कुर्वन् हेय बुद्धया वेदयति। न च तन्मयो भूत्वा अहं सुखी दुःखीत्याद्यहमिति प्रत्ययेनानु भवति। अध अहो ततः कारणात् निर्जरां याति स्वभावेन निर्जराया निमित्तं भवति। मिथ्यादृष्टेः पुनः उपादेय बुद्धया, सुख्यहं दुःख्यहमिति प्रत्ययेन बंध कारणं भवति।

अर्थ : निरूपराग स्वसंवित्ति की भावना से उत्पन्न पारमार्थिक सुख से भिन्न जो कर्मों की उदीर्णा से प्राप्त सुख व दुःख है उसमें सम्यग्दृष्टि जीव राग द्वेष न करता हुआ हेय बुद्धि से संवेदन अनुभव करता है। इस कारण से स्वभाव से निर्जरा के निमित्त कारण को प्राप्त होता है। किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ इत्यादि को उपादेय करके बंध का कारण होता है।

२६०. शंका : उपरोक्त बात को किसी उदाहरण द्वारा समझाइये?

समाधान : (स.सा.ता.वृ.गा. १९४) के उक्त प्रकरण के आगे देखें। वहाँ लिखा है कि –

यथा कोऽपि तस्करो यद्यपि मरणं नेच्छति तथापि तलवरेण गृहीतः सन् मरण-मनुभवति। तथा सम्यग्दृष्टिः यद्यप्यात्मोत्थ सुखमुपादेयं च जानाति,विषयसुखं च हेयं जानाति। तथापि चारित्र मोहोदय तलवरेण गृहीतः सन् तदनुभवति, तेन कारणेन निर्जरा निमित्तं स्यात्। इति भाव-निर्जरा व्याख्यानं गतम्।

अर्थ : जैसे कोई चोर यद्यपि मरण को नहीं चाहता है फिर भी सिपाही के द्वारा पकड़े जाने पर मरण का अनुभव करता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव यद्यपि आत्मा से उत्पन्न सुख और दुःख को उपादेय जानता है और विषय सुख को हेय जानता है। फिर भी चारित्र मोहोदय रूप सिपाही के द्वारा पकड़े हुये की तरह उसे अनुभव करता है इस कारण से निर्जरा के निमित्त है इस प्रकार भाव निर्जरा का व्याख्यान हुआ।

२६१.शंका : सम्यग्दृष्टि जीव को क्या सर्वथा आस्रव नहीं होता है?

समाधान : ऐसा नहीं कहना चाहिए कि सम्यग्दृष्टि सर्वथा आस्रव रहित निरास्रव है। क्योंकि आस्रव तो तेरहवें गुणस्थान तक चलता रहता है क्योंकि उसके अभी 'योग' प्रत्यय मौजूद है। फिर भी वीतराग सम्यग्दृष्टि त्रिगुप्ति युक्त निर्विकल्प समाधि में लीन होने के कारण उसको बुद्धि पूर्वक राग नहीं पाया जाता है इसलिए वह निरास्रव या अबंधक कह दिया जाता है जैसे कि - (स.सा.गा. १७७-१७८) में कहा है कि -

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मद्दिट्ठीस्स।
तम्हा आसव भावेण विणा हेदूं ण पच्चया होंति॥
हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादि तेसिमभावे ण बज्झंति॥

अर्थ : राग, द्वेष और मोह ये आस्रव (वीतराग/निश्चय) सम्यग्दृष्टियों को नहीं होते इसलिए आस्रव भाव के बिना द्रव्य प्रत्यय कर्म बंध के कारण नहीं होते।

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय ये चार प्रकार के हेतु आठ प्रकार के कर्मों के (आस्रव-बंध) के कारण कहे गये है और उनके भी कारण रागादि भाव है। इसलिए उनके अभाव से ज्ञानी को कर्म नहीं बंधते।

२६२.शंका : यथाख्यात चारित्र में अंतर्मुहूर्त से अधिक समय तक रहना शक्य नहीं है तो फिर वीतरागी ज्ञानी निरास्रव कैसे होंगे?

समाधान : ऐसा ही प्रश्न (स.सा.ता.वृ.गा. १७२) में उठाकर समाधान दिया गया है यथा -

यथाख्यात चारित्राधस्तादन्तर्मुहूर्तानन्तरं निर्विकल्प समाधौ स्थातुं न शक्यत इति भणितं पूर्व। एवं सति कथं ज्ञानी निरास्त्रव इति चेत् ज्ञानी तावदीहापूर्व रागादि-विकल्प-करणाभावन्निरास्त्रव एव। किन्तु सोऽपि यावत्कालं परमसमाधेरनुष्ठानाभावे सति शुद्धात्म स्वरूपं द्रष्टुं ज्ञातुं अनुचरितुं वा समर्थः तावत्कालं तस्यापि संबंधि यद्दर्शनं ज्ञानं चारित्रं तज्जघन्यभावेन सकषायभावेन अनीहितवृत्या परिणमति,तेन कारणेन स तु भेदज्ञानी...... विविध पुण्य कर्मणा बध्यते।

प्रश्न : यथाख्यात चारित्र से पहिले अन्तर्मुहूर्त के अनंतर निर्विकल्प समाधि में स्थित रहना शक्य नहीं है, ऐसा पहिले कहा गया है। ऐसे होने पर ज्ञानी निरास्त्रव कैसे हो सकता है?

उत्तर : ज्ञानी क्योंकि ईहा पूर्वक अर्थात्, अभिप्राय (बुद्धि) पूर्वक रागादि विकल्प नहीं करता है, इसलिए वह निरास्त्रव ही है। किन्तु जब तक परम सामायिक के अनुष्ठान के अभाव में रहता है तब वह भी शुद्धात्म स्वरूप को देखने, जानने व आचरण करने में असमर्थ रहता है, तब तक उसके भी तत्सम्बन्धी जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र है वे जघन्य भाव से अर्थात्, (रागादि) कषाय भाव से अनीहित वृत्ति से स्वयं परिणमते है। उसके कारण वह भेद ज्ञानी भी विविध प्रकार के पुण्य कर्म से बंधता है।

२६३.शंका : ज्ञानी वीतराग निश्चय सम्यग्दृष्टि किस कारण से अबंधक है और किस कारण बंधक है?

समाधान : इस शंका का समाधान देखें (स.सा.आ.गा. १७०-१७१)

ज्ञानी हि तावदास्त्रव भाव भावनाभिप्राया भावान्निरास्त्रव एव। यत्तु तस्यापि द्रव्य प्रत्ययाः प्रति समयमनेकप्रकारं पुद्गल कर्म बध्नन्ति तत्र ज्ञान गुण परिणाम एव हेतुः।

.......तस्यान्तर्मुहूर्त विपरिणामित्वात् पुनः पुनरन्यतयास्ति परिणामः। स तु यथाख्यातचारित्रावस्थाया अधस्तादवश्यंभाविराग सद्भावात् बंध हेतुरेव स्यात्।

अर्थ : (वीतराग निश्चय सम्यग्दृष्टि) ज्ञानी तो आस्त्रव भाव की भावना के अभिप्राय के अभाव के कारण निरास्त्रव ही है परन्तु उसे भी द्रव्य प्रत्यय प्रति समय अनेक प्रकार का पुद्गल कर्म बांधते है, वहाँ क्षायोपशमिक ज्ञान का

परिणमन ही कारण है क्योंकि वह अन्तर्मुहूर्त परिणामी है। इसलिए यथाख्यात (वीतराग) चारित्रावस्था से पहिले अवश्य ही राग भाव का सद्भाव होने से वह ज्ञान बंध का कारण है।

२६४.शंका : बुद्धिपूर्वक राग के अभाव को ही क्या निरास्त्रव कहते हैं?

समाधान : हाँ, देखों (स.सा.क. ११६ गा. १७२) में कहा है कि -

संन्यस्यन्निजबुद्धि पूर्वमनिशं रागं समग्रं स्वयं,
वारंवारमबुद्धिपूर्वमपि तं जेतुं स्वशक्तिं स्पृशन्।
उच्छिन्दन्परि वृत्तिमेव सकलां ज्ञानस्य पूर्णोभवन्
आत्मा नित्य निरास्त्रवो भवति हि ज्ञानी यदा स्यात्तदा॥

अर्थ : आत्मा जब ज्ञानी होता है, तब स्वयं अपने समस्त बुद्धि पूर्वक राग को निरन्तर छोड़ता हुआ अर्थात् न करता हुआ, और जो अबुद्धि पूर्वक राग है उसे भी जीतने के लिए बारम्बार स्वशक्ति से उखाड़ता हुआ ज्ञान को पूर्ण भाव रूप होता हुआ वास्तव में सदा निरास्त्रव है।

और भी देखें **(स.सा.आ.टी.गा. १७३-१७६)**

ज्ञानिनो यदि द्रव्य प्रत्यया: पूर्वबद्धाः-सन्ति,सन्तु तथापि स तु निरास्त्रव एव कर्मोदय कार्यस्य राग द्वेष मोह रूपस्यास्त्रवभावस्याभावे द्रव्य प्रत्ययानामबन्ध हेतुत्वात्।

अर्थ : ज्ञानी को यदि पूर्व बद्ध द्रव्य प्रत्यय विद्यमान है तो भले रहे, तथापि वह तो निरास्त्रव ही हैं क्योंकि कर्मोदय का कार्य जो राग-द्वेष-मोह रूप आस्त्रव भाव है उसके अभाव में द्रव्य प्रत्यय, बन्ध का कारण नहीं है।

२६५.शंका : बुद्धिपूर्वक राग और अबुद्धिपूर्वक राग का क्या तात्पर्य है?

समाधान : जब तक और जहाँ तक(१. गुण. से ६ गुण. तक) शुभाशुभ राग के संकल्प-विकल्प चलते है तब तक बुद्धि पूर्वक शुभाशुभ राग होता है तथा जहाँ (७ गुण. से १० वे गुण. तक) शुभाशुभ राग से रहित शुद्धोपयोग की दशा होती है वहां बुद्धि पूर्वक शुभाशुभ राग विषयक संकल्प-विकल्प तो नहीं होता है किन्तु शुभाशुभ कर्मोदय से पाया जाने वाला संकल्प-विकल्प रहित शुद्धोपयोग की दशा में अबुद्धि पूर्वक राग पाया जाता है।

२६६.शंका : सम्यग्दृष्टि का राग क्या मिथ्यादृष्टि की भांति तिर्यंच गति का कारण है?

समाधान : इस प्रश्न को निम्न प्रकार से (द्र.सं.टी. ४८) में इस प्रकार से किया गया है तथा उसका उत्तर भी दिया गया है।

प्र. आर्त्तध्यान सम्यग्दृष्टि को मिथ्यादृष्टि की भांति तिर्यंच गति का कारण क्यों नहीं होता है?

उ. सम्यग्दृष्टि जीव को निजशुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसी भावना के कारण तिर्यंच गति का कारण रूप संक्लेश नहीं होता।

२६७.शंका : अविरत सम्यग्दृष्टि आत्म सुख को उपादेय मानता है या उस सुख से युक्त होता है?

समाधान : इस शंका के समाधान में देखें (द्र. सं. टी. गा. ४५ पृ. १९४ पं. १०)

शुद्धात्म भावनोत्पन्न निर्विकार वास्तविक सुखामृतमुपादेयं कृत्वा संसार शरीर भोगेषु योऽसौ हेयबुद्धिः सम्यग्दर्शनशुद्धः स चतुर्थगुणस्थानवर्ती व्रत रहितो दर्शनिको भण्यते।

अर्थ : शुद्धात्म भावना से उत्पन्न निर्विकार यथार्थ सुख रूपी अमृत को उपादेय करके संसार, शरीर और भोगों में जो हेय बुद्धि है वह सम्यग्दर्शन से शुद्ध चतुर्थ गुणस्थान वाला व्रत रहित दर्शनिक है।

२६८.शंका : तो क्या स्वसंवेदन गम्य अतीन्द्रिय सुख योगियों को ही होता है?

समाधान : हाँ देखें (**स.सा.ता.तृ.गा. ४१५**)

समस्त विकल्प जाल रहितानां समाधिस्थ परमयोगिनां स्वसंवेदन गम्यमतीन्द्रिय सुखं......।

अर्थ : समस्त विकल्प जाल से रहित परम समाधि में स्थित परम योगियों के निर्विकल्प स्वसंवेदनगम्य अतीन्द्रिय सुख होता है।

२६९.शंका : आध्यात्मिक सुख किसे कहते है?

समाधान : देखें (**ज्ञा. श्लो. नं. २४ अध्याय २०**)

अपास्य करणग्रामं यदात्मन्यात्मना स्वयम्।
सेव्यते योगिभिस्तद्धि सुख माध्यात्मिकं मतम्॥

अर्थ : जो इन्द्रियों के विषयों के बिना ही अपने आत्मा में अपनी आत्मा से ही सेवन करने में आता है उसको ही योगीश्वरों ने आध्यात्मिक सुख कहा है।

२७०.शंका : लौकिक सुख व वीतराग/आत्मीक सुख में क्या अंतर है?

समाधान : देखें (मू.आ.गा. ११४६)

(१) **जं च काम सुहं लोए जं च दिव्व महा सुहं।**

वीदराग सुहस्सेदे णंतभागं पि णग्घंदि॥

अर्थ : लोक में विषयों से उत्पन्न सुख है और जो स्वर्ग में महा सुख है,वे सब वीतराग सुख के अनन्तवें भाग की भी समानता नहीं कर सकते हैं।

(२) **जं मुणि लहइ अणंत सुह णिय अप्पा झायंतु।**

तं सुह इदं वि ण लहइ देविहिं कोडि रमंति॥

अर्थ :अपनी आत्मा को ध्यावता परम मुनि जो अनंत सुख पाता है उस सुख को इन्द्र भी करोड़ देवियों के साथ रहता हुआ भी नहीं पाता है।

(३) **चक्कि कुरु फणि सुंरदिं देवहमिंदे जं सुहं तिकाल भावं।**

तत्तो अणंत गुणिदं सिद्धाणं ख ण सुहं होदि ॥ त्रि.सा.गा. ५६०॥

अर्थ : चक्रवर्ती, भोगभूमिज, धरणेन्द्र और अहमिन्द्र के इनके क्रमशः अनन्तगुणा अनन्तगुणा सुख है। इन सब का त्रिकाल में होने वाला अनन्त सुख एकत्रित करने पर भी सिद्धों के एक क्षण में होने वाला सुख अनन्त गुणा है।

(४) **यत्सुखं वीतरागस्य मुनेः प्रशम पूर्वकम्।**

न तस्यानन्त भागोऽपि प्राप्यते त्रिदशेश्वरैः ॥ ज्ञा. २१/३

अर्थ : जो सुख वीतराग मुनि के प्रथम रूप विशुद्धता पूर्वक है उसका अनन्तवाँ भाग भी इन्द्र को प्राप्त नहीं होता है।

२७१.शंका : क्या देवों को स्वाभाविक सुख संभव है?

समाधान : नहीं, देखिये (प्र.सा. गा. ७१) में कहा है -

सोक्खं सहाव सिद्धं, णत्थि सुराणं पि सिद्ध मुवदेसे।

ते देहवेदणट्ठा रमंति विसएसु रम्मेसु॥

अर्थ : जिनेन्द्र देव के उपदेश से सिद्ध है कि देवों के भी स्वभाव सिद्ध सुख नहीं है। वे (पञ्चेन्द्रिय मय) देह की वेदना से पीड़ित होने से रम्य विषयों में रमते है।

२७२.शंका : निश्चय धर्मध्यान किसे कहते है तथा वह किसे पाया जाता है?

समाधान : देखिये (भा.पा.टी.गा. ८१/३२२/२४)

क्षोभ : परिषहोपसर्ग निपाते चित्तस्य चलनताभ्यां विहीनो रहितः मोहक्षोभविहीन। एवं गुण विशिष्ट आत्मनः शुद्धबुद्धैकस्वभावस्य चित्चमत्कार लक्षणश्चिदानन्दरूपः परिणामो धर्म इत्युच्यते। स परिणामो गृहस्थानां न भवति। पञ्चसूना सहितत्वात्।

अर्थ : परिषह और उपसर्ग के समय चित्त का चलायमान होना क्षोभ है उससे रहित मोह क्षोभ विहीन है। ऐसे गुणों से विशिष्ट शुद्धबुद्ध स्वभावी आत्मा का चित्चमत्कार लक्षण चिदानन्द परिणाम धर्म कहलाता है पंचसून दोष सहित होने के कारण वह परिणाम गृहस्थों को नहीं होता है।

२७३.शंका : व्यवहार धर्मध्यान किन-किन गुणस्थानों में पाया जाता है?

समाधान : देखिये (वृ.द्र.सं.टी.गा. ४८/२०२)

तारतम्य वृद्धिक्रमेणासंयत सम्यग्दृष्टि देशविरत प्रमत्त संयताप्रमत्ताभिधान चतुर्गुणस्थानवर्ति जीव संभवं, मुख्य वृत्त्या पुण्यबंधकारणमपि परम्परया मुक्ति कारणं चेति धर्मध्यानं कथ्यते।

अर्थ : तारतम्य से बढ़ता हुआ असंयत सम्यग्दृष्टि, देशसंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त संयत इन चार गुणस्थानों में संभव मुख्य रूप से पुण्य बन्ध का कारण होते हुए भी परम्परा से मुक्ति का कारण धर्मध्यान कहा गया है।

२७४.शंका : तो क्या चारों गुणस्थानों में एक ही जाति का धर्म ध्यान पाया जाता है?

समाधान : नहीं, देखिये (त.अनु.गा. ४७) में कहा है कि –

मुख्योपचार भेदेन धर्म्यध्यान मिह द्विधा।

अप्रमत्तेषु तन्मुख्यमितरेष्वौपचारिकम्॥

अर्थ : धर्म ध्यान मुख्य (निश्चय) और उपचार (व्यवहार) के भेद से दो प्रकार का है। अप्रमत्त गुणस्थान में मुख्य तथा अन्य प्रमत्त गुणस्थानों में औपचारिक धर्म ध्यान होता है।

२७५.शंका : ध्यान किसे कहते है?

समाधान : देखिये (स.सि./८/२०/४३९/८)

चित्तविक्षेप त्यागो ध्यानम्।

अर्थ : चित्त के विक्षेप का त्याग करना ध्यान है।

२७६.शंका : भावना किसे कहते है?

समाधान : देखिये (पं.का.ता.वृ. ४३/८६/२)

पुनश्पुनश्चिन्तनं भावना।

अर्थ : बार-बार चिन्तन करना भावना है।

२७७.शंका : गृहस्थों को भी क्या शुद्ध भावना पाई जा सकती है?

समाधान : हाँ, शुद्धभावना यथावसर जरूर संभव है।

देखिये (प्र.सा.त.प्र.गा. २४८) में कहा भी है -

श्रावकाणामपि सामायिकादि काले शुद्ध भावना दृश्यते।

अर्थ : श्रावकों को भी सामायिकादि काल में शुद्ध भावना देखी जाती है।

२७८.शंका : तो क्या श्रावकों को शुद्धात्मा की भावना हो सकती है?

समाधान : हाँ, हो सकती है, कहा भी है (प.का.ता.वृ. १७०)

चतुर्थगुणस्थान योग्यमात्मभावनामपरित्यजन् सन् देवलोके कालं गमयति ततोऽपि जीवितान्ते स्वर्गादागत्य मनुष्यभवे चक्रवर्त्यादि-विभूति लब्ध्वापि पूर्वभव-भावित-शुद्धात्म भावना बलेन मोहं न करोति।

अर्थ : चतुर्थ गुणस्थान के योग्य आत्मभावना को नहीं छोड़ता हुआ वह देवलोक में काल गवाता है। पीछे स्वर्ग से आकर मनुष्य भव में चक्रवर्ती आदि की विभूति को प्राप्त करके भी पूर्व भव में भावित शुद्धात्म भावना के बल से मोह नहीं करता है।

२७९.शंका : शुद्धात्म भावना को अध्यात्म ग्रंथों में निश्चय धर्म ध्यान कहते है या अंतरंग धर्म ध्यान?

समाधान : इस प्रश्न के समाधान को देखें (वृद्धस.टी. ४८/२०१/२०४)

अध्यात्म भाषया पुनः सहजशुद्धपरमचैतन्य शालिनि निर्भरानन्द मालिनी भगवति निजात्मन्युपादेय बुद्धिं कृत्वा पश्चादनंत ज्ञानोऽहमनन्त सुखोऽहमित्यादि भावनारूपमभ्यन्तर धर्मध्यान मुच्यते। पञ्चपरमेष्ठि भक्त्यादि तदनुकूलशुभानुष्ठानं पुनर्बहिरंग धर्म ध्यानं भवति।

अर्थ : अध्यात्म भाषा के अनुसार सहज शुद्ध चैतन्य शालनी निर्भरानंद मालिनी भगवती निज शुद्धात्मा में उपादेय बुद्धि करके पीछे मैं अनन्त ज्ञान रूप हूँ, मैं अनन्त सुख रूप हूँ ऐसी भावना रूप आभ्यंतर धर्मध्यान कहा जाता है। पञ्चपरमेष्ठी की भक्ति आदि तथा तदानुकूल शुभानुष्ठान बहिरंग धर्मध्यान कहलाता है।

२८०.शंका : आत्म भावना को क्या निश्चय धर्मध्यान कह सकते है।

समाधान : नहीं कह सकते हैं – क्योंकि (मो.पा.टी.गा. २/३०५) में कहा है कि –

ये गृहस्थाअपि सन्तो मनागात्मभावनामासाद्य मासाद्यऽहं ध्यानिन इति ब्रूते ते जिनधर्म विराधकः मिथ्यादृष्टयो ज्ञातव्याः।

अर्थ : जो गृहस्थ होते हुए भी थोड़ी आत्म भावना को प्राप्त करके हम ध्यानी है ऐसा कहते है, वे जिनधर्म विराधक मिथ्यादृष्टि जानने चाहिए (भाव संग्रह में गा. ३८५) में कहा है कि गृहस्थों को निरालंब धर्मध्यान मानने वाला मूर्ख है।

२८१.शंका : तो क्या गृहस्थावस्था में कभी भी किसी भी काल में निश्चय धर्मध्यान नहीं हो सकता है?

समाधान : देखिये (ज्ञा. ४/१७) में कहा है कि –

खपुष्प मथवा श्रृङ्गं खरस्यापि प्रतीयते।
न पुनर्देशकालेऽपि ध्यान सिद्धि र्गृहाश्रमे॥

अर्थ : आकाश पुष्प अथवा गधे के सींग होना कदाचित् संभव है परंतु किसी भी देश, काल में गृहस्थाश्रम में ध्यान की सिद्धि होनी संभव नहीं है।

२८२.शंका : तो फिर मुनिराजों व गृहस्थों को निश्चय नय से कौन सा ध्यान होता है?

समाधान : देखिये (मो.पा.गा. ८३, ८५-८७)

णिच्छयणयस्य एवं अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं॥
एवं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण पुणसु।
संसारविणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं॥
गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कम्पं।
तं झाणे झाइज्जइ सावय दुक्खक्खयट्ठाए॥
सम्मत्तं जो झायदि सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो।
सम्मत्त परिणदो पुण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि॥

अर्थ : निश्चय नय का ऐसा अभिप्राय है कि जो आत्मा हि विषैं आप ही के अर्थी भले प्रकार रत होय सो योगी ध्यानि मुनि सम्यग्चारित्र वान भया संता निर्वाण कूं पावे है। इस प्रकार का उपदेश श्रमण के लिये किया गया है।

बहुरि अब श्रावकनि कूं कहिये है सो सुनो "कैसा कहिये है" संसार का तो विनाश करने वाला और सिद्ध जो मोक्ष ताका करने वाला उत्कृष्ट कारण है। प्रथम तो श्रावक कूं भले प्रकार निर्मल और मेरूवत अचल, चल-मल-अगाढ़ दूषण रहित अत्यन्त निश्चल ऐसा सम्यक्त्व कूं ग्रहण करि, तिसकूं ध्यान विषैं ध्यावना, कौन अर्थि? दुःख के क्षय अर्थि ध्यावना। जो जीव सम्यक्त्व को ध्यावे है सो जीव सम्यग्दृष्टि है, बहुरि सम्यक्त्व रूप परिणया संता दुष्ठ जे आठ कर्म तिनिका क्षय करै है।

२८३.शंका : योगी जन देह सहित होते हैं तो देह रहित का अनुभव कैसे करते हैं?

समाधान : देखिये (ज्ञा. ३२/९-११)

कथं तर्हि पृथक् कृत्वा देहाद्यर्थ कदम्बकात्।
आत्मानमभ्यसेद्योगी निर्विकल्प मतीन्द्रियम्॥
अपास्य बहिरात्मानं सुस्थिरेणान्तरात्मना।
ध्यायेद्विशुद्ध मत्यंतं, परमात्मानमव्ययम्॥
संयोजयति देहेन चिदात्मानं विमूढ़धीः।
बहिरात्मा ततो ज्ञानी पृथक् पश्यति देहिनम्॥

अर्थ : प्र. यदि आत्मा ऐसा है तो इसे देहादि पदार्थों के समूह से पृथक् करके निर्विकल्प व अतीन्द्रिय, ऐसा कैसे ध्यान करे?

उ. योगी बहिरात्मा को छोड़कर भले प्रकार स्थिर अंतरात्मा होकर अत्यन्त विशुद्ध अविनाशी परमात्मा का ध्यान करें। जो बहिरात्मा है सो चैतन्य रूप आत्मा को देह के साथ संयोजन करता है और ज्ञानी देह को देह से पृथक् देखता है।

२८४.शंका : अशुद्ध निश्चय में शुद्धोपयोग कैसे घटित होता है?

समाधान : इसे देखिये (वृ.द्र.सं.टी.गा. ३४/९७/१)

तत्र अशुद्ध निश्चयेन शुद्धोपयोगः कथं घटते इति चेत्तत्रोत्तरम् - शुद्धोपयोगे शुद्धबुद्धैकस्वभावो निजात्मा ध्येयस्तिष्ठति तेन कारणेन शुद्ध ध्येयत्वाच्छुद्धावलम्बनत्वाच्छुद्धात्म स्वरूप साधकत्वाच्च शुद्धोपयोगो घटते। स च संवर शब्द वाच्यः शुद्धोपयोगः संसारकारणभूत मिथ्यात्वरागाद्य शुद्धपर्यायवदशुद्धो न भवति तथैव फलभूतकेवलज्ञान लक्षणशुद्ध पर्याय वत् शुद्धोऽपि न भवति किंतु ताभ्यामशुद्धशुद्ध पर्यायाभ्यां विलक्षणं.... एकदेश निरावरणं च तृतीय भव स्थान्तरं भण्यते।

अर्थ : प्र. अशुद्ध निश्चय में शुद्धोपयोग कैसे घटित होता है?

उ. शुद्धोपयोग में शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव आत्मा ध्येय रूप से रहती है उस कारण से शुद्ध ध्येय होने से, शुद्ध अवलम्बन होने से और शुद्धात्म स्वरूप का साधक होने से शुद्धोपयोग घटित होता है। संवर शब्द का वाच्य वह शुद्धोपयोग न तो मिथ्यात्व, रागादि अशुद्ध पर्याय वत् अशुद्ध होता है और न ही केवलज्ञान पर्याय वत् शुद्ध ही होता है किंतु अशुद्ध व शुद्ध दोनों पर्यायों से विलक्षण एक देश निरावरण तृतीय अवस्थान्तर कही जाती है।

२८५.शंका : छद्मस्थों का ज्ञान शुद्ध है या अशुद्ध?

समाधान : देखिये (स.सा.ता.वृ. ४१४/५०८/२३)

केवल ज्ञानं शुद्धं छद्मस्थ ज्ञानं पुनरशुद्ध शुद्धस्य केवलज्ञानस्य कारणं न भवति।..... नैवं छद्मस्थज्ञानस्य कथंचिच्छुद्धा शुद्धत्वं तद्यथा - यद्यपि केवल ज्ञानापेक्षया शुद्धं न भवति तथापि मिथ्यात्व रागादि रहितत्वेन वीतराग सम्यक्त्व चारित्रसहितत्वेन च शुद्धम्। अभेद नयेन पुनः छद्मस्थानां संबन्धि भेदज्ञानमात्म स्वरूपमेव ततः कारणात्तेनैकदेश व्यक्ति रूपेणापि सकल व्यक्ति रूपं केवल ज्ञानं जायते, नास्ति दोषः।

अर्थ : प्र. केवल ज्ञान शुद्ध होता है और छद्मस्थ का ज्ञान अशुद्ध [वह शुद्ध (अशुद्ध) केवलज्ञान का कारण नहीं हो सकता है?]

उ. ऐसा नहीं है, क्योंकि छद्मस्थ ज्ञान में भी कथंचित् शुद्धाशुद्धत्व होता है। वह ऐसे कि यद्यपि केवलज्ञान की अपेक्षा तो वह शुद्ध नहीं होता, तथापि मिथ्यात्व रागादि से रहित होने के कारण तथा वीतराग चारित्र से सहित होने के कारण वह शुद्ध भी है। अभेद नय से छद्मस्थ सम्बन्धी भेदज्ञान भी आत्मस्वरूप ही है। इस कारण एक देश व्यक्ति रूप उस ज्ञान से सकल व्यक्ति रूप केवल ज्ञान हो जाता है इसमें कोई दोष नहीं है।

२८६.शंका : चतुर्थ गुणस्थान में अनंतानुबन्धी चतुष्क के अभाव में क्या उतने अंश रूप वीतराग चारित्र संभव है?

समाधान : नहीं, चतुर्थ गुणस्थान में अनंतानुबन्धी चतुष्क का अभाव होने पर भी तत् जन्य राग के अभाव को वीतराग चारित्र नहीं कह सकते हैं, क्योंकि वहाँ सराग के साथ अन्यथानुपत्ति हेतु है।

२८७.शंका : यह कैसे?

समाधान : देखिये **(स.सा.ता.वृ. १७७-१७८)**

चतुर्थ..........पंचम.........षष्ठ गुणस्थान रूप सराग चारित्राविनाभावि सराग सम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः।

अर्थ : चतुर्थ, पंचम, षष्ठ गुणस्थान में सराग चारित्र के अविनाभावि सराग सम्यक्त्व के साथ अन्यथानुपत्ति हेतु पाया जाता है अर्थात् इन गुणस्थान में सराग सम्यक्त्व के अलावा अन्य वीतराग सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं है।

२८८.शंका : तो फिर वीतराग के साथ अन्यथा हेतु कहाँ किस गुणस्थान में है?

समाधान : देखिये **(स.सा.ता.वृ. १७७-१७८)**

शुद्ध बुद्धैक स्वभाव परमात्मोपादेयत्वे सति तद्योग्य स्वकीय शुद्धात्म समाधि संजात सहजानंदैक स्वलक्षण सुखानुभूति मात्र स्वरूपाऽप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ति वीतराग चारित्राविनाभूत वीतराग सम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्ते रिति हेतुः।

अर्थ : शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव रूप परमात्मा उपादेय होने पर उसके योग्य अपनी शुद्धात्म संवित्ति से उत्पन्न सहज आनंद एक स्वलक्षण सुखानुभूति मात्र स्वरूप अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती वीतराग चारित्राविनाभूत वीतराग सम्यक्त्व की अन्यथा अनुपपत्ति है यह हेतु है।

२८९.शंका : क्या शुद्धात्म संवित्ति, सुखानुभूति, वीतराग चारित्र, वीतराग सम्यग्दर्शन सप्तम् गुणस्थान के नीचे नहीं पाये जाते है?

समाधान : नहीं पाये जाते हैं यही तो उपर्युक्त पूर्व समाधान में कहा था।

२९०.शंका : तो क्या वीतराग सम्यग्दर्शन सातवें गुणस्थान से प्रारंभ होता है?

समाधान : उपर्युक्त वाक्य में यही कहा है कि आध्यात्मिक वीतराग सम्यग्दर्शन अप्रमत्त गुणस्थान को आदि करके पश्चात् के सभी गुणस्थानों में होता है।

२९१.शंका : एक देश शुद्ध पारिणामिकभाव ध्यान रूप है या ध्येय रूप?

समाधान : देखिये (स.सा.ता.वृ. ४१४/५०९)

शुद्धपारिणामिकभाव: पुनरेकदेश व्यक्ति-लक्षणायां कथंचिद् भेदाभेद रूपस्य द्रव्यपर्यायात्मकस्य जीवपदार्थस्य शुद्धभावनावस्थायां ध्येयभूत द्रव्य रूपेण तिष्ठति न च ध्यान पर्याय रूपेण।

अर्थ : शुद्ध पारिणामिक भाव एक देश व्यक्ति लक्षण रूप से कथंचित् भेदाभेद द्रव्य पर्यायात्मक जीव पदार्थ की शुद्ध भावना कीअवस्था में ध्येय भूत द्रव्य रूप से रहता है, ध्यान की पर्याय रूप से नहीं।

२९२.शंका : पारिणामिक भाव ध्यान पर्याय रूप क्यों नहीं?

समाधान : यदि पारिणामिक भाव ध्यान पर्याय रूप मानोंगे तो फिर पर्याय की तरह परम पारिणामिक जीव द्रव्य को भी क्षण भंगुर मानना पड़ेगा।

२९३.शंका : परम पारिणामिक भाव शुद्ध भावना के समय ध्येय रूप होता है अथवा निश्चय ध्यान की अवस्था में ध्येय रूप होता है?

समाधान : निचली अवस्थाओं में, ४, ५, ६ गुणस्थानों में वह बार-बार भायी जाने वाली भावना रूप ध्येय होता है तथा उपरिम अवस्थाओं में ७-८ आदि गुणस्थानों में (विवक्षित समय तक स्थिर रहने वाली) निर्विकल्प ध्यान रूप ध्येय होता है। (और भी देखें शंका समाधान नं. २८५, २९०, २९१, २९४)

२९४.शंका : क्या गृहस्थों को योगियों की तरह शुद्धात्म भावना भी नहीं होती है?

समाधान : नहीं होती, देखिये **(प.प्र.टी.अ. २ दो. १४४ पृ. २६० पंक्ति १२-१५)**

विशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव परमात्म पदार्थ भावना प्रतिपक्ष भूतैः कषायेन्द्रियै : व्याकुली क्रियते मनः, मनः शुद्ध्यभावे गृहस्थानां तपोधनवत् शुद्धात्म भावना कर्तुं नायातीति। तथा चोक्तम् -

"कषायैरिन्द्रियै दुष्टैर्व्याकुली क्रियते मनः।

यतः कर्तुं न शक्येत भावना गृहमेधिभिः॥"

अर्थ : विशुद्ध ज्ञान, दर्शन स्वभावात्मक परमात्म पदार्थ की भावना के प्रतिपक्ष भूत जो कषाय और इन्द्रियाँ हैं उनसे गृहस्थों का मन सदा व्याकुलित रहता है अतः शुद्धि के अभाव में उन्हें मुनियों की तरह शुद्धात्म भावना नहीं होती है कहा भी है -

दुःख, कषाय तथा इन्द्रियाँ मन को व्याकुल करती है इसलिए गृहस्थों को शुद्धात्म भावना शक्य नहीं है।

(और भी देखें शंका समाधान नं. २८६, २८७, २८८, २८९)

साधु धर्मधुरां धत्ते दोषं वदति दुर्जनः।
धनी दोग्धि यतो धेनुं हस्तौ स्पृशति तष्करः ॥ सु. स. ९४४॥

अर्थ : साधु पुरुष धर्म का भार धारण करता है और दुर्जन उसके दोष कहता है क्योंकी धनी मनुष्य गाय को दुहता है और चोर उसके हाथ पकड़ता है।

२९५. शंका : शुद्धोपयोग किसे कहते है?

समाधान : शुद्धोपयोग अध्यात्म शास्त्रों में अनेक अर्थों में प्रयुक्त है -

१. **निश्चय रत्नत्रयात्मक शुद्धोपयोग............(प्र.सा.त.प्र. ९/११/१२)**

२. **निर्मोह शुद्धात्म संवित्ति लक्षणेन शुद्धोपयोगेन....(वही-१५/१९/१६)**

३. **जीवितमरणादि समता भाव लक्षण परमोपेक्षा संयम रूप शुद्धोपयोगेन ..... (वही - १७/२३/१३)**

४. **शुद्धात्मन : सकाशादन्यबाह्याभ्यन्तर परिग्रह रूपं सर्वत्यज्य मियुत्सर्गो 'निश्चय नयः' सर्वपरित्यागः परमोपेक्षासंयमो वीतराग चारित्रं शुद्धोपयोग इति यावदेकार्थः। (वही - २३०/३१५/८)**

भावार्थ :

१. शुद्धोपयोग निश्चयरत्नत्रयात्मक होता है।

२. मोह रहित शुद्धात्मा की संवित्ति है लक्षण जिसका ऐसा शुद्धोपयोग है।

३. जीवन-मरण आदि में समता भाव लक्षण वाला परम उपेक्षा संयम रूप शुद्धोपयोग होता है।

४. शुद्धात्मा से भिन्न बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह सभी प्रकार से त्याग उत्सर्ग है उसे ही निश्चय नय, सर्व परित्याग, परम उपेक्षा संयम, वीतराग चरित्र तथा शुद्धोपयोग कहते है ये सभी एकार्थवाची शब्द है।

२९६. शंका : शुद्धोपयोग के लक्षण को स्पष्ट कीजिए।

समाधान : देखिये (प्र.सा.त.प्र.गा. १५९) में कहा है कि -

ज्ञानेन निर्वृत्त ज्ञानात्मकं केवलज्ञानान्तर्भूतानन्तगुणात्मकं निजात्मानं शुद्धध्यान प्रतिपक्षभूत समस्त मनोरथरूप चिन्ताजाल त्यागेन ध्यायामीति शुद्धोपयोगलक्षणं ज्ञातव्यं।

अर्थ : जो ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान रूप केवलज्ञान में समाहित अनंत गुणात्मक अपनी आत्मा को शुद्धध्यान के प्रतिपक्षी मन विषयक सभी प्रकार के चिन्ता जाल से रहित होकर ध्याता हूँ इस प्रकार शुद्धोपयोग के लक्षण को जानना चाहिए।

२९७.शंका : शुद्धोपयोग के पर्यायवाची नाम कौन-कौन है?

समाधान : देखिये (प.पं.वि. ४/६४) में कहा है कि -

साम्यं स्वास्थ्यं समाधिश्च योगश्चेतो निरोधनम्।

शुद्धोपयोग इत्येते, भवन्येकार्थ वाचकाः॥

अर्थ : साम्य, स्वास्थ्य, समाधि, योग, चित्तनिरोध और शुद्धोपयोग ये शब्द एक ही अर्थ के वाचक है।

२९८.शंका : 'साम्य' किसे कहते है?

समाधान : देखिये प.पं.वि. ४/६५

नाकृति र्नाक्षरं वर्णो नो विकल्पश्च काश्चन।

शुद्धं चैतन्य मेवैकं यत्र तत्साम्य मुच्यते॥

अर्थ : जहाँ न कोई आकार है, न अकार आदि अक्षर है, न कृष्ण नील आदि वर्ण है, और न कोई विकल्प ही है किन्तु जहाँ केवल एक चैतन्य स्वरूप ही प्रतिभासित होता है उसी को साम्य कहा जाता है।

२९९.शंका : निर्मोह शुद्धात्म संवित्ति रूप लक्षण से जिसे अध्यात्म भाषा में शुद्धोपयोग कहते है उसे ही आगम भाषा में पृथकत्व वितर्क वीचार नामक प्रथम शुक्ल ध्यान कहा जाता है ऐसा (प्र.सा.त.प्र. १५/१९/१६) में कहा है तो क्या शुक्ल ध्यान रूप ही शुद्धोपयोग होता है?

समाधान : नहीं सर्वथा ऐसा नहीं, किन्तु निर्विकल्प वीतराग धर्मध्यान रूप भी शुद्धोपयोग होता है। देखिये (स.सा.ता.वृ. २१५)

"परमार्थ शब्दाभिधेयं साक्षात्मोक्षकारणभूतं शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणं परमागम भाषया वीतराग धर्मध्यानशुक्लध्यान स्वरूपं स्वसंवेद्य शुद्धात्मपदं परमसमरसीभावेन अनुभवति न चान्यः।"

अर्थ : परमार्थ शब्द के द्वारा कहा जाने वाला तथा साक्षात् मोक्ष का कारण ऐसा जो, शुद्धात्म संवित्ति है लक्षण जिसका और आगम भाषा में जिसे वीतराग धर्मध्यान या शुक्ल ध्यान कहते है उस स्वसंवेदन गम्य शुद्धात्म पद को परम समरसी भाव से अनुभव करता है।

३००.शंका : शुक्ल ध्यान गृहस्थों को नहीं पाया जाता है तो क्या वीतराग धर्मध्यान भी नहीं पाया जाता है?

समाधान : हाँ, गृहस्थाश्रम में वीतराग धर्मध्यान भी नहीं होता इसे तो शंका क्रमांक १८६ के उत्तर में आप देख ही चुके हो।

३०१.शंका : शुद्धोपयोग का पात्र या शुद्धोपयोगी कौन है?

समाधान : देखिये (प्र. सा.गा. १४)

सुविदिदपयत्थ सुत्तो संजमतव संजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुखो भणिदो सुद्धोवओगो त्ति॥

अर्थ : जिन्होंने पदार्थों और सूत्रों को भलीभांति जान लिया है, जो संयम और तप युक्त है, जो वीतराग है और जिन्हें सुख-दुःख समान है ऐसे गुणों से विशिष्ट श्रमण/मुनिराज को ही शुद्धोपयोगी कहा गया है।

३०२.शंका : शुद्धोपयोग यह संज्ञा कैसे सिद्ध होती है?

समाधान : देखिये (वृ.द्र.सं.टी. ३४/९७/२)

शुद्धोपयोगे : शुद्धबुद्धैक स्वभावो निजात्मा ध्येयस्तिष्ठति तेन कारणेन शुद्ध ध्येयत्वाच्छुद्धावलम्बनत्वाच्छुद्धात्म स्वरूप साधकत्वाच्च शुद्धोपयोगो घटते।

अर्थ : शुद्धोपयोग में शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव का धारक जो स्व आत्मा है सो ध्येय होता है, इस कारण शुद्ध ध्येय होने से, शुद्ध आलम्बनपने से तथा शुद्धात्म स्वरूप का साधक होने से शुद्धोपयोग सिद्ध होता है।

(और भी देखें शंका समाधान नं. ३४४-३४५)

३०३.शंका : वारसाणुपेक्खा में कहा है कि शुद्धोपयोग से धर्म तथा शुक्ल ध्यान होता है वह बात समझ में नहीं आई है कृपया स्पष्ट कीजिए।

समाधान : देखिये (वारसाणुपेक्खा गा. ६४)

सुद धुव जोगेण पुणो धम्मं सक्कं च होदि जीवस्स।
तम्हा संवर हेदू झाणोत्ति विचिंतए णिच्चं॥

अर्थ : शुद्धोपयोग से जीव के धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान होते है इसलिए संवर का कारण ध्यान है ऐसा हमेशा विचार करना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि उक्त गाथा वीतराग निर्विकल्प निश्चय धर्म ध्यान की मुख्यता से कही गई है जिसका सीधा अर्थ यह हुआ कि वीतराग निर्विकल्प धर्म ध्यान शुद्धोपयोग पूर्वक ही होता है।

३०४.शंका : क्या शुभोपयोगियों को शुद्धात्मानुराग पाया जाता है?

समाधान : हाँ, शुभोपयोगियों को शुद्धात्मानुराग नियमतः पाया ही जाता है देखिये (प्र.सा.त.प्र.टी.गा.२४७)

शुभोपयोगिनां हि शुद्धात्मानुरागयोगि चारित्रतया, समाधिगत शुद्धात्मवृत्तिषु श्रमणेषु.... शुद्धात्मवृत्ति त्राणनिमित्ता श्रमापनयनप्रवृत्तिश्च न दृश्येत्।

अर्थ : शुभोपयोगियों के शुद्धात्मा के अनुराग युक्त चारित्र होता है इसलिए जिन्होंने शुद्धात्म परिणति प्राप्त की है, ऐसे श्रमणों के प्रति जो वंदनादि....... तथा शुद्धात्म परिणति की रक्षा की निमित्तभूत जो श्रम दूर करने की प्रवृत्ति है वह शुभोपयोगियों के लिए दूषित नहीं है।

३०५.शंका : शुभोपयोगी श्रमणों को क्या राग के संयोग से भी शुद्धात्मानुभव होता है?

समाधान : शुद्धभावनारूप या सराग रूप सविकल्प शुद्धात्मानुभव होता है। देखिये (प्र.सा.त.प्र.टी. २५४)

एवमेष शुद्धात्मानुरागयोगि प्रशस्त चर्यारूप उपवर्णितः शुभोपयोगः तदयं, शुद्धात्मप्रकाशिकां समस्त विरतिमुपेयुषां....रागसंयोगेन शुद्धात्मनोऽनुभवात्क्रमतः परमनिर्वाण सौख्यकारणत्वाच्च, मुख्यः।

अर्थ : इस प्रकार शुद्धात्मानुराग युक्त प्रशस्त चर्या रूप जो यह शुभोपयोग वर्णित किया गया है वह यह शुभोपयोग शुद्धात्मा की प्रकाशक सर्व विरति को प्राप्त श्रमणों के राग के संयोग से शुद्धात्मा का अनुभव होता हैं और क्रमशः परम निर्वाण सौख्य का कारण होता है।

(और भी देखें शंका समाधान नं. ३४५ से ३५१)

३०६.शंका : शुद्धात्मानुरागी क्या शुभोपयोगी ही है?

समाधान : हाँ, देखिये (प्र.सा.त.प्र.टी. २४६)

शुभोपयोगि श्रमणानां शुद्धात्मानुरागयोगि चारित्रत्वलक्षणम्।

अर्थ : शुद्धात्मा के अनुरागयुक्त चारित्र शुभोपयोगी श्रमणों का लक्षण है।

३०७.शंका : क्या पृथकत्ववितर्क विचार नामक शुक्ल ध्यान में भी पूर्णत: वीतरागता या निर्विकल्पता नहीं पाई जाती है?

समाधान : हाँ, देखिये (वृ.द्र.सं.टी. ४८/२०३/७)

यद्यपि ध्याता पुरुष: स्वशुद्धात्म संवेदनं विहाय वहिश्चिंतां न करोति तथापि यावतांशेन स्वरूपे स्थिरत्वं नास्ति तावतांशेनानीहितवृत्त्या विकल्प: स्फुरंति, तेन कारणेन पृथकत्व वितर्क वीचारं ध्यानं भण्यते।

अर्थ : यद्यपि ध्यान करने वाला पुरुष निज शुद्धात्म संवेदना को छोड़कर बाह्य पदार्थों की चिंता नहीं करता तथापि जितने अंश में उस पुरुष के अपने आत्मा में स्थिरता नहीं है उतने अंशों में अनिच्छित वृत्ति से विकल्प उत्पन्न होते है, इस कारण इस ध्यान को ''पृथकत्व वितर्क वीचार'' कहते है।

३०८.शंका : शुद्धोपयोग अध्यात्म ग्रंथों में किस-किस गुणस्थानों में माना है?

समाधान : देखिये (वृ.द्र.सं.टी. गा. ३४ पृ. ९६)

अप्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंतं जघन्य मध्यमोत्कृष्ट भेदेन विवक्षतैक देश शुद्धनयरूप शुद्धोपयोगो वर्तते।

अर्थ : अप्रमत्त नामक सातवें गुणस्थान से लेकर क्षीण कषाय नामक बारहवें गुणस्थानों में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से विवक्षित एकदेश शुद्धनय रूप शुद्धोपयोग वर्तता है।

३०९.शंका : शुभोपयोग क्या शुद्धोपयोग का साधक है?

समाधान : देखिये (वृ.द्र.सं.टी. ३४/९६) में कहा है कि -

असंयत सम्यग्दृष्टि श्रावकप्रमत्त संयतेषु पारम्पर्येण शुद्धोपयोग साधक उपर्युपरि तारतम्येन शुभोपयोगो वर्तते।

अर्थ : असंयत सम्यग्दृष्टि श्रावक और प्रमत्त संयत नामक जो (४, ५, ६) तीन गुणस्थान है इन में परम्परा से शुद्धोपयोग का साधक ऊपर-ऊपर तारतम्यता से शुभोपयोग रहता है।

३१०.शंका : अपहृत संयम क्या सराग चारित्र है?

समाधान : हाँ, अपहृत संयम सराग चारित्र है। देखिये (वृ.द्र.सं.टी. ४५/१९६)

तच्चाराधनादि चरण शास्त्रोक्त प्रकारेण पञ्चमहाव्रत समिति त्रिगुप्ति रूप मप्यपहृत संयमाख्यं शुभोपयोग लक्षणं सरागचारित्राभिधानं भवति।

अर्थ : वह चारित्र-मूलाचार, भगवती आराधना आदि चरणानुयोग के शास्त्रों में कहे अनुसार पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति रूप होता हुआ भी अपहृत संयम नामक शुभोपयोग लक्षण वाले सराग चारित्र नाम वाला होता है।

३११.शंका : एक देश परित्याग, देश संयम का नाम है या अपहृत नामक सकल संयम का?

समाधान : देखिये (प्र.सा.त.प्र. २३०/३१५/१०)

अपवादो व्यवहारनय एकदेशपरित्यागस्तथाचापहृत संयमः सराग चारित्रं शुभोपयोग इति यावदेकार्थः।

अर्थ : अपवाद, व्यवहार नय, एकदेश परित्याग, अपहृत संयम, सराग चारित्र और शुभोपयोग ये सब एकार्थवाची है।

३१२.शंका : निश्चय रत्नत्रय तथा व्यवहार रत्नत्रय में कौन साध्य है और कौन साधक?

समाधान : देखिये (वृ.द्र.सं.टी. ३५/१४९/५)

निश्चय रत्नत्रयसाधक व्यवहार रत्नत्रय रूपस्य शुभोपयोगस्य.....

अर्थ : निश्चय रत्नत्रय को साधने वाला व्यवहार रत्नत्रय रूप शुभोपयोग है।

३१३.शंका : क्या शुद्धात्मानुभूति के सद्भाव में शुद्धोपयोग होता है?

समाधान : देखिये (प.प्र.टी. १/६८)

शुद्धात्मानुभूति सद्भावे तु शुद्धोपयोगेन परिणम्य मोक्षं च करोति।

अर्थ : शुद्धात्मानुभूति के सद्भाव में शुद्धोपयोग से परिणमन कर मोक्ष को प्राप्त करता है।

३१४.शंका : क्या वीतराग चारित्र व्रत, समिति, गुप्ति आदि रूप बहिरंग चारित्र के होने पर ही होता है?

समाधान : हाँ, देखिये (प्र.सा.त.प्र.गा. ९२)

व्रत समिति गुप्त्यादि बहिरंग चारित्रानुष्ठान वशेन स्वशुद्धात्मनि निश्चल परिणतिरूप वीतराग चारित्र परिणमत्वात् परमवीतरागचारित्रे सम्यगभ्युत्थितः उद्यतः.... स श्रमण एव।

अर्थ : व्रत, समिति, गुप्ति आदि बहिरंग चारित्र के अनुष्ठान के वश से अपनी शुद्धात्मा में निश्चल परिणति रूप वीतराग चारित्र रूप परिणमन होने से परम वीतराग चारित्र में अच्छी तरह उद्यत है वह श्रमणों में ही संभव है (इतर में नहीं।)

३१५. शंका : कालादि लब्धि के वश से ही जीव अपनी आत्मा के प्रति सम्यक्श्रद्धान, ज्ञान तथा चारित्र पर्याय से परिणमन करते है क्या वह ही परिणाम आगम भाषा में औपशमिक, क्षायिक या क्षायोपशमिक कहा जाता है? क्या उसे ही शुद्धात्माभिमुख परिणाम रूप शुद्धोपयोग कहते है?

समाधान : हाँ, देखिये (स.सा.ता.वृ. गा./३२० पृ. ८०/१७)

तत्र च यदा कालादि लब्धि वशेन भव्यत्वशक्तिव्यक्तिर्भवति तदायं जीवः सहज शुद्ध परिणामिक भाव लक्षण निज परमात्म द्रव्य सम्यक् श्रद्धान ज्ञानानुचरण पर्यायेण परिणमति तच्च परिणमनम् - आगम भाषयौपशमिक क्षायोपशमिक क्षायिकं भावत्रयं भण्यते। अध्यात्म भाषया पुनः शुद्धात्माभि मुख परिणामः शुद्धोपयोग इत्यादि पर्याय संज्ञां लभते।

अर्थ : काल लब्धि वश भव्यत्व शक्ति का प्रकटीकरण पारिणामिक भाव है तब यह जीव सहज शुद्ध पारिणामिक भाव लक्षण स्वरूप अपने परमात्म द्रव्य के प्रति श्रद्धान, ज्ञान तथा आचरण रूप पर्याय से परिणत होता है, तब वह परिणमन आगम भाषा में औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक इन तीन प्रकार के भावों से (यथायोग्य) कहा जाता है। तथा अध्यात्म भाषा में शुद्धात्माभिमुख परिणाम - शुद्धोपयोग इत्यादि पर्याय के नाम को प्राप्त होता है।

३१६. शंका : शुद्धात्माभिमुख से क्या अर्थ निकला?

समाधान : जिन्होंने रत्नत्रय को प्राप्त कर लिया है वे ही शुद्धात्माभिमुख रूप/शुद्धोपयोग को प्राप्त करते है।

३१७. शंका : क्या जिस प्रकार शुद्धात्मा योगियों को प्रत्यक्ष होता है वैसा गृहस्थों को नहीं होता है?

समाधान : नहीं, प्रत्यक्ष तो नहीं होता है किन्तु उन्हें अनुमान ज्ञान रूप परोक्ष होता है।

३१८.शंका : गृहस्थों को शुद्धात्मा परोक्ष रूप से कैसे प्रकट होता है।

समाधान : देखिये (पं.का.ता.वृ.गा. १२७ पृ. १९०)

यद्यप्यनुमानेन लक्षणेन परोक्ष ज्ञानेन व्यवहार नयेन धूमादग्निवद शुद्धात्मा ज्ञायते, तथापि रागादि विकल्प रहित स्वसंवेदन ज्ञानसमुत्पन्न परमानन्द रूपानां कुलत्व सुस्थित वास्तव सुखामृत जलेन पूर्ण कलशवत् सर्व प्रदेशेषु भरितावस्थानां परमयोगिनां यथा शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति तथेतराणां न भवत्यती लिंग ग्रहण:।

अर्थ : यद्यपि अनुमान लक्षण वाले परोक्ष ज्ञान से व्यवहार नय से धूम से अग्नि के ज्ञान की तरह अशुद्धात्मा जाना जाता है फिर भी रागादि विकल्प रहित स्वसंवेदन ज्ञान से उत्पन्न परमानंद रूप अनाकुलत्व, अच्छी तरह से स्थित, वास्तविक सुख रूपी अमृत से सभी आत्मप्रदेशों में भरे हुए पूर्ण कलश की तरह परम योगियों को जैसे शुद्धात्मा प्रत्यक्ष होता है वैसा अन्य (गृहस्थों) को नहीं होता है इसलिए अलिंग ग्रहण कहा है।

३१९.शंका : गृहस्थों को अनुमान प्रत्यक्ष से किस प्रकार से शुद्धात्मा जानी जाती है?

समाधान : जैसे धूम से अग्नि का अनुमान किया जाता है वैसे ही अनंतज्ञानोऽहं आदि भावना रूप अनुमान के द्वारा गृहस्थों में भी आत्मा जानी जाती है।

३२०.शंका : योगी जन जिस प्रकार अग्निवत् आत्मा को प्रत्यक्ष देखते है तो गृहस्थ वैसा क्या किंचित भी नहीं देख सकते है?

समाधान : नहीं, साक्षात् अग्नि के ज्ञान में तथा धूम से होने वाले अग्नि के ज्ञान में बहुत अंतर है, एक प्रत्यक्ष है तो दूसरा परोक्ष है।

३२१.शंका : परिग्रहादि से भिन्न साधुजन ही अपनी आत्मा को सम्यक् प्रकार से जान सकते है गृहस्थ नहीं जान सकते है?

समाधान : देखिये (प.प्र.अ. २ दोहा ४९ टी. पृ. १७०)

चतुर्दशाभ्यान्तर परिग्रहाः क्षेत्र वास्तु .... बाह्य परिग्रहाः इत्थं भूतान् बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहान् जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृत कारितानुमतैश्च त्यक्त्वा शुद्धात्मोपलम्भलक्षणे वीतराग निर्विकल्प समाधौ स्थित्वा च यो बाह्याभ्यंतर परिग्रहाद्भिन्नात्मानं जानाति स परिग्रहस्योपरि रागद्वेषौ न करोति अत्रेदं व्याख्यानं एवं गुण विशिष्ट निर्ग्रन्थस्यैव शोभते न च सपरिग्रहस्येति।

अर्थ : चौदह अंतरंग परिग्रह तथा क्षेत्र वास्तु आदि (दस प्रकार का) बाह्य परिग्रह होता है इस प्रकार तीनों लोक तथा तीनों कालवर्ती बाह्याभ्यन्तर परिग्रह को भी मन, वचन, काय, कृत, कारित और अनुमोदना के द्वारा त्याग कर शुद्धात्मोपलम्भ है लक्षण जिसका ऐसे वीतराग निर्विकल्प समाधि में स्थित होकर जो बाह्याभ्यंतर परिग्रह से भिन्न आत्मा को जानता है वह परिग्रह के ऊपर राग-द्वेष नहीं करता। यहाँ यह व्याख्यान इस प्रकार के गुणों से विशिष्ट निर्ग्रंथ को ही शोभा देता है परिग्रहवान् अर्थात् गृहस्थ को नहीं।

३२२.शंका : श्रुतज्ञान तो परोक्ष है उसे प्रत्यक्ष आप कैसे कहते हो?

समाधान : इस प्रश्न के समाधान को समाधान नं. २४४ में दिया जा चुका है वहाँ से देखे।

३२३.शंका : जैसे योगि मन के द्वारा अपनी आत्मा को प्रत्यक्ष जानते है वैसे गृहस्थ भी तो मन के द्वारा ही जानते है तो दोनों का जानना समान ही तो हुआ?

समाधान : नहीं, समान नहीं भले ही मन का आलम्बन दोनों में पाया जाता है तो भी एक निर्विकल्प ध्यान रूप है तो दूसरा सविकल्प भावना रूप है। यही दोनों में अंतर है जैसे धूम व अग्नि को एक मानना गलत है उसी प्रकार निर्विकल्प ध्यान तथा सविकल्प भावना को एक मानना गलत है। योगी सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के द्वारा आत्मा को प्रत्यक्ष जानते है गृहस्थ अनुमान ज्ञान के द्वारा परोक्ष रूप से जानते है।

३२४.शंका : अनंतानुबंधी आदि के अभाव से तद्विषयक राग का अभाव होने पर भी क्या यहाँ उतने अंश रूप को मुख्य रूप से ग्रहण नहीं किया जाता है?

समाधान : हाँ, देखिये इस प्रश्न के समाधान को समाधान नं. १३१, १८१, २४७, २४८, २४९

३२५.शंका : जिनेन्द्र वचन को ही आप प्रमाणित क्यों मानते है?

समाधान : देखिये इसके समाधान में (आ.मी. श्. नं. ६)

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्ति शास्त्राऽविरोधिवाक्।

अविरोधो यदिष्टं ते, प्रसिद्धेन न बाध्यते॥

अर्थ : हे महावीर प्रभो! आप निर्दोष है क्योंकि आपके वचन युक्तिशास्त्र से अविरोधी है। क्योंकि आपका जो इष्ट है अर्थात्, जीवादि तत्त्व प्ररूपणा रूप अनेकान्त शासन है वह प्रसिद्ध से (प्रमाण से) बाधित नहीं है।

३२६.शंका : आत्मा में राग-द्वेष कैसे उत्पन्न होते है तथा वे नष्ट कैसे होंगे?

समाधान : देखिये (आ. अनु. श्लो. नं. १८२)

मोहबीजा द्रतिद्वेषौ, बीजान्मूलाङ कुराविव।

तस्माज्ज्ञानाग्निना, दाह्यो तदेतौ निर्दिधिक्षुणा॥

अर्थ : जैसे बीज से वृक्ष की जड़ और अंकुरण होता है वैसे ही मोह रूपी बीज से आत्मा में राग-द्वेष उत्पन्न होते है। इसलिए जो जीव राग-द्वेष का नाश करना चाहते है उन्हें ज्ञान रूपी अग्नि से मोह को दग्ध करना चाहिए।

३२७.शंका : स्वभाव आराधना किसे कहते है?

समाधान : देखिये (वृ. न. च. गा. ३५७)

समदा तह मज्झत्थं सुद्धो भावो य वीयरायत्तं।

तह चारित्तं धम्मो सहाव आराहणा भणिया॥

अर्थ : समता, माध्यस्थ, शुद्धभाव, वीतरागता, चारित्र, धर्म तथा स्वभाव की आराधना ये सब एकार्थवाची शब्द है।

३२८.शंका : क्या औदयिक भाव सर्वथा बंध का ही कारण है?

समाधान : कथन दो प्रकार से किया जाता है एक अपेक्षाकृत दूसरा सर्वथा। उसमें औदयिक भाव अपेक्षाकृत दृष्टि से बंध का कारण माना गया है यथा (जयधवला पु. १ पृ. ५-८) पर कहा है कि -

ओदइया बंधयरा उवसम खय मिस्सया य मोक्खयरा।

भावो दु पारिणमिओ करणोभय वज्जिओ होइ॥

अर्थ : औदयिक भाव से कर्म बंध होता हैं, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। मिश्र भावों से मोक्ष होता है परन्तु पारिणामिक भावों से मोक्ष और बंध नहीं होता अर्थात्, पारिणामिक भाव बंध व मोक्ष का कारण नहीं है। कथन अपेक्षा कृत ही जानना चाहिए सर्वथा नहीं। इसे प्रवचन सार तात्पर्यवृत्ति गाथा ४५ में इस प्रकार समझाया है कि .... 'औदयिका भावाःबंधकारणम्' इत्यागमवचनम् तर्हि वृथा भवति। परिहारमाह – औदयिका भावा बंधकारणं भवन्ति, परं किन्तु मोहोदयसहिताः। द्रव्यमोहोदयेऽपि सति यदि शुद्धात्मभावनाबलेन भावमोहेन न परिणमिति तदा बन्धोन भवति। यदि पुनः कर्मोदय मात्रेण बन्धो भवति तर्हि संसारिणां सर्व दैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वात्सर्वदैवबन्ध एव, न मोक्ष इत्याभिप्रायः।

अर्थ : प्रश्न : औदयिक भाव बंध के कारण है यह आगम वचन वृथा हो जायेगा?

उत्तर : औदयिक भाव बंध के कारण होते है किन्तु मोह के उदय सहित होने पर ही। द्रव्यमोह के उदय होने पर भी यदि (यह जीव) शुद्धात्मभावना के बल से भाव मोहरूप से परिणमन नहीं करता है तो बंध नहीं होता है। यदि कर्मोदय मात्र से बंध हुआ करता हो तो संसारी जीवों के सर्वदा ही कर्म का उदय विद्यमान होने के कारण सदा बंध ही होता रहता है, होता रहेगा, कभी मोक्ष नहीं होता (कभी मोक्ष नहीं हो सकेगा)।

३२९.शंका : बंध का मुख्य कारण क्या है?

समाधान : देखिये (आ. मी. श्लो. ९८)

अज्ञानान्मोहितो बन्धो नाऽज्ञानाद्वीत मोहतः।

ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा॥

अर्थ : मोह सहित अज्ञान से बंध होता है किन्तु मोह रहित अज्ञान से बंध नहीं होता है, मोह रहित अल्पज्ञान से (भी) मोक्ष होता है किन्तु मोह सहित अल्प ज्ञान से कर्म बंध ही होता है।

३३०.शंका : बंध नहीं होने का सैद्धान्तिक हेतु क्या है?

समाधान : देखिये – (प्र.सा. त.प्र. गा. १६५)

किं च परमचैतन्यपरिणतिलक्षण परमात्वतत्त्वभावनारूप धर्मध्यान शुक्लध्यानबलेन यथा जघन्यस्निग्ध शक्तिस्थानीये क्षीणरागत्वे सति जघन्यरुक्षशक्तिस्थानीये क्षीणद्वेषत्वे च सति जलबालुकयोरिव जीवस्य बन्धो न भवति, तथा पुद्‌गलपरमाणोरपि जघन्य स्निग्धरुक्ष शक्तिप्रस्तावे बन्धो न भवतीत्यभिप्राय: ।

अर्थ : परमचैतन्य परिणति लक्षण परमात्म तत्त्व की भावना रूप धर्मध्यान शुक्लध्यान के बल से जैसे जघन्यस्थिति शक्ति के स्थानीय राग के क्षीण होने पर और जघन्य रुक्ष शक्ति के स्थानीय द्वेष के क्षीण होने पर जल और रेत के समान जीव का बंध नहीं होता है। उसी प्रकार पुद्‌गल परमाणु के भी जघन्य स्निग्ध और रुक्ष का प्रसंग होने पर बंध नहीं होता है ऐसा अभिप्राय है।

३३१.शंका : अध्यात्म ग्रंथों में भाव बन्ध किसे कहते है?

समाधान : देखिये (वृ. द्र. सं. टी. गा. ३२)

समस्तकर्मबन्धविध्वंसन-समर्थाखण्डैक-प्रत्यक्ष-प्रतिभासमय-परमचैतन्य-विलास-लक्षण-ज्ञानगुणस्याभेदनये-नानन्तज्ञानादि-गुणाधारभूत-परमात्मनो वा संबंधिनी या तु निर्मलानुभूतिस्तद्विपक्षभूतेन मिथ्यात्वरागादि परिणतिरूपेण वाऽशुद्धचेतन-भावेन परिणामेन बध्यते ज्ञानावरणादि कर्म येन भावेन स भाव बंधो भण्यते।

अर्थ : समस्त कर्म बन्ध नष्ट करने में समर्थ अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय परमचैतन्यविलास जिसका लक्षण है ऐसे ज्ञान गुण के संबंधित अथवा अभेदनय से अनंत ज्ञानादिगुण के आधारभूत परमात्मा के साथ संबंधित जो निर्मल अनुभूति है उससे विरुद्ध मिथ्यात्व-रागादि परिणति रूप अथवा अशुद्ध चेतन भाव स्वरूप जिस परिणाम से ज्ञानावरण आदि कर्म बंधते है वह परिणाम भाव बंध कहलाता है।

३३२.शंका : सिद्धांत ग्रंथों में आस्रव और संवर के कारण कौन-कौन से भाव कहे है?

समाधान : देखिये (ध.पु. २/७ पृ. ९ से १३)

मिच्छत्ता विरदि वि य कसाय जोगा य आसवा होंति।

दंसण विरमण णिग्गह णिरोहया संवरा होंति॥

अर्थ : मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग इन भावों से कर्मों का आस्रव होता है तथा सम्यग्दर्शन, विषय विरक्ति, कषाय निग्रह तथा मन-वचन-काय का निरोध इन भावों से संवर होता है।

३३३.शंका : १ से १२ गुणस्थान तक अशुद्ध निश्चय नय होता है तो उसमें शुद्धोपयोग कैसे संभव है?

समाधान : इस प्रश्न के समाधान में देखें (**प्र.सा. त. प्र. गा. १८१**)

"नय विवक्षायां मिथ्यादृष्टयादि क्षीण कषायान्त गुणस्थानेषु पुनरशुद्ध निश्चयनयो भवत्येव। तत्राशुद्ध निश्चय मध्ये शुद्धोपयोगः कथं लभ्यत इति शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति प्रत्युत्तरं ददाति - वस्त्वेकदेशपरीक्षा तावन्नय लक्षणं, शुभाशुभ शुद्ध द्रव्यावलम्बनमुपयोग लक्षणं। चेति, तेन कारणेनाशुद्ध निश्चय मध्येऽपि शुद्धात्मावलम्बनत्वात् शुद्ध ध्येयत्वात् शुद्ध साधकत्वाच्च शुद्धोपयोग परिणामो लभ्यत इति नयलक्षण मुपयोग लक्षणं च यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्।"

अर्थ : नय की विवक्षा में मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय पर्यन्त गुणस्थानों में अशुद्ध निश्चय नय होता ही है। वहाँ अशुद्ध निश्चय नय के बीच शुद्धोपयोग कैसे प्राप्त होता है? ऐसा शिष्य द्वारा पूर्व पक्ष (प्रश्न) किये जाने पर उसके प्रति उत्तर देते हैं।

प्रथम तो वस्तु की एक देश परीक्षा नय का लक्षण है और शुभ अशुभ अथवा शुद्ध द्रव्य का आलम्बन उपयोग का लक्षण है।

इस प्रकार अशुद्ध निश्चय के बीच में भी शुद्धता का आलम्बन होने से, शुद्ध का ध्येय होने से और शुद्ध का साधक होने से शुद्धोपयोग परिणाम प्राप्त होता है ऐसा नय और उपयोग का लक्षण यथा संभव सब जगह जानना चाहिये।

३३४.शंका : शुद्धात्मा का आलम्बन, ध्येय और साधक, शुद्ध निश्चय नय है या अशुद्ध निश्चय नय?

समाधान : अशुद्ध निश्चय नय।

३३५.शंका : अशुद्ध निश्चय नय, शुद्धात्मा का आलम्बन, ध्येय तथा साधक कैसे है?

समाधान : शुद्ध निश्चय नय से तो शुद्धात्मा का आलम्बन ध्येय तथा साधक पन संभव ही नहीं है, अन्यथा फिर ये सभी सिद्धों में भी माननें पड़ेंगे तथा इन्हें स्वभाव मानने पड़ेंगे क्योंकि शुद्ध निश्चय नय, शुद्ध स्वभाव भूत अभेद का कथन करता है।

अथवा

केवलज्ञान हो जाने पर शुद्धोपयोग का मात्र फल रहता है शुद्धोपयोग नहीं। शुद्धोपयोग तो मात्र अप्रमत्त नामक सातवें गुणस्थान से क्षीणकषाय पर्यन्त बारहवें गुणस्थान तक ही तारतम्य से उत्तम, मध्यम तथा जघन्य रूप से पाया जाता है।

३३६.शंका : तो शुद्धोपयोग, अशुद्ध निश्चय नय से पाया जाता है?

समाधान : हाँ, अध्यात्म ग्रंथों में कथित अनुष्ठानात्मक शुद्धोपयोग अशुद्ध निश्चय नय से ही होता है।

३३७.शंका : ध्येय रूप शुद्धात्मा का आलम्बन कौन लेते है?

समाधान : शुद्धात्मा का ध्यान एक मात्र अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती मुनिराजों को ही होता है अन्य गृहस्थों को नहीं। यह बात हम पहले देख चुके हैं। हाँ गृहस्थों को शुद्धात्मा की भावना जरूर पाई जा सकती है किन्तु ध्यान नहीं पाया जाता है।

३३८.शंका : ध्यान भले ही न पाया जाता हो किन्तु गृहस्थों को भी शुद्धात्मा ध्येय होती है?

समाधान : ध्यान-ध्येय एक संबंध है, जहाँ ध्यान होगा वहाँ ध्येय होगा और जहाँ ध्येय होगा वहाँ ध्यान होगा तथा जहाँ ध्यान नहीं होगा वहाँ ध्येय भी नहीं होगा। उसी प्रकार जहाँ ध्येय नहीं होगा वहाँ ध्यान भी नहीं होगा। अतः गृहस्थों को शुद्धात्मा का ध्यान नहीं होता है तो फिर उन्हें ध्येय कैसे हो सकता है।

३३९.शंका : क्योंकि आप ही कह रहे हैं, कि गृहस्थों को शुद्धात्म भावना पाई जाती है?

समाधान : मैं ही नहीं, किन्तु हमारे पूर्वाचार्य भी कह रहे हैं, कि गृहस्थों को शुद्धात्म भावना पाई जा सकती है किन्तु ध्यान नहीं।

३४०.शंका : चतुर्थ, पंचम गुणस्थानवर्ती को भी तो धर्मध्यान होता है तो शुद्धात्म भावना को भी धर्मध्यान रूप मानने में क्या हानि है?

समाधान : धर्मध्यान के २ भेद हैं - एक सविकल्प रूप व्यवहार धर्मध्यान, दूसरा निर्विकल्प रूप निश्चय धर्मध्यान। शुद्धोपयोग, निश्चय धर्मध्यान तथा शुक्ल ध्यान का विषय है जो कि मुनियों को ही संभव है गृहस्थों को नहीं। निर्विकल्प धर्मध्यान तथा ध्येय रूप शुद्धात्मा का संबंध मुनियों में ही घटित होता है गृहस्थों को नहीं।

३४१.शंका : तो सविकल्प रूप धर्मध्यान द्वारा भायी गई शुद्धात्म भावना को शुद्धोपयोग मान लीजिये?

समाधान : हमारा या आपका कहना मान लेने से कोई सिद्धांत नहीं बदल जायेगा वह तो जैसा है वैसा ही अटल रहेगा। अतः शुद्धोपयोग की व्याप्ति सविकल्प ध्यान रूप भावना से नहीं करनी चाहिये।

३४२.शंका : तो भावना को भी निर्विकल्प धर्मध्यान कह दो?

समाधान : नहीं, भावना भावना है ध्यान नहीं, तो उसे हम ध्यान कैसे कहे?

३४३.शंका : किन्तु अनेक जगह आचार्यों ने शुद्धोपयोग के पर्यायवाची नामों में भावना शब्द का भी प्रयोग किया है?

समाधान : शब्दों के एक ही अर्थ नहीं होते अपितु अनेकों अर्थ होते हैं। अतः जहाँ जो संभव हो वहाँ ही वह अर्थ घटित होता है किन्तु जहाँ जो अर्थ घटित ही नहीं, वहाँ उसे बलात् घटित करने का प्रयास नहीं करना चाहिये।

३४४.शंका : क्या अध्यात्म ग्रंथों में शुद्धोपयोग को ही मुक्ति का कारण माना गया है?

समाधान : हाँ, दखिये (प्र.सा. त.प्र. गा. नं. १८१) में कहा है कि -

"अत्र योऽसौ रागादि विकल्पोपाधि रहित समाधिलक्षण शुद्धोपयोगो मुक्ति कारण भणितः।"

अर्थ : यहाँ जो रागादि विकल्पों की उपाधि रहित समाधि (ध्यान) लक्षण शुद्धोपयोग को मुक्ति का कारण कहा गया है।

३४५.शंका : शुद्धोपयोग तथा पारिणामिक भाव में क्या अंतर है?

समाधान : अयमेकदेश निरावरणत्वेन क्षायोपशमिक खण्ड ज्ञान व्यक्ति रूपः, स च पारिणामिकः सकलावरण-रहितत्वेना-खण्ड-व्यक्ति रूपः। अयं तु सादिसान्तत्वेन विनश्वरः स च अनाद्यनन्तत्वेना विनश्वरः। (प्र.सा./त.प्र.गा. १८१)

अर्थ : यह शुद्धोपयोग एक देश आवरण रहित होने से क्षायोपशमिक खण्ड ज्ञान की प्रगटता रूप है और वह पारिणामिक भाव सम्पूर्ण आवरणों से रहित होने के कारण अखण्ड ज्ञान की प्रगटता रूप है यह सादि सांत होने से नश्वर है और वह अनादि अनंत होने से अविनश्वर है।

३४६.शंका : शुद्ध पारिणामिक भाव ध्येय रूप हैं या ध्यान अथवा भावना रूप है?

समाधान : देखिये **प्रवचनसार तात्पर्य वृत्ति गा. १८१** ही -

"तत एव ज्ञायते शुद्धपारिणामिकभावो ध्येयरुपो भवति, ध्यानभावनारुपो न भवति। कस्मात् ध्यानस्य विनश्वरत्वादिति।"

अर्थ : इससे ज्ञात होता है कि शुद्ध पारिणामिक भाव ध्येय रुप है, ध्यान भावना रुप नहीं है। वह ध्यान भावना रुप क्यों नहीं है? ध्यान विनाशशील होने से वह ध्यान (भावना) रूप नहीं है।

३४७.शंका : क्या अशुद्धोपयोग छेद/दोष है?

समाधान : हाँ, (प्र.सा. त.प्र.टी.गा. २१७) में कहा है कि -

अशुद्धोपयोगोऽन्तरंगछेदः प्राणव्यपरोपो बहिरंगः....... ।

अर्थ : अशुद्धोपयोग अंतरंग छेद है पर प्राणों का व्यपरोप/घात बहिरंग छेद है।

३४८.शंका : शुद्धोपयोगी तथा शुभोपयोगी श्रमणों में कौन से निरास्त्रव है तथा कौन से सास्त्रव है?

समाधान : देखिये (प्र.सा. गा.२४५)

समणा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता य होंति समयम्हि।
तेसुवि सुद्धुवजुत्ता अणासवा सासवा सेसा॥

अर्थ : शास्त्रों में कहा है कि शुद्धोपयोगी तथा शुभोपयोगी श्रमण/मुनि होते हैं उनमें से शुद्धोपयोगी श्रमण निरास्त्रव है, शेष शुभोपयोगी श्रमण आस्त्रव सहित है।

३४९.शंका : क्या शुभोपयोग के कारण की विपरीतता से फल भी विपरीत होता है?

समाधान : हाँ, देखिये (प्र.सा. त. प्र. टी. गा. २५५) में कहते हैं कि -

१. अथ शुभोपयोगस्य कारण वैपरीत्यात् फल वैपरीत्यं साधयति

यथैकेषामपि बीजानां भूमि वैपरीत्यान् निष्पत्ति वैपरीत्यं, तथैकस्यापि प्रशस्तरागलक्षणस्य शुभोपयोगस्य पात्रवैपरीत्यात्फलवैपरीत्यं, कारण विशेषात्कार्य विशेषस्यावश्यं भावित्वात्।

अर्थ : अब शुभोपयोग के कारण की विपरीतता होने से फल विपरीत होता है ऐसा सिद्ध करते हैं।........ जैसे बीज ज्यों के त्यों एक से होने पर भी भूमि की विपरीतता से फल निष्पत्ति की विपरीतता होती है (अर्थात् अच्छी भूमि में बोये गये बीज के अच्छे फल होते हैं तथा खराब भूमि में बोये गये उन्हीं बीजों का फल खराब हो जाता है अथवा उत्पन्न ही नहीं होता है) उसी प्रकार प्रशस्त राग स्वरूप शुभोपयोग ज्यों का त्यों होने पर भी पात्र की विपरीतता से फल की विपरीतता होती है। क्योंकि कारण के भेद से कार्य का भेद अवश्यंभावी है।

२. इसी गाथा की तात्पर्यवृत्ति में और भी अच्छा खुलासा किया गया है यथा -

यथा जघन्य मध्यमोत्कृष्ट भूमि विशेषेन तान्येव बीजानि भिन्न-भिन्न फलं प्रयच्छन्ति, तथा स एव बीज स्थानीय शुभोपयोगो भूमि स्थानीय पात्र भूत वस्तु विशेषेण भिन्नभिन्नफलं ददाति। तेन किं सिद्धम्? यदा पूर्वसूत्र कथित न्यायेन सम्यक्त्व पूर्वकः शुभोपयोगो भवति तदा मुख्यवृत्या पुण्यबंधो भवति, परम्परया निर्वाणं च। नो चेत्पुण्य बंधमात्र मेव॥

अर्थ : जैसे जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भूमि के भेद से वे ही बीज भिन्न-भिन्न फल देते हैं। उसी प्रकार बीज स्थानीय नहीं शुभोपयोग भूमि स्थानीय पात्र भूत वस्तु विशेष से भिन्न भिन्न फल देता है। उससे क्या सिद्ध हुआ? जब पूर्वगाथा कथित न्याय से सम्यक्त्व पूर्वक शुभोपयोग होता है, तब मुख्य रूप से पुण्य बंध होता है और परम्परा से मोक्ष होता है यदि वह वैसा (सम्यक्त्व के साथ) नहीं होता है तो मात्र पुण्य बंध ही होता है।

३५०.शंका : क्या सम्यक्त्व पूर्वक शुभोपयोग से मुख्य रूप से पुण्यबंध तथा परम्परा से मोक्ष होता है?

समाधान : हाँ, सम्यक्त्व पूर्वक शुभोपयोग से मुख्य रूप से पुण्य बंध होता है तथा परम्परा से मोक्ष होता है।

३५१.शंका : परम्परा से मोक्ष होने का तात्पर्य क्या है?

समाधान : मोक्ष प्राप्ति में कारण भूत पुण्य विषय बाह्य सामग्री जैसे – मनुष्यगति, पर्याप्त शरीर, संज्ञी, उत्तम कुल, जैन धर्म तथा धर्मानुकूल परिजन एवं परिणाम और साधना आदि परम्परा से मुक्ति में कारण भूत साधन सामग्री हैं।

३५२.शंका : क्या अशुभोपयोग रहित श्रमणजन भक्तों को तारते हैं?

समाधान : (प्र.सा. त. प्र. टी. गा. २६०) में कहा है कि –

यथोक्त लक्षणा एव श्रमणा मोह द्वेषाप्रशस्त रागोच्छेदादशुभोपयोग वियुक्ताः सन्तः सकलकषायोदय विच्छेदात्, कदाचित् शुद्धोपयोग युक्तः प्रशस्तरागविवाकात्कदाचिच्छुभोपयुक्ताः, स्वयं मोक्षा यतनत्वेनलोकं निस्तारयन्ति तद्भक्ति भाव प्रवृत्त प्रशस्तभावा भवन्ति परे च पुण्यभाजः।

अर्थ : यथोक्त लक्षण वाले श्रमण ही जो कि मोह (मिथ्यात्व) द्वेष और अप्रशस्त राग के उच्छेद से अशुभोपयोग रहित वर्तते हुए समस्त कषायोदय के विच्छेद से कदाचित् शुद्धोपयोग युक्त और प्रशस्त राग के विपाक से कदाचित् शुभोपयोग युक्त होते हैं वे स्वयं मोक्षायतन (मोक्ष के स्थान) होने से लोक को तार देते हैं और उनके प्रति भक्ति भाव से जिनके प्रशस्त भाव होते हैं ऐसे होनें पर जीव पुण्य के भागी (पुण्यशाली) होते है।

इसी बात को तात्पर्यवृत्ति में इस प्रकार कहा है –

अथ तेषामेव पात्रभूत तपोधनानां प्रकारान्तरेण लक्षणमुपलक्षयतिः शुद्धोपयोग शुभोपयोग परिणत पुरुषाः पात्रं भवन्तीति। तद्यथा–निर्विकल्प–समाधिबलेन शुभाशुभोपयोगद्वयरहित काले कदाचिद्वीतरागचारित्रलक्षण शुद्धोपयोग युक्ताः कदाचित्पुनर्मोह द्वेषाशुभराग रहित काले सरागचारित्र लक्षण शुभोपयोग युक्ताः सन्तो भव्य लोकं निस्तारयन्ति तेषु च भव्योभक्तो भव्यवरपुण्डरीकः प्रशस्तफल भूतं स्वर्गं लभते परंपरयामोक्षं चेतिभावार्थः॥

अर्थ : अब उन्हीं पात्रभूत मुनिराजों का दूसरे रूप से लक्षण स्पष्ट करते है

– शुद्धोपयोग–शुभोपयोग परिणत पुरुष पात्र है। वह इस प्रकार – निर्विकल्प समाधि के बल से शुभ–अशुभ दोनों उपयोगों से रहित समय में कभी वीतराग चारित्र लक्षण शुद्धोपयोग से सहित तथा कभी मोह (मिथ्यात्व) द्वेष और अशुभ राग से रहित समय में सराग चारित्र लक्षण शुभोपयोग से सहित होते हुए भव्य जीवों को तारते है उनके प्रति भक्ति वाले भव्यवर पुण्डरीक भक्तजन प्रशस्त फलभूत स्वर्ग प्राप्त करते है और परम्परा से मोक्ष प्राप्त करते है ऐसा भाव है।

३५३.शंका : क्या आत्मज्ञान से रहित आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान, संयत की साधना, मोक्ष प्राप्ति में अकिंचित्कर है?

समाधान : हाँ, दखिये (प्र.सा. त.प्र. गा.२३९) की उत्थानिका में लिखा है कि –

अथ आत्मज्ञान शून्यस्य सर्वागमज्ञान तत्त्वार्थ श्रद्धान संयतत्वानां यौगपधमप्य किंचित्कर मित्यनुशास्ति।

अर्थ : अब कहते है कि – आत्मज्ञान शून्य के सर्व आगमज्ञान, तत्त्वार्थ श्रद्धान तथा संयतत्व का युगपत्पना भी अकिंचित्कर है अर्थात् किंचित भी मोक्ष प्राप्त कराने में समर्थ नहीं है।

३५४.तो फिर कौन से आत्मज्ञान से सहित उक्त तीनों मोक्ष के कारण है?

समाधान : देखिये (प्र.सा. ता.प्र. गा. २३८) की उत्थानिका में कहा है कि –

अथ परमागम ज्ञान तत्त्वार्थ श्रद्धान संयतत्त्वानां भेदरत्नत्रय रुपाणां मेलापकेऽपि यदभेदरत्नत्रयात्मकं निर्विकल्प समाधि।

लक्षण मात्मज्ञानं निश्चयेन तदेव मुक्ति कारण मिति प्रतिपादयति।

अर्थ : अब परमागमज्ञान, तत्त्वार्थ श्रद्धान, संयत्व रूप भेद रत्नत्रय का युगपत्पना होने पर भी जो अभेद रत्नत्रय स्वरूप निर्विकल्प समाधि स्वरूप लीनता लक्षण वाला आत्मज्ञान है वही निश्चय से मुक्ति का कारण है ऐसा प्रतिपादन करते है।

३५५.शंका : असंयत तथा वस्त्र विहीन द्रव्यलिंगी साधु अवंदनीय है?

समाधान : इस प्रशन के समाधान में दो उल्लेख है यथा –

(१) (दर्शन पाहुड गाथा २६) में कहा है कि –

असंजदं ण वन्दे वच्छविहीणो वि सो ण वंदिज्ज।
दुण्णि वि होन्ति समाणा एगो वि ण संजदो होदि॥

अर्थ : असंयमी की वंदना नहीं करना चाहिए तथा वस्त्र विहीन भाव संयत रहित द्रव्य लिंगी साधु की भी वंदना नहीं करना चाहिए क्योंकि दोनों ही संयम रहित समान है।

(२) अमितगति आचार्य (यो.सा. ५/५६) में कहते है कि –

द्रव्यतो यो निवृत्तोऽस्ति, स पूज्यो व्यवहारिभिः।
भावतो यो निवृत्तोऽस्ति स पूज्यो मोक्षं पिपासुभिः॥

अर्थ : व्यवहारी जनों के लिए द्रव्यलिंगी भी पूज्य है परन्तु जो मोक्ष के इच्छुक है उन्हें तो भावलिंगी ही पूज्य है।

३५६.शंका : निश्चय रत्नत्रय से क्या पुण्यास्त्रव होता है?

समाधान : इस प्रश्न के समाधान में (पु. सि. श्लो. २२०) में कहा है कि –

रत्नत्रय हेतु निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य।
आस्त्रवति यन्तु पुण्यं शुभोपयोगो ऽयमपराधः॥

अर्थ : इस लोक में रत्नत्रय रूप धर्म निर्वाण का ही हेतु/कारण होता है, अन्य गति का नहीं और जो रत्नत्रय में पुण्य का आस्त्रव होता है सो यह अपराध शुभोपयोग का है।

३५७.शंका : क्या मात्र आत्मज्ञान ही निश्चय से मुक्ति का कारण है या अभेद रत्नत्रय स्वरूप अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि का स्वसंवेदन ज्ञान मुक्ति का कारण है?

समाधान : देखिये (प्र.सा. त.प्र. गा. २३८)

ततो ज्ञायते परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान संयतत्वानां भेद रत्नत्रय रूपाणां सद्भावेत्त्यभेदरत्नत्रय रूपस्य स्वसंवेदनज्ञानस्यैव प्रधानत्वमिति।

अर्थ : इससे जाना जाता है कि परमागमज्ञान, तत्त्वार्थ श्रद्धान, संयतत्व रूप भेद रत्नत्रय का सद्भाव होने पर भी अभेद रत्नत्रय रूप स्वसंवेदन ज्ञान की ही प्रधानता है। और यह अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती मुनियों को ही पाया जाता है। गृहस्थों को नहीं।

३५८.शंका : अभेद रत्नत्रय रूप स्वसंवेदन अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती मुनियों को ही पाया जाता है गृहस्थों को नहीं - यह वाक्य आप किस आधार/प्रमाण से कहते है?

समाधान : (प्र.सा. की मू.गा. नं. २३८) के आधार से वहाँ तीन गुप्ति युक्त ज्ञानी की बात कही है। अभेदरत्नत्रय धारी तीन गुप्ति वाले अप्रमत्तादि मुनि ही होते है ग्रहस्थ नहीं। गाथा इस प्रकार है -

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसय सहस्स कोडिहिं।

तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण ॥

अर्थ : जो कर्म अज्ञानी जीव लक्षकोटि भवों में नष्ट करता है, उनको त्रिगुप्ति युक्त ज्ञानी उच्छ्वास मात्र में ही नष्ट कर देते है।

अथवा (प्र.सा. त.प्र. गा.२३६) में कहते है कि -

यदि निर्दोषि निजपरमात्मैवोपादेय इति रुचि रूपं सम्यक्त्वं नास्ति तर्हि परमागम ज्ञानबलेन विशदैकज्ञानरूपमात्मानं जानन्नपि सम्यग्दृष्टिर्न भवति, ज्ञानी च न भवति, तदद्वयाभावे सति पंचेन्द्रिय विषयाभिलाष षड्जीव वध व्यावृत्तोऽपि संयतो न भवति। ततः स्थितमेतत् परमागमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान - संयतत्व त्रयमेव मुक्तिकारण मिति।

अर्थ : यदि दोषों से रहित अपना आत्मा ही उपादेय है ऐसी रुचि रूप सम्यक्त्व नहीं है तो परमागम के बल से स्पष्ट एक ज्ञान रूप आत्मा को जानता हुआ भी सम्यग्दृष्टि नहीं है और ज्ञानी भी नहीं है। इन दोनों का अभाव होने पर पंचेन्द्रिय के विषयों की इच्छा और छहकाय के जीव घात से व्यावृत्त-निवृत्त होने पर भी संयत नहीं है। इससे निश्चित हुआ कि परमागम का ज्ञान, तत्त्वार्थ श्रद्धान और संयतपना इन तीनों का युगपत्पना ही मुक्ति का कारण है।

ननु शुभोपयोगिनामपिक्वापि काले शुद्धोपयोग भावना दृश्यते, शुद्धोपयोगिनामपि क्वापि काले शुभोपयोग भावना दृश्यते। श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले शुद्ध भावना दृश्यते, तेषां कथं विशेषो भेदो ज्ञायते इति। परिहारमाह-युक्तमुक्तं भवता, परं किन्तु ये प्रचुरेण शुभोपयोगेन

वर्त्तन्ते ते यद्यपि क्वापि काले शुद्धोपयोग भावनां कुर्वन्ति तथापि शुभोपयोगिन एव भण्यंते। येऽपि शुद्धोपयोगिनस्ते यद्यपि क्वापि काले शुभोपयोगेन वर्तन्त तथापि शुद्धोपयोगिन एव। कस्मात्? बहुपदस्य प्रधानत्वादाम्रवन निम्बवनवदिति। (प्र.सा.त.प्र.गा. २४८)

प्रश्न : शुभोपयोगी मुनियों को किसी भी काल में शुद्धोपयोग की भावना (सविकल्प रूप स्वरूप चिन्तन) देखी जाती है। शुद्धोपयोगी मुनियों को भी शुभोपयोग की भावना देखी जाती है (तभी उनका अप्रमत्त से प्रमत्त गुणस्थान में अधः पतन होता है।) श्रावकों को भी सामायिक के काल में शुद्ध भावना देखी जाती है (ध्यान रखना चाहिए यहाँ शुद्धोपयोग भावना भी नहीं कहा अपितु शुद्ध भावना कहा है) तो इनमें कैसे विशेष भेद जानना चाहिए?

उत्तर : आपने ठीक कहा है किन्तु जो प्रचुर रूप से शुभोपयोग में रहते है वे यद्यपि किसी काल में शुद्धोपयोग भावना करते है फिर भी शुभोपयोगी ही कहे जाते है।

जो शुद्धोपयोगी है वे भी किसी काल में शुभोपयोग के साथ रहते है फिर भी शुद्धोपयोगी ही (कहे जाते है) क्योंकि बहुपद की प्रधानता होने से आम्रवन, निम्बवन की तरह। अर्थात् अप्रमत्त गुणस्थान पतन न चाहते हुए भी गुणस्थान का काल पूर्ण होते ही शुभोपयोग रूप परिणाम हो जाते है जिससे अप्रमत्त गुणस्थान से अधःपतन हो जाता है। शुद्धोपयोग प्रधान होने से अन्तर्मुहूर्त पश्चात् वे पुनः अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त हो जाते है अतः शुद्धोपयोग प्रधान मुनियों को भी किसी काल में शुभोपयोग बन जाता है फिर शुद्धोपयोग प्रधान होने से शुद्धोपयोगी ही कहे जाते है। इसी प्रकार शुभोपयोग के विषय में भी घटित कर लेना चाहिए।

शुद्धोपयोगाभावे मोहादिविनाशो न भवति, मोहादिविनाशाभावेन शुद्धात्मलाभो न भवति, तदर्थ मेवेदानी मुपायं समालोचयति।..... स पुरुषो अर्हत्परिज्ञानात्पश्चादात्मानं जानाति। तत आत्मपरिज्ञानात्तस्य मोहो दर्शन- मोहोलयं विनाशं क्षयंयातीति। ..... इत्थंभूतं द्रव्यगुण पर्याय-स्वरूपं पूर्वमर्हदभिधाने परमात्मनि ज्ञात्वा पश्चान्निश्चयनयेन तदेवागमसार पदभूतयाऽध्यात्मभाषया निजशुद्धात्म भावनाभिमुखरूपेण सविकल्प

स्वसंवेदन ज्ञानेन तथैवागमभाषयाध: प्रवृत्तिकरणापूर्वकरणानिवृत्तिकरण संज्ञ दर्शनमोहक्षपण समर्थ परिणाम विशेष बलेन पश्चादात्मनि योजयति। तदनन्तर मविकल्प स्वरूपे रूपे प्राप्ते, ... दर्शन मोहान्धकार: प्रलीयते। इति भावार्थ: (प्र.सा.त.प्र.गा. ८० पेज १९०)।

अर्थ : शुद्धोपयोग के अभाव में मोह आदि का विनाश नहीं होता, मोह आदि के विनाश के अभाव में शुद्धात्मा का लाभ नहीं होता है, इसके लिए यहाँ उपाय की समालोचना (चर्चा) करते है।

वह पुरुष अर्हंत को जानने के बाद आत्मा को जानता है उस आत्मपरिज्ञान से उसके दर्शन मोह लय अर्थात् विनाश या क्षय को प्राप्त होता है।

इस प्रकार द्रव्य, गुण, पर्याय स्वरूप पहले अर्हंत नामक परमात्मा को जानकर बाद में निश्चय नय से वह ही आगमसार पदभूत अध्यात्म भाषा के द्वारा निज शुद्धात्म भावना के अभिमुख रूप से सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा उसी प्रकार आगम भाषा के द्वारा अध: प्रवृतिकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण नामक दर्शन मोह के क्षय में समर्थ परिणाम के विशेष बल से बाद में आत्मा से जोड़ता है इसके बाद निर्विकल्प स्वरूप की प्राप्ति होने पर दर्शन मोहान्धकार प्रलय/नष्ट/क्षय को प्राप्त हो जाता है ऐसा भावार्थ हुआ।

विशेषार्थ : दर्शन मोह का क्षय ४ से ७ वें गुणस्थान तक संभव है अत: यहाँ षष्ट, सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनि ही मुख्य रूप से ग्रहण करना चाहिए क्योंकि समयसार में कहा भी है कि यहाँ पंचम गुणस्थान से ऊपरवर्ती ही जीव ग्रहण करना चाहिए। क्योंकिअविकल दशा, अप्रमत्त गुणस्थान में ही संभव है तथा वहाँ सप्त प्रकृतियों का क्षय भी संभव है अत: वहाँ ही यह कथन घटित होता है। चतुर्थ – पंचम गुणस्थानों में भी सप्त प्रकृतियों का क्षय संभव है किन्तु वहाँ सराग सविकल्प दशा ही बनेगी और उसी के बल से वे जीव सप्त प्रकृतियों का क्षय करते है इसे अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती की कोटि में नहीं लगाना चाहिए।

संदर्भित ग्रंथ सूचि

१.	स.सा.	समयसार मूल गाथा
२.	स.सा.आ.टी.	समयसार आत्मख्याति टीका/पेज
३.	स.सा.क.	समयसार कलश
४.	स.सा.ता.वृ.टी.	समयसार तात्पर्य वृत्ति टीका/पेज
५.	प्र.सा.	प्रवचन सार मूल
६.	प्र.सा.आ.टी.	प्रवचन सार आत्मख्याति टीका
७.	प्र.सा.ता.वृ.	प्रवचन सार तात्पर्य वृत्ति टीका
८.	पं.का.ता.वृ.	पंचास्तिकाय तात्पर्य वृत्ति टीका
९.	नि.सा.ता.वृ.	नियमसार तात्पर्य वृत्ति टीका
१०.	प.प्र.	परमात्म प्रकाश टीका
११.	श्लो.वा.	श्लोक वार्तिकालंकार
१२.	आ.प.	आलाप पद्धति
१३.	बृ.न.च.	बृहद् नय चक्र
१४.	न.य.श्रु.	नय चक्र श्रुत
१५.	न.च.सं.	नय चक्र संस्कृत
१६.	बृ.द्र.सं.	वृहद द्रव्य संग्रह टीका
१७.	पं.सं.	पञ्चसंग्रह
१८.	भा.सं.	भाव संग्रह
१९.	यो.सा.	योग सार
२०.	मूला.	मूलाचार
२१.	वा.पे.	वारसाणुपेक्खा
२२.	मो.पा.	मोक्ष पाहुड

२३. द.पा.	दर्शन पाहुड
२४. सू.पा.	सूत्र पाहुड
२५. भा.पा.	भाव पाहुड
२६. त्रि.सा.	त्रिलोकसार
२७. गो.जी.जी.प्र.	गोम्मटसार जीवकाण्ड जीव प्रबोधनी टीका
२८. ज्ञा.र्ण.	ज्ञानार्णव
२९. सि.वि.वृ.	सिद्धिविनिश्चय वृहद्
३०. प.पं.विं.	पद्मनंदि पञ्च विंशतिका
३१. त.अनु.	तत्त्वानुशासन
३२. अ.ध.	अनगार धर्मामृत
३३. पु.सि.	पुरुषार्थ सिद्धियुपाय
३४. ध.टी.	धवला टीका
३५. स.सि.	सर्वार्थसिद्धि
३६. न्या.दी.	न्यायदीपिका
३७. त.सू.	तत्त्वार्थ सूत्र
३८. म.पु.	महापुराण
३९. र.सा.	रयणसार
४०. र.श्रा.	रत्नकरणक श्रावकाचार
४१. का.अनु.	कार्तिकेयानुप्रेक्षा
४२. प.ष.	षट्खण्डागम

उपसर्ग विजेता प.पू. गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज द्वारा लिखित, सम्पादित एवं संकलित तथा श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित प्रवचन सत् साहित्य

सं.	नाम	मूल्य	पृष्ठ

लेखन साहित्य
(संस्कृत टीका साहित्य)

1. **सर्वोदयी संस्कृत टीका (वारसाणुवेक्खा)** — 150
प.पू. आचार्य कुंदकुंद स्वामी के 2000 वर्ष प्राचीन वारसाणुवेक्खा ग्रंथ पर 'प्रथम बार' लिपिबद्ध की गई 'सर्वोदयी संस्कृत टीका' भाग–1–2। जो कि 21वीं सदी की प्रथम विशद् व्याख्यान सहित टीका है। जिसमें सभी अनुयोगों के अनेक ग्रंथों से लिये गये आगमोक्त प्रमाणों के साथ मर्मस्पर्शी, विशद् तथा सरस, सुगम व्याकरण की परिशुद्धता के साथ–साथ अनेक उद्धरण व नवीन चिंतनों को अनुपम लेखन शैली के माध्यम से आगम के अमृत को परोसा गया है। इस ग्रंथ का विषय विश्लेषण, आध्यात्मिक विकास का अमोघ सोपान है, मात्र 3 माह 18 दिन में पू. गुरुवर द्वारा रचित यह कृति अपने सरलीकरण एवं भाषा सौष्ठव के कारण न केवल जनमानस, अपितु बड़े–बड़े मूर्धन्य विद्वानों के लिये आकर्षण का केन्द्र बनेगी।

2. **रत्नत्रयवर्धिनी संस्कृत टीका – रयणसार**
आर्ष परम्परा के उद्भट आचार्यश्री कुंदकुंद महाराज द्वारा रचित 2000 वर्ष प्राचीन रयणसार जी ग्रंथ पर 'प्रथम बार' अपनी अनुपम लेखन रचनाचातुरी का प्रयोग कर "रत्नत्रयवर्धिनी टीका" का प्रणयन कर प.पू. गणाचार्यश्री 108 विराग सागर जी महाराज ने अपने अथक परिश्रम व श्रुतभक्ति से प्रेरित होकर किया है जिसमें संस्कृत भाषा का प्रयोग सरल व स्वाभाविक ढंग से कर उसे एक उत्कर्ष प्रदान किया है, जो आगमिक प्रमाणों से समन्वित, सयुक्तिक तथा भूत तथा गूढ़ात्मक विषयों का स्पष्टीकरण सहित है। जिसे अंकलेश्वर से प्रारम्भ कर मात्र 3 माह 15 दिन की अल्प अवधि में गाँधी नगर (गुजरात) की पुण्यधरा पर पूज्य आचार्यश्री ने इसे पूर्ण किया है तथा आगम के मंथन में प्राप्त सुन्दर चिंतनों रूपी यह टीका अपने सरलीकरण व हृदयस्पर्शी चिंतनों के कारण दिग्दिगन्त में जयवंत रहेगी।

(शोधपूर्ण साहित्य)

3. **शुद्धोपयोग–** — 40 — 147
शुद्धोपयोग विषयक भ्रान्तियों का जड़ से उन्मूलन करने वाली, लगभग 51 शास्त्रों के अन्वेषणपूर्ण गहन–मनन चिंतन तथा उनके लगभग 315 उद्धरणों से निर्मित आगमोक्त प्रमाणों से युक्त शोधपूर्ण कृति। जिस पर देश के विभिन्न प्रांतों के लगभग 150 से अधिक मूर्धन्य विद्वानों के समीक्षात्मक श्लाघनीय अभिमत प्राप्त हुए। जिसके अध्ययन से विद्वान् जगत को एक सम्यक्‌दिशा का बोध मिला।

4. **सम्यग्दर्शन–** — 35 — 128
द्वितीय शोधात्मक कृति, जिसमें सम्यग्दर्शन विषयक अनेकानेक शंका–समाधानों तथा आगमिक और अध्यात्म भाषा के द्वारा सराग–वीतराग, निश्चय– व्यवहार, प्रथमोपशम–द्वितीयोपशम आदि लाक्षणिक भेद–प्रभेद, उत्पत्ति आदि गहन विषयों का लगभग 54 आगमोपदिष्ट शास्त्रों के 322 उद्धरणों से पूरित, मिथ्यात्वांधकार का विनाश कर आत्मरुचि रूप सम्यग्दर्शन को उत्पन्न करने वाली अमूल्य कृति है।

5. **आगम चक्खू साहू–** — 22 — 135
दिगम्बर मुनियों की समाचार विधि, आर्यिका चर्या, पात्रभक्ति तथा यज्ञोपवीत संबंधी विषयों पर देश, समाज–संघ की पंथ–परम्परा के हठाग्रह से दूर, लगभग 50 ग्रंथों के सूक्ष्म अध्ययन से निकाले गए 257 उद्धरणों से परिपूर्ण संघस्थ साधु–साध्वियों की तत्त्ववार्ता रूप में एक अतिशयवान आगमोक्त शोधपूर्ण कृति।

6. **सल्लेखना से समाधि–** — 30 — 178
आराधना, समाधि सल्लेखना विषयक लगभग 168 विषयों पर, भगवती आराधना आदि 25 शास्त्रों के खोजपूर्ण, अनेकानेक उद्धरणों से युक्त, मृत्यु महोत्सव की कला सिखाने वाली शोधपूर्ण अद्‌भुत कृति। जिसमें क्षपक, निर्यापकों तथा निर्यापकाचार्य की क्रियाविधि, सल्लेखना–आत्मघात नहीं आदि भ्रान्तियों का निरसन करने वाली सुन्दर यह प्रस्तुत कृति अति प्रशंसनीय है।

7. **संत साधना के प्रेरक प्रसंग–** — 20 — 80
साधना काल के दौर में गुजरते महत्वपूर्ण निज अनुभवों, प्रसंगों का लेखन। जिसमें साधक की पूर्व व पश्चात् परिणति, आत्मप्रभावना से दूर, धर्मप्रभावना ख्याति की भावना क्यों? कैसे होती है ? इन सब वास्तविक स्थितियों का अनुभव परक लेखन है।

8. **परम दिगम्बर जैन मुनि–**
(हिन्दी, मराठी, कन्नड़, तमिल, अंग्रेजी) — 45 — 192
सम्प्रति काल में दक्षिण भारत जैसे देश के अनजान लोगों के लिए दिगम्बर संतों की अचल साधना–आराधना, परिचर्या, गरिमा–महिमा तथा उनके सम्मान व निंदा के फलों के परिज्ञान हेतु लगभग 68 ग्रंथों के तथा अन्य पत्रकों के आलेखन कर अथाह कठोर प्रयास से इस शोधपूर्ण कृति का सृजन हुआ, जिसमें हिन्दु, इस्लाम, सिक्ख, बौद्ध आदि धर्मों ने भी दिगम्बर मुनियों का समय–समय पर सम्मान किया है इसका विवरण है।

9. **सर्वोदयी दिगम्बर जैनधर्म–** — 30 — 88
यह कृति जैनधर्म का गागर में सागरवत् संक्षिप्त परिचय के साथ ग्रंथों–पुराणों–कुरानों, उपनिषदों, इतिहास के पन्नों, प्राचीन–पुरातत्व विभागों, दर्शनों तथा विदेशी विद्वानों की दृष्टि में भी शाश्वत दिगम्बर जैनधर्म का सार्वभौमिक सम्माननीय अस्तित्व को उजागर करने वाली अलख दीपस्तंभ सदृश। पू. गुरुवर द्वारा लिखित धर्म की असीम व्याख्याओं से परिपूर्ण है।

10. **तीर्थंकर दिव्य–दर्शन–** — 30 — 178
हमारे तीर्थंकर भगवंतों के जीवन चरित्र से परिचित/अवगत कराने वाली लगभग 200 प्रश्नों के समाधान एवं त्रेसठ शलाका

पुरुषों के विषय में विस्तृत अनेक ग्रंथों के प्रमाणों से पूर्ण, जानकारी के साथ यह एक अनमोल, सारगर्भित कृति है।

11. **व्यसन विचार–** 25 102

व्यसन मुक्ति के मार्ग का दिग्दर्श कराने वाली हिन्दी, मराठी, इंग्लिश भाषाओं में रूपान्तरित सामाजिक उत्थान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कृति है जिसमें व्यसन से होने वाली हानियों तथा उनमें प्रसिद्ध व्यक्तियों की भयानक स्थितियों का चित्रण, आगम–विज्ञान तथा महापुरुषों के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।

12. **फूल नहीं, है काँटें–** 50

सप्त व्यसनों का ज्ञान, त्याग से लाभ–हानि, संबंधित कथाओं का विवरण।

13. **संस्कार सुरभि (हिन्दी, गुजराती)–** 18 87

बालकों के लौकिक विकास के साथ नैतिक विकास में सहायक एक सुरभिवत् बेहतरीन कृति है जिसमें माता–पिता एवं बालकों के जीवनोपयोगी दैनिक चर्या तथा कर्तव्यों, संस्कारों का सम्यक् प्रकार से बोध कराया गया है।

14. **जिनेन्द्र दर्शन–जिनेन्द्र पूजन–** 10 58

एक श्रावकोचित् प्रभावक कृति, जिसमें सद्गृहस्थ के आवश्यक करने योग्य भगवान के दर्शन–पूजन की सागोपांग विधि का वर्णन है।

15. **आध्यात्मिक शंका–समाधान–** 30 140

शोधात्मक/खोजात्मक आयामों से परिपूर्ण, पक्षव्यामोह, दुराग्रह से दूर, आगमोक्त अध्यात्म में प्रवेश कराने वाली एक लघु कुंजीवत्, साधनोपयोगी शोधपूर्ण कृति है। जिसमें नय, निश्चयनय, व्यवहारनय आदि 12 विषयों का पूर्ण विवरण 358 प्रश्नों के समाधान रूप में लगभग 42 शास्त्रों के अन्वेषण, मनन से किया गया है।

16. **आध्यात्मिक तत्त्व–चर्चा–** 15 84

आगम और अध्यात्म के विवादग्रस्त विषयों पर तुलनात्मक अध्ययन रूप में एक वार्ता। जिसमें मुख्यतः मोक्षमार्ग विषयक 17, सम्यक्त्व विषयक 45, स्वात्मानुभूति विषयक 56–62 तथा स्वरूपाचरण विषयक 63–83, शंकाओं का समाधान काल्पनिक युक्ति से दूर, आगम प्रमाणों से किया गया है। इस कृति का उद्देश्य शिष्यों तथा साधकों को ठोस ज्ञान से परिपक्व कराना है।

(चिंतन साहित्य)

17. **चैतन्य चिंतन**	भाग–1	15	100
	भाग–2	15	100
	भाग–3	15	104

साधकोचित् पू. गुरुवर के निज आत्मचिंतन की सरिता से उद्भूत हुए रत्नों सम चिंतवनों का लेखन।

(बालोपयोगी साहित्य)

18. **बाल विज्ञान**	भाग–1	10	37
	भाग–2	10	56
	भाग–3	10	56
	भाग–4	10	84

धर्म परिज्ञान के प्रथम सोपान के रूप में बालकों तथा युवाओं के लिए प्रारम्भिक क्रमशः जानकारी से परिपूर्ण कृति है। जो हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, कन्नड़, गुजराती भाषा में रूपान्तरित हो जन–जन में लोकप्रिय है।

19. **कर्म विज्ञान**	भाग–1	40
	भाग–2	44
	भाग–3	44

हिन्दी, इंग्लिश भाषा में उपलब्ध, करणानुयोग में प्रवेश करने के इच्छुक स्वाध्याय प्रेमियों के लिए यह प्रथम पायरी है, जिसमें कर्म सिद्धांत विषयक प्रारम्भिक विषयों का सरल ढंग से लेखन किया गया है।

(कथा साहित्य)

20. **नैतिक कथा मंजूषा**	भाग–1	85
	भाग–2	122
	भाग–3	

आगमोक्त रुचिकर कथाओं का जनमानस में परिज्ञान कराने के लिए विभिन्न शास्त्रों से संकलित कर शिक्षाप्रद–बोधपूर्ण रूप में लिखी गई कथाओं का संग्रह। जिससे समाज में नैतिकता–धार्मिकता का विकास हो सके।

(अनुवाद साहित्य)

21. **वारसाणुवेक्खा–** 144

आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी रचित वारसाणुवेक्खा ग्रंथ का सरल सुबोध अनुवाद।

22. **परमरत्नार्चना संग्रह–** 20 129

विनयपाठ से अर्घावली, विसर्जन पाठ तक सम्पूर्ण पूजाविधि का अर्थ–अनुवाद।

23. **सामायिक पाठ (हिन्दी, गुजराती)** 10 48

सम्पूर्ण आद्योपांत सामायिक विधि एवं सामायिक पाठ का अन्वयार्थ तथा भावार्थ।

(पद्य साहित्य)

24. **भावों के विशुद्ध क्षण–** 15 104

साधना काल के अमूल्य विशुद्ध, अनुभवों–क्षणों का पद्य रचना लेखन।

25. **मुक्तकांजलि – भाग–1, 2**

अनेकानेक शिक्षापूर्ण मुक्तकों के लेखन का संग्रह।

26. **नवदेवता निर्वाण क्षेत्र पूजा–**

पू. गुरुवर द्वारा रचित नवदेवता निर्वाण क्षेत्र पूजा।

(संकलित/सम्पादित साहित्य)

27. **साधना से समाधि–** 20 123
समाधि सल्लेखना के समय महत्त्वपूर्ण हिन्दी पाठ–स्तुतियों का संकलन।

28. **विमल नित्य पाठावली–** 25 200
जिनेन्द्र पूजन, 150 व्रतों की पूजन एवं विधि, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि विषयों का संक्षिप्त रूप से संकलन।

29. **आराधना–** 35 534
श्रमणों व श्रावकों द्वारा किये जाने वाले नित्योपयोगी संस्कृत के पाठों का संकलन।

30. **सुभाषित सहस्रं–** 40 336
नैतिक व धार्मिक मर्मों से परिपूर्ण सहस्र सुभाषित गाथाओं का संकलन।

31. **आप्त अर्चना–**
जिनेन्द्र पूजन – पाठ आदि का संकलन।

32. **मानतुंग की अमर भक्ति –** 65 100
(सचित्र भक्तामर)
भक्तामर स्तोत्र के काव्यों, यंत्रों–मंत्रों के सचित्र सुन्दर चित्रण।

33. **साधना–** 30 288
जनोपयोगी हिन्दी भाषा के अनेक पाठों का संकलन।

34. **अनुप्रेक्षा–** 10 40
आत्मचिन्तनोपयोगी अनित्यादि बारह भावनाओं की गाथाओं का अर्थ सहित संकलन।

35. **जिनागम दीप–** 251 728
आगम के नित्य पठनीय 25 ग्रन्थों का अर्थ सहित–सम्पादन।

36. **सम्मेदशिखर विधान–**
तीर्थराज सम्मेदशिखर जी विधान का संकलन।

37. **चारित्र शुद्धि व्रत–** 25 140
चारित्र शुद्धि व्रत की पूजा, जाप तथा कथादि की जानकारी का संकलन।

38. **करुणामूर्ति संत–** 341
करुणा अवतारी प.पू. आचार्यश्री 108 विमल सागर जी महाराज की जीवनी का संकलन।

39. **तपस्वी सम्राट–** 72
तपस्वी सम्राट प.पू. आचार्यश्री 108 सन्मति सागर जी महाराज के जीवन का लेखन।

40. **यज्ञोपवीत विधि–**
यज्ञोपवीत संस्कार विधि की उपयोगिता, महिमा तथा ग्रहण विधि का संकलन।

41. **साधना के सोपान–**

42. **पद्म पुराण प्रश्नोत्तरी–**
पद्मपुराण ग्रंथ पर आधारित प्रश्न–उत्तररूप में ग्रंथ का सुन्दर
विस्तृतिकरण। लघु समय में सम्पूर्ण ग्रंथ की जानने की उत्तमविधि।

(एकांकी/नाटक साहित्य)

434. **सत्यमित्र–सत्यदृष्टि–**
पू. गुरुवर द्वारा रचित पात्रों की मुख्यता से नाटक का लेखन।

44. **प्रद्युम्नहरण–**
'प्रद्युम्नहरण' नामक नाटक का लेखन, जिसमें पात्रों के पाठों का अलग–अलग विवरण है।

(पू. आचार्यश्री पर आधारित साहित्य)

45. **विरागाभिवंदन अभिनंदन–**
सर्वाधिक पृष्ठों वाला, विभिन्न स्तरीय साधकों, भक्तगणों आदि के पू. गुरुवर की आलौकिक व्यक्तित्व छटा पर हृदयोद्‌गारों की संकलित, सचित्र/राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा वर्ष की बेला में प्रकाशित वृहद् दर्पण जीवनी।'

46. **निस्पृही संत** भाग–1 60 243
भाग–2
जन्म से सम्प्रतिकाल तक के सम्पूर्ण जीवन–चरित्र का साहित्यिक सुबोध लेखन।

47. (अ) **विरागसेतु (महाकाव्य) भाग–1**
(हिन्दी, गुजराती, प्राकृत) 100 344
(ब) **विरागसेतु (महाकाव्य) भाग–1–2** (हिन्दी, प्राकृत)
प्राकृत भाषा की पद्यरचना से गुंथित पू. गुरुवर के आदर्शमयी जीवन पर महाकाव्यमयी रचना।

48. **संत काव्य की परम्परा में आचार्य विराग सागर** 65 175
पू. गुरुवर के व्यक्तित्व व कृतित्व पर डी. लिट् उपाधि से पुरस्कृत डॉ. लोकेश खरे की एक अद्‌भुत शोधपूर्ण कृति।

49. **कमल से महाकमल–**
अरविन्द से आचार्य विराग सागर तक की जीवन–यात्रा का लघु प्रभावक लेखन।

50. **घटनायें ये जीवन की–** 80 336
सम्पूर्ण जीवन में घटी अनेकानेक रोचक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का लेखन।

51. **दिगम्बरत्व के चितेरे–** 150
सचित्र, बालगोपाल को आकर्षित करने वाला कॉमिक्स रूप में जीवन चरित्र।

52. **विराग सिन्धु की उर्मियाँ–** 15 91
पू. गुरुवर की अनुपम जीवन पर आधारित सरस–सरल काव्यरचना।

53. **विराग वाटिका**– 41 154
पू. गुरुवर द्वारा दीक्षित शिष्य–सुमनों का सविस्तृत सचित्र परिचय।

54. **भक्ति की झंकार**– 25 158
गुरुभक्ति से पूरित धार्मिक बहुताधिक भजन–गीतों का संग्रह

प्रवचन साहित्य
(परम पूज्य गुरुवर के प्रवचन सहित)

55. **धर्म पीयूष**– 30 136
दशलक्षण पर्व में उत्तमक्षमादि दस धर्मों पर मुखरित पीयूष वाणी का संकलन।

56. **ऐसे चलो मिलेगी राह**– 40 180
दिशाविहीन जीवन को सम्यक् दिशा–बोध कराने वाले मार्मिक प्रवचनों का संकलन।

57. **दूर नहीं है मंजिल**– 30 227
निज ध्येय का बोध करा मंजिल तक पहुँचाने (मोक्ष) वाले सारगर्भित प्रवचनों का संकलन।

58. **उड़ रे पंछी**–
पू. गुरुवर के मुखारविंद से गुंजित प्रवचनों का संकलन।

59. **तीर्थंकर वर्धमान**– 15 80
भगवान महावीर स्वामी का विभिन्न दृष्टियों एवं आगम के परिप्रेक्ष्य में जीवन परिचय।

60. **पहले देव–पूजा, फिर काम दूजा**– 25 180
जिनेन्द्र प्रभु की पूजा, अर्चनाविधि के महत्त्व को उजागर करने वाले प्रवचनों का संकलन।

61. **तीर्थंकर ऐसे बनो**– 60 157
तीर्थंकर प्रकृति बंध में हेतु सोलहकारण भावनाओं का संकलित सविस्तृत प्रवचन।

62. **तट की ओर**– 40
हृदयस्पर्शी जीवन की सच्चाई का दिग्दर्श कराने वाले प्रवचनों का संकलन।

63. **सिर्फ दो प्रवचन**– 10
महत्त्वपूर्ण विशेष प्रवचनों का संकलन।

64. **इष्टोपदेश**–
अध्यात्मप्रेमियों के आध्यात्मिकता के विकास में सहायक इष्टोपदेश ग्रंथ पर संकलित प्रवचन।

65. **मानतुंग की अमरभक्ति**– 150 241
भक्तामर स्तोत्र पर भक्ति से ओत्–प्रोत्, भावभीने प्रवचनों का संकलन।

66. **कल्याणक महोत्सव**– 20 104
अनेकानेक स्थानों पर हुए गर्भादि कल्याणकों के विशेष प्रवचनों का संग्रहीकरण।

67. **दान तीर्थ**– 20 88
आहारदान की आद्योपांत महिमा, विधि, गुण, दोष, पात्र, फल आदि का वर्णन।

68. **धर्म के दश सोपान**– 20 105
मूडबिद्री में हुए दश धर्मों के प्रवचनों का सरस–संक्षिप्त संकलन।

69. **जीवों पर दया करो, शुद्ध शाकाहार करो**– 20 106
अहिंसा शाकाहार सम्मेलनों में हुए आगमिक व वैज्ञानिक तुलनात्मक प्रवचनों का संकलन।

70. **बुराईयाँ ही जेल, अच्छाईयाँ ही मुक्ति**– 10 45
विभिन्न जेलों में हुए, अपराध बोध कराने वाले मार्मिक प्रवचनों का संकलन।

71. **प्रवचन वर्षा**– 15 121
महत्त्वपूर्ण वर्षभर के जैन पर्वों पर होने वाले उपदेशामृत का संकलन।

72. **कर्तव्य मेव कर्तव्य**– 25 120
श्रावकों के षडावश्यक कर्तव्यों पर आधारित हृदय उद्गारों का संकलन।

73. **श्रद्धा प्रसून**– 25 128
मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन के आठ अंगों पर प्रवचनों का संकलन।

74. **मोक्ष की राह**– 125
मोक्षपथिकों को मोक्षपथ का पाथेय प्रदान करने रूप प्रवचनों का संकलन।

75. **विरागामृत**– 150
पू. गुरुवर की अमृतवाणी से मुखरित अनेक विषयों पर संकलित संक्षिप्त उद्धरण।

76. **समाधि तंत्र**–
अध्यात्मरस से परिपूर्ण समाधि ग्रंथ पर हुए सविस्तृत प्रवचनों का संकलन।

77. **समयोचित शिक्षायें**
भाग–1 20 105
भाग–2 20 46
भाग–3 20 58
व्यक्तित्व विकास में कारण, समय–2 पर दी गई अमिट शिक्षाओं का संकलन।

78. **विराग मंथन**– 5 32
लघु, पर ज्ञान को विकसित करने वाले आकर्षिक उद्धरणों से पूरित कृति।

89. **रजत पुष्प**– 51 184
सद्गुणों के विकासादि विषयों से परिपूर्ण जनोपयोगी प्रवचनों का संकलन।

80. **कहानी सबसे सुहानी**– 30 240

पूज्य गुरुवर के प्रवचनों में से संकलित मनभावन कहानियों का संकलन।

81. **अक्षय निधि–** 10 36
हृदय पर सीधा प्रभाव करने वाले गूढ़ रहस्यात्मक प्रवचनों का संकलन।

82. **संस्कार की लहरें–** 20 85
नैतिक तथा धार्मिक सुसंस्कारों की सुरभि से सुरभित प्रवचनों का संकलन।

83. **चलो चलें प्रभुदर्शन को–** 30 88
आगमिक तथा वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर प्रभुदर्शन की आद्योपांत विधि रूप प्रवचन।

84. **आध्यात्मिक धर्म प्रवचन–** 147
दशलक्षण धर्म से संबंधित गाथाओं, कहानियों, मुक्तकों तथा उद्धरणों का विस्तृत प्रवचन संग्रह।

85. **घर–घर की कहानी–** 103
पारिवारिक एक–दूसरे सदस्यों के कर्तव्यबोध कराने वाले प्रवचनों का संकलन।

86. **वारसाणुवेक्खा प्रवचन**
वैराग्यभाव को वृद्धिंगत करने वाले अनित्यादि भावनाओं पर आधारित प्रवचनों का संकलन।

87. **पर्यूषण निधि**
आत्म रुचि को उत्तमक्षमादि भावों की ओर प्रेरित करने वाले प्रेरक प्रवचनों का संकलन।

88. **पद्मनंदी पंच विंशतिका 1 : धर्मोपदेशामृतम्–**
इस प्रवचन माला में 198 श्लोकों पर प्रवचन है जिसमें उपदेश का अधिकारी कौन, निश्चय–व्यवहार धर्म का स्वरूप, गृहस्थ–मुनि धर्म का उपदेश किसे, सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान– सम्यक्चारित्र आदि अनेक प्रकार से धर्म की महिमा की प्रकट किया गया है।

89. **पद्मनंदी पंच विंशतिका 2 : दानोपदेशम्**
दान प्रवर्तन, दान की आवश्यकता, महत्व, दान के पात्र, नवधाभक्ति, पात्र के भेद, पात्रदान, कुपात्रदान तथा अपात्रदान के फल तथा गृहस्थों को अवश्य ही दान करने की प्रेरणा देने वाले प्रभावक प्रवचनों का 54 श्लोकों द्वारा संकलन है।

90. **पद्मनंदी पंच विंशतिका 3 : अनित्यपञ्चाशत्–**
55 श्लोकों पर प्रवचनों के माध्यम से क्षणिक, नश्वर स्त्री–पुत्र,शरीर आदि की आस्थिरता को दिखलाकर उनके संयोग–विनोग में हर्ष और विषाद भावों के परित्याग की प्रेरणा प्रदान करने वाले वैराग्यमय भावों का संकलन।

91. **पद्मनंदी पंच विंशतिका 4–5 : एकत्व सप्ततिः तथा यति भावनाष्टकम्–**
चतुर्थ एकत्वसप्तति अधिकार में चिदानंदस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति का उपाय, चेतन तत्व अनेक–धर्मात्मक है, द्वैत–अद्वैत बुद्धि का फल, शुद्धोपयोग साम्यभाव तथा यतिभावनाष्टक में मुनियों की कठिन चर्या, योगधारण विधि, उपसर्गों में स्थिरता आदि का सुन्दर प्रवचनों के माध्यम से प्रस्तुतिकरण संकलन है।

92. **पद्मनंदी पंच विंशतिका 6 : उपासक संस्कारः–**
सकल तथा देशव्रतों का स्वरुप, भेद, स्वामियों का निर्देश छह–आवश्यक का स्वरुप तथा सात व्यसनों के त्याग की उपेदश तथा गृहस्थ को निरंतर मुनिपद धारण करने की प्रेरणा को देने वाले अनुपम, श्लाघनीय प्रवचनों का संकलन।

93. **पद्मनंदी पंच विंशतिका 7 : देशव्रतोद्योतनम्–**
सम्यग्दृष्टि एवं सम्यग्दर्शन की महिमा, अष्टमूलगुण धारण करने की आज्ञा, आहारादि चार प्रकार के दान करने की प्रेरणा, देवदर्शन का महत्व, चार पुरुषार्थों में मोक्ष पुरुषार्थ करने का उपेदश तथा गृहस्थ धर्मों पर आधारित अनुकरणीय प्रवचनों का संकलन।

94. **पद्मनंदी पंच विंशति अधिकार – 8–9 सिद्धस्तुति एवं आलोचना**
सिद्ध भगवान के अनंतगुणों का वर्णन, उनकी स्तुति, गुणगान का फल, सिद्धत्व पद प्राप्ति के उपाय और जीवन में आलोचना के द्वारा पापकर्म को

- कैसे कम किया जा सकता है, आलोचना किससे करें, किससे न करें आदि महत्वपूर्ण विषयों पर आधारित प्रवचनों का संकलन।

95. **आचार्य विरागसागर साहित्य दर्शन–**
पू. गुरुदेव से सम्बंधित सकल साहित्य का लघु परिचय, प्राप्तिस्थान, विरागवाणी, सम्पर्क सूत्र, SMS नम्बर कैसे j o i n करें निर्देश, V.D.O. तथा O.D.O सीडी के नाम, विशेषजानकारी के लिए वेबसाईड, विरागोदय क्षेत्र संबंधी जानकारी आदि का निर्देश।

96. **मेरी भावना प्रवचन–**
पं. जुगलकिशोर मुख्तार द्वारा रचित मेरी भावना पर लोक जनकल्याण, विश्वमैत्री, भाईचारे, नैतिक–धार्मिक अनेक प्रकार की हृदय स्पर्शी मार्मिक हृदय से स्फुटित प्रवचनों का संकलन।

97. **फॉर यूथ प्रोग्रेस–**
नवीन युवा पीढ़ी को धार्मिक क्षेत्र में अग्रसर करने, उनके प्रगति उत्थान के प्रभावक सूत्रों तथा जन–जागृति धार्मिक रुचि को प्रकट करने वाले अति प्रभावक प्रवचनों का संकलन।

98. **रत्नकरण्डक श्रावकाचार प्रवचन 1–**
श्रावकोचित महत्वपूर्ण विषयों पर श्लोकों के आधार पर मुखरित प्रवचनों का संकलन

99. **सामायिक पाठ प्रवचन–**
सामायिक की सम्पूर्ण क्रियाविधि, समायिक कैसे कहाँ, कब आदि अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर अनुगुंजित आध्यात्मिक प्रवचनों का संकलन

परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज द्वारा लिखित, संपादित, संकलित एवं प्रवचन संबंधित साहित्य यहाँ हर समय उपलब्ध हैं।

प्राप्ति स्थान :

श्री सम्यग्ज्ञान दिगंबर जैन विराग विद्यापीठ

बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

अध्यात्मिक शंका-समाधान ● लेखक : प.पू. सूरिगच्छाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज